बाल-किशोर

बोध कथाएँ



लज्जाराम तोमर

बाल-किशोर

बोध कथाएँ

बाल-किशोर

बोध कथाएँ

सम्पादक
लज्जाराम तोमर

विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान
संस्कृति भवन, कुरुक्षेत्र-136 118 (हरियाणा)
दूरभाष : (01744) 21903

प्रकाशक :
विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान
संस्कृति भवन, कुरुक्षेत्र-136 118 (हरियाणा)

प्रथम संस्करण:
फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा, युगाब्द 5103, वि०सं० 2058

मूल्य : 50 रुपये
140 रुपये पुस्तकालय संस्करण

मुद्रक :
चाणक्य मुद्रक (प्रा.) लिमिटेड
पहाड़ गंज, नई दिल्ली-55

"...आगामी पचास वर्ष तक तुम
लोग एकमात्र 'स्वर्गादपि गरीयसी'
जननी-जन्मभूमि की आराधना करो-इन
वर्षों में दूसरे देवताओं को भूल जाने में भी कोई
हानि नहीं। दूसरे देवगण सो रहे हैं। इस समय तुम्हारा
एकमात्र देवता है तुम्हारा राष्ट्र। सभी स्थानों में उसका हाथ
है। उसके सतर्क कान सभी जगह मौजूद हैं। वह सभी स्थानों
में व्याप्त होकर विद्यमान हैं। तुम लोग किसी निष्फल देवता
की खोज में दौड़ रहे हो और अपने सामने तथा चारों
ओर जिस देवता को देख रहे हो, उस विराट की
उपासना नहीं कर रहे हो।......यह सब मनुष्य
तथा यह सब पशु ही तुम्हारे ईश्वर हैं
और तुम्हारे स्वदेशवासी गण
ही तुम्हारे प्रथम उपास्य
देव हैं।..."

-स्वामी विवेकानन्द

आमुख

भारतीय जनजीवन में कथा का अत्यधिक महत्त्व है। कथाओं के माध्यम से इस देश के मनीषियों ने आध्यात्मिक जैसे गूढ़ विषय को एवं धर्म के सिद्धांतों को जन सामान्य के जीवन में सफलतापूर्वक उतारकर दिखा दिया है। निरक्षर व्यक्ति भी भौतिक समृद्धि की नश्वरता, पाप-पुण्य, कर्मफल एवं धर्म-अधर्म की चर्चा करते दिखाई देता है। यह ज्ञान उसे कथाओं के श्रवण से मिला। रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत आदि पुराणों की कथाओं से मिला। भारत के नगर-नगर, ग्राम-ग्राम में यहाँ तक कि घर-घर में साधु-सन्यासियों एवं पण्डितों द्वारा कथा-कथन के धार्मिक कार्यक्रमों की परम्परा सर्वदूर अनादिकाल से प्रचलित हैं। यहाँ तक आधुनिक विज्ञान के युग में भी कथावाचकों के कार्यक्रमों में अपार जनसमूह उमड़ पड़ता है। भारतीय कथा साहित्य विश्व को अनुपम देन है।

बालकों की शिक्षा में कथा-कथन सशक्त एवं प्रभावी माध्यम है। कथा भावधारा को जन्म देती है। श्रोता उसके रसास्वादन में तन्मय हो जाता है। कथा-कथन से भावों का शोधन, परिमार्जन होता है, मूल प्रवृत्तियों का मार्गान्तरण एवं परिष्कार होता है। पंचतंत्र एवं हितोपदेश की अमर कथायें उसके ज्वलंत उदाहरण हैं। दादी-नानी के द्वारा पशु-पक्षियों व परियों की कहानियां हम सबने अपने बचपन में सुनी होंगी। अतः बालक के विकास के लिए हम सफल कथाकार बनें यह आज के समय की महती आवश्यकता है।

कथा-कथन की प्रथम आवश्यकता है कि वह अत्यंत भावपूर्ण एवं रोचक शैली में हो। कथा को सुनकर बालक उसमें तन्मय हो जाये। तन्मयता एवं एकाग्रता उसकी मानसिक शक्तियों को जागृत कर देगी। उत्सुकता, ग्रहणशक्ति एवं कल्पनाशक्ति प्रस्फुटित हो उठेंगी। भावपूर्ण होने के साथ कथा की भाषा श्रोता के मानसिक स्तर के अनुरूप होना आवश्यक है। इसके अभाव में उसकी रोचकता समाप्त हो जायेगी।

सद्गुणों के विकासक्रम में बालक के हृदय में अपनी मातृभूमि, सांस्कृतिक परम्पराओं एवं पूर्वजों के प्रति श्रद्धा एवं स्वाभिमान के भावों का जागरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष है। इसके लिए महापुरुषों को जीवन के प्रेरक प्रसंग एवं ऐतिहासिक घटनायें सुनाना उपयोगी होती हैं। आज के संक्रमण काल में इस प्रकार की कथाओं को अभिभावकों एवं आचार्यों के द्वारा बालकों को सुनाना अधिक आवश्यक हो गया है। इसके लिए आधुनिक तकनीकी अर्थात् वीडियो-ऑडियो कैसेटों का उपयोग भी सहायक हो सकता है। वर्तमान दूरदर्शन आदि माध्यम हमारे बालकों को अधिकतर दूषित विचार सामग्री प्रस्तुत कर रहे हैं। रामायण एवं महाभारत जैसे सीरियलों ने तो सम्पूर्ण समाज में चेतना की लहर जागृत कर दी थी। बालोपयोगी मनोरंजन के साथ सद्संस्कार देने वाली सामग्री इन माध्यमों से प्रसारित हो तो ये समाज निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं। फिर भी ये माध्यम माता-पिता एवं आचार्यों का स्थान नहीं ले सकते।

"बोध कथायें" उपर्युक्त विचारों को ध्यान में रखकर इस पुस्तक में संग्रहीत की गई हैं। आशा है यह पुस्तक हमारे आचार्यों एवं सुधी पाठकों को अवश्य लाभान्वित करेगी।

तिथि-फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा, वि०सं० 2058, युगाब्द 5103 **—लज्जाराम तोमर**

संस्कृति भवन, कुरुक्षेत्र-136 118

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

तरबूज के बीज

गर्मी के दिन थे। हम पाँच छः लोग परस्पर बैठे वार्ता कर रहे थे। इनमें से दो संघ के वरिष्ठ कार्यकर्त्ता थे। उनमें से एक भूतपूर्व यशस्वी प्राध्यापक भी थे। 'आज तो तरबूज खाया जाये' एक सज्जन ने कहा। सभी को बात जँच गई। पैसे जमा हुए तथा देखते-देखते कटे हुए तरबूज के लाल गूदे के बड़े-बड़े टुकड़े बर्फ के टुकड़ों में दबे थाली में सामने आ गए। सभी इन पर टूट पड़े। देखने में तरबूज लाल सुर्ख दानेदार थे। परन्तु ! धत् तेरे की। मजा किरकिरा हो गया' एक वरिष्ठ बन्धु के मुख से निकल पड़ा।

'पैसे बेकार चले गये' दूसरे ने बात आगे बढ़ाई। 'खान अपना पैसा खाता है। हम तो भर पेट खाये बिना न रहेंगे।–' सीमाप्रान्तीय बन्धु के प्रति हास्य मिश्रित व्यंग्य करते हुए तीसरे ने कहा। 'ठग गये। पैसा बेकार चला गया।' मैं भी बोल उठा। खिसियानी सी हँसी कमरे में गूँज उठी। हम सभी तरबूज खा रहे थे। खाते-खाते बीज निकालकर एक ओर रख देते थे। बीजों की दुर्दशा देखकर प्राध्यापक महोदय से न रहा गया।

'इन बेचारे बीजों की यह दुर्दशा? रेत से पानी निकालना आज भी कल्पना की वस्तु बनी हुई है। करोड़ों रुपया बर्बाद हो गया। परन्तु आज तक कोसों दूर हूँ। विज्ञान के प्राध्यापक बोल उठे।

'परन्तु कैसा विलक्षण है यह बीज? यह रेत से पानी ही नहीं मीठा शीतल शर्बत निकालकर हमारी प्यास बुझाता है?'–वरिष्ठ बन्धु बोल उठे।

'कितनी मूल्यवान है यह मशीन, जिसे हम निकालकर यूँ ही फेंक दे रहे हैं।' तीसरे ने कहा।

साधक का मुखमण्डल चमक उठा। आनन्दयुक्त मुद्रा से मेरी ओर देखकर वे बोल उठे, 'तुम लोग तो आचार्य ठहरे। बालक के अन्दर छिपे सुप्त देवत्व को समाज की मिठास बनाकर प्रगट करना ही तो तुम लोगों का काम है? तुम्हारे सहयोगियों में कितने हैं ऐसे जो इस सामान्य से बीज से अधिक उपयोगी हैं।'

काश! हम तरबूज़ के बीज के बराबर ही क्यों न हो, समाज को अपनी उपयोगिता तो अनुभव करा पाते।

इसी का नाम शिक्षा है
देश को आज इसी की आवश्यकता है

कलकत्ता नगर की बोसपारा लेन का वह मकान। छोटी-छोटी बालिकाओं का वह निवेदिता विद्यालय था। आज इस विद्यालय में स्वामी विवेकानन्द पधारे थे। अध्यापिकाएं इनके श्रीचरणों में बैठी सत्संग लाभ कर रही थीं। बात चलते-चलते निकल पड़ी शिक्षा पर। शिक्षा क्या है? बच्चों में हम क्या विकसित करें? सभी का उत्तर भिन्न था। समाधान के लिये सभी स्वामी जी की ओर ताक रहे थे। शान्त वातावरण के मौन को भंग करते हुए वे बोल उठे, "सुनो, तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ......"

यूनान का सम्राट अलिकसुन्दर देशों व जातियों को रौंदता हुआ एक बार भारत आया था। चलते समय अपने गुरू अरस्तु से उसने आशीर्वाद भी माँगा था। प्रसिद्ध दार्शनिक ने अपने शिष्य से कहा था, "यदि तुम भारत विजय करके लौटो तो मेरे लिये तीन अमूल्य वस्तुएँ लेते आना..........।"

वे तीनों चीजें अपने में विलक्षण थीं। भारत के बाहर उन्हें पाना दुर्लभ ही था। भारत में आते ही इस विदेशी सम्राट को तो लेने के देने ही पड़ गये। विवश होकर इसे वापिस लौटना पड़ा, हताश, निराश, ध्वस्त और पस्त होकर। वापिसी यात्रा में इसे अपने गुरू अरस्तु के शब्द ध्यान आ गये। विश्वविजेता बनने के स्वप्न चकनाचूर हो चुके थे। परन्तु क्या वह अपने गुरू के लिये कोई भेंट न ले जा सकेगा? झट आदेश दिये गये, "जाओ एक भारतीय संन्यासी को ले आओ।"

आदेश पाते ही सेनाधिकारी ऐनिसक्रिटीज जंगल की ओर चल पड़ा। निकट के वन मे एक विद्वान संन्यासी रहते थे, इनका नाम था दण्डमिस। यूनानी सेनापति ने अकड़कर कहा, "ओ साधु! तुम्हें सम्राट ने अपनी सेवा में बुलाया है, जल्दी तैयार हो जाओ।"

दण्डमिस का अट्टहास आकाश में गूंज उठा,''तुम कौन हो? कहाँ से आये हो? कौन है वह सम्राट? मैं तो एक ही सम्राट, इस जगत सम्राट को जानता हूँ जिसके संकेत पर सूर्य, चंद्रमा व सारा संसार चल रहा है इसको छोड़कर मैं किसी का आदेश नहीं माना करता हूँ ।''

सेनापति चकरा गया। उसने चातुर्य से काम लेना चाहा। पैंतरा बदलते ही बोला,''यवन सम्राट की शरण में आते ही तुम्हें मुँह माँगा इनाम मिलेगा। मालामाल कर दिये जाओगे।''

दण्डमिस मुस्करा उठे। उनके नेत्र चमक उठे। वे बोल उठे, ''यह भूमि मुझे अन्न, फल और फूल देती है। सूर्य प्रकाश व जल तृप्ति देता है। मुझे और चाहिये भी क्या? जाओ अपने मालिक से कहना कि मुझे कुछ नहीं चाहिये। मैं कहीं नहीं जाऊँगा।''

सेनाधिकारी ऐनिसक्रिटिज इस निर्भीक उत्तर से सकपका गया। यवन सम्राट को सूचना दी गई। सभी भौंचक्के थे। अलिकसुन्दर के कानों में अरस्तु के वे वाक्य गूँज उठे, ''इन तीन विलक्षण वस्तुओं में से एक है भारत का सन्यासी। दुनिया में वैसा व्यक्ति कहीं भी न मिलेगा।''

आखिरकार यवन सम्राट स्वयं आया। उसके साथ अनेक उच्च सेनाधिकारी भी आस-पास खड़े थे। योगी दण्डमिस पत्थर के एक शिलाखण्ड पर निश्चिन्त भाव से बैठा था। बातचीत के मध्य में यवन आक्रमणकारी की त्यौरियाँ चढ़ गईं। क्रोध मे भरकर वह बोला –'' ओ संन्यासी के बच्चे! क्या तुझे ज्ञात है कि तू किसके सामने बैठा है? जिसके भृकुटि मात्र के इशारे पर सिंहासन डोल उठते हैं। क्षण भर में तेरी बोटी-बोटी काट डाली जायेगी, तुझे जिन्दा आग में झोंक दिया जायेगा।'

अविचल रूप से बैठे-बैठे उन्होंने उत्तर दिया,''रे अज्ञानी मनुष्य! इससे बड़ी मूर्खतापूर्ण बात क्या हो सकती है? क्या तू मुझे काट सकता

है? मुझे जला सकता है? मैं अमर पुत्र हूँ। न कोई मुझे जला सकता है, न काट सकता है। आत्मा अमर है।''

कहानी कहते-कहते स्वामी जी रुक गये। अध्यापिकाएं हतप्रभ सी खड़ी कथा सुनने में तंन्मय थी। उनका ध्यान भंग करते हुए स्वामी जी बोल उठे, ''एक ओर अपनी वरिष्ठ सेनाओं से घिरा हुआ, अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित, संसार भर को कँपा देने वाला अलिकसुन्दर तथा दूसरी ओर शिलाखण्ड पर बैठा हुआ निःशस्त्र, निश्चिन्त संन्यासी। वह कौन सी शक्ति थी, जिसने निर्भीकता उत्पन्न कर दी थी? इतना आत्मविश्वास जागृत कर दिया था? अवाक् सी खड़ी अध्यापिकाएं बेचारी क्या उत्तर देतीं?

शान्ति की नीरवता को भंग करते हुए योगिराज बोल उठे, ''जो शक्ति इस संन्यासी में इस महानता को जगा सकी, इस विश्वास को पनपा सकी, इस निर्भीकता का इसके जीवन में उदय कर सकी, अमरत्व के इस प्रबल आत्मविश्वास को इसके जीवन में संचारित कर सकी उसी का नाम शिक्षा है। देश को आज उसी की आवश्यकता है।

●●●

नम्र बनो, कठोर नहीं

एक चीनी सन्त बहुत बूढ़े हो गए। उन्होंने देखा कि अन्तिम समय निकट आ गया है, तो अपने सभी भक्तों और शिष्यों को अपने पास बुलाया। प्रत्येक से वे बोले–'तनिक मेरे मुँह के अन्दर तो देखो भाई कितने दाँत हैं?'

प्रत्येक शिष्य ने मुँह के भीतर देखा, प्रत्येक ने कहा–'दाँत तो कई वर्ष से समाप्त हो चुके हैं महाराज ! एक भी दाँत नहीं है।'

सन्त ने कहा – 'जिह्वा तो विद्यमान है?'

सबने कहा – 'जी हाँ।'

सन्त ने कहा – 'यह बात कैसे हुई? जिह्वा तो जन्म-समय भी विद्यमान थी। दाँत उससे बहुत पीछे आए। पीछे आने वाले को पीछे जाना चाहिये था । ये दाँत पहले कैसे चले गये।'

शिष्यों ने कहा – 'हम तो इसका कारण समझ नहीं पाते ।'

तब सन्त ने धीमी आवाज में कहा–'यही बतलाने के लिए मैंने तुम्हें बुलाया है। देखो ! यह वाणी अब तक विद्यमान है, यह इसलिए कि इसमें कठोरता नहीं और ये दाँत पीछे आकर पहले समाप्त हो गए तो इसलिए कि ये बहुत कठोर थे। इन्हें अपनी कठोरता पर अभिमान था। यह कठोरता ही इनकी समाप्ति का कारण बनी। इसलिए मेरे बच्चों ! यदि देर तक जीना चाहते हो तो नम्र बनो, कठोर न बनो !'

●●●

सहनशीलता का जादू

महर्षि दयानन्द ठहरे थे फर्रुखाबाद में गंगा तट पर। उनसे थोड़ी ही दूर एक और झोपड़ी में दूसरा साधु भी ठहरा हुआ था। प्रतिदिन वह दयानन्द की कुटिया के पास आकर उन्हें गालियाँ देता रहता। उसे दयानन्द सुनते और मुस्करा देते। कोई भी उत्तर नहीं देते थे। कई बार उनके भक्तों ने कहा 'महाराज! आपकी आज्ञा हो तो इस दुष्ट साधु को सीधा कद दें।'

महाराज सदा कहते–'नहीं, वह स्वयं ही सीधा हो जायेगा।'

एक दिन किसी सज्जन ने फलों का एक बहुत बड़ा टोकरा महर्षि के पास भेजा। महर्षि ने टोकरे से बहुत अच्छे-अच्छे फल निकाले, उन्हें एक कपड़े में बाँधा और एक व्यक्ति से बोले–'ये फल उस साधु को दे आओ, जो उस परली कुटिया में रहता है, जो प्रतिदिन यहाँ आकर कृपा करता है।'

उस व्यक्ति ने कहा-'परन्तु वह तो आपको गालियाँ देता है?'

महर्षि बोले-'हाँ, उसी को दे आओ।'

वह सज्जन फल लेकर उस साधु के पास गये। जाकर बोले–'साधु बाबा! ये फल स्वामी दयानन्द ने आपके लिए दिये हैं।'

साधु ने दयानन्द का नाम सुनते ही कहा–'अरे! यह प्रातःकाल किसका नाम ले लिया तूने? पता नहीं, आज भोजन भी मिलेगा या नहीं। चला जा यहाँ से मेरे लिए नहीं, किसी दूसरे के लिए भेजे होंगे। मैं तो प्रतिदिन उसे गालियाँ देता हूँ।'

उस व्यक्ति ने महर्षि के पास आकर यही बात कही। महर्षि बोले–'नहीं, तुम फिर उसके पास जाओ। उसे कहो कि आप प्रतिदिन जो अमृतवर्षा करते हो, उसमें आपकी पर्याप्त शक्ति लगती है। ये फल इसीलिए भेजे हैं कि उन्हें खाइये, इनका रस पीजिये, जिससे आपकी शक्ति बनी रहे और आपकी अमृत-वर्षा में कमी न आ जाये।'

उस व्यक्ति ने साधु के पास जाकर वही बात कह दी–'सन्त जी महाराज! ये फल स्वामी दयानन्द ने आप ही के लिए भेजे हैं और कहा है आप प्रतिदिन जो अमृत-वर्षा उन पर करते हैं, उसमें आपकी पर्याप्त शक्ति व्यय होती है। इन फलों का प्रयोग कीजिये, जिससे आपकी शक्ति बनी रहे और आपकी अमृत-वर्षा में न्यूनता न आये।'

साधु ने यह सुना तो घड़ों पानी उस पर पड़ गया। वह निकला अपनी कुटिया से, दौड़ता हुआ पहुँचा महर्षि के पास, उनके चरणों में गिर पड़ा, बोला 'महाराज! मुझे क्षमा करो। मैंने आपको मनुष्य समझा था, आप तो देवता हैं।'

यह है सहनशीलता का जादू! जिसमें यह सहनशीलता उत्पन्न हो जाती है, उसके जीवन में एक अनोखी मिठास, एक अद्‌भुत सन्तोष और एक विचित्र प्रकाश आ जाता है।

●●●

मनुष्य की पूँजी

बहुत समय पहले अमरावती में सुमेघ नाम के एक महात्मा अपने शिष्यों के साथ रहते थे। राज्य के नागरिक उनका बड़ा सम्मान करते थे। आश्रम में सदा मिलने वालों की भीड़ लगी रहती थी। उनके एक शिष्य की आदत बहुत खराब थी। वह लोगों की चीज़ें चुरा लेता था। एक दिन वह चोरी करते रंगे हाथों पकड़ा गया।

शिष्यों ने महात्मा जी से प्रार्थना की, 'इसको आश्रम से निकाल देना चाहिये। नहीं तो यह दूसरों को भी यही आदत डाल देगा।'

पर वे बात टाल गये। कुछ दिन बीते। उस शिष्य ने फिर चोरी की। शिष्यों ने अपनी प्रार्थना फिर दुहरायी। महात्मा जी ने उस शिष्य को बुलाकर समझाया, पर आश्रम से नहीं निकाला। उनके समझाने के बावजूद भी उस शिष्य ने चोरी की और पकड़ा गया। अब तो शिष्यों को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने महात्मा जी से कहा, गुरुवर! आप इस शिष्य को आश्रम से बाहर कीजिए या हमें ही यह आश्रम छोड़कर जाने की आज्ञा दीजिए।'

महात्मा जी गंभीर हो गये। उनके अत्यधिक आग्रह करने पर महात्मा जी ने इसका कारण बताया, देखो साथियों! तुम सबका चरित्र अच्छा है, आदतें अच्छी हैं। तुम यदि चाहो तो कहीं भी जाकर शिक्षा प्राप्त कर सकते हो। लेकिन इसका चरित्र खराब है, आदतें खराब हैं। मैं इसे निकाल देता हूँ तो कौन इसे अपने आश्रम में रखेगा? इसलिए यह यहीं रहेगा, भले ही तुम सब इसे छोड़कर चले जाओ।'

महात्मा जी के शब्दों ने उस शिष्य पर जोरदार असर किया। उसकी आंखों में आँसू छलक आये और उसी दिन से उसकी चोरी करने की आदत छूट गई।

सत्संग का प्रभाव

थोड़ी देर की अच्छी संगत भी क्या परिणाम उत्पन्न करती है, यह अमर शहीद आर्य मुसाफिर पण्डित लेखराम जी के जीवन से ज्ञात होता है। आर्य समाज के ये महान विद्वान नेता ग्राम-ग्रामं में घूमकर प्रचार कर रहे थे। एक ग्राम में पहुँचे तो उस प्रदेश का डाकू मुगला भी उनके व्याख्यान को सुनने के लिए आ गया। इसके कई साथी भी दूसरे लोगों के साथ बैठ गये। ग्राम के लोगों ने जब मुगला को देखा और पहचाना तो उनके पैरों के नीचे से जमीन निकल गई। एक-एक करके वे उठने लगे। पण्डित लेखराम जी व्याख्यान दे रहे थे। लोग उठकर जा रहे थे। उन्हें आश्चर्य हुआ कि यह क्या हो रहा है। धीरे-धीरे सभी लोग चले गये। केवल मुगला और उनके साथी रह गये। पंडित लेखरामजी भाषण देते रहे। वे कर्म के संबंध में बोल रहे थे और बता रहे थे कि: **अश्वमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।**

व्याख्यान समाप्त हुआ तो मुगला ने पण्डित लेखराम जी के पास जाकर कहा-'आप कौन हैं?'

पण्डित जी ने कहा-'मैं लेखराम हूँ।'

डाकू ने कहा-'मैं एकान्त में आपसे कुछ बातें पूछना चाहता हूँ। क्या आपसे मिल सकता हूँ?'

लेखराम जी ने कहा-'अवश्य मिल सकते हो। मैं आर्य समाज में ठहरा हुआ हूँ, वहीं आ जाना।'

रात्रि के समय मुगला और उसके साथी समाज के मकान में जा पहुँचे। ग्रामवालों ने समझा कि आपत्ति आ गई है। ये लोग बेचारे पण्डित

जी को लूटने आये हैं, परन्तु मुगला ने हाथ जोड़कर पण्डित जी से कहा—'आप तो कह रहे थे कि प्रत्येक कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है, तो क्या यह ठीक है?'

पण्डित जी ने कहा—'शत-प्रतिशत ठीक है।'

मुगला बोला—'क्या प्रत्येक कर्म का फल भोगना पड़ेगा? क्या बचने का कोई उपाय नहीं?

पण्डित जी ने कहा—'कोई नहीं।'

मुगला ने कहा—'तो फिर क्या बनेगा? मैं तो कई वर्षों से डाके डाल रहा हूँ।'

पण्डित जी ने कहा—'आज से छोड़ दो। कल आर्यसमाज में आओ मैं तुम्हें यज्ञोपवीत दूँगा। इसके पश्चात् धर्म के मार्ग पर चलो।'

मुगला और उसके साथी दूसरे दिन आर्यसमाज में पहुँच गये। सबका जीवन बदल गया। यह होता है – सत्संग का प्रभाव !

●●●

उठाओ, गिराओ नहीं

एक किंगकांग था। मैं था कश्मीर में। वह भी वहीं था मैंने अपनी कथा में एक दिन कहा कि मनुष्य को थोड़ा खाना चाहिये। थोड़ा खाकर उसे पचाकर शक्ति में परिवर्तित करके उससे कार्य लेना चाहिये। कथा समाप्त हुई तो एक युवक ने मेरे पास आकर कहा–'स्वामी जी! आप थोड़ा खाने के लिए कहते हैं, परन्तु उस किंगकांग को देखिये, वह तो बहुत खाता है।'

मैंने पूछा–'क्या खाता है?'

उस युवक ने बताया कि प्रातःकाल वह दो बड़ी डबल रोटी के टोस्ट खाता है। इसके साथ एक बाल्टी चाय पीता है। तंब एक दर्जन अण्डे और एक पाव मक्खन खाता है।'

मैंने कहा–'हे मेरे भगवान! यह व्यक्ति क्या अब तक जीवित है?'

वह बोला–'जीवित क्यों नहीं!' और फिर यह तो अभी प्रातःकाल हुआ इसके पश्चात् दोपहर को भी खाता है, शाम को भी, रात को भी। दोपहर के भोजन में दो मुर्गे केवल चटनी के रूप में खाता है।'

मैंने कहा–'इतना खाकर वह करता क्या है?'

उसने कहा–'दूसरों को नीचे गिराता है।'

मैंने कहा–'बस गिराता ही है न, उठाता तो नहीं किसी को?'

जिस भोजन से दूसरों को गिराने की शक्ति मिले, वह तो ठीक नहीं। उसका कोई लाभ नहीं। जो दूसरों को गिराता है, वह स्वयं भी गिरता है।

●●●

सहनशक्ति की महिमा

महात्मा सुकरात बहुत बड़े विद्वान और दार्शनिक थे। सारा यूनान उनका आदर करता था। परन्तु उनकी धर्मपत्नी थी क्रोध की साक्षात् मूर्ति। वह हर समय लड़ती थी। मीठा बोलना उसने सीखा नहीं था। प्रतीत होता था चीनी उसने कम खाई, कुनेन ही खाती रही। सुकरात घर पर मौन बैठते तो वह चिल्लाना आरम्भ कर देती—'हर समय चुप ही बैठे रहते हैं।' वे कोई पुस्तक पढ़ते तो चिल्ला उठती—'आग लगे इन पुस्तकों को ! इन्हीं के साथ विवाह कर लेना था, मेरे साथ क्यों किया?'

एक दिन वे आये तो पत्नी ने इसी प्रकार बकना-झकना आरम्भ किया। सुकरात के कुछ विद्यार्थी और भक्त भी उनके साथ थे। उन्होंने इस बात का बहुत बुरा माना, परन्तु सुकरात मौन बैठे रहे। पत्नी ने इन्हें मौन देखा तो उसके क्रोध का पारा और चढ़ गया, वह और भी ऊँची आवाज में बोलने लगी। सुकरात फिर चुपचाप बैठे रहे। पत्नी ने तब क्रोध से पागल होकर मकान के बाहर पड़ा बहा हुआ गन्दा कीचड़ एक बर्तन में भरा और शीघ्रता से आकर सारा कीचड़ सुकरात के सिर पर डाल दिया।

तब सुकरात हँसकर बोले—'देवी, आज तो पुरानी कहावत अशुद्ध हो गई। कहावत है कि गरजने वाले बरसते नहीं। आज देखा जो गरजते हैं वे बरसते भी हैं।

सुकरात हँसते रहे, परन्तु उनका एक विद्यार्थी क्रोध में आ गया। उस विद्यार्थी ने चिल्लाकर कहा—'यह स्त्री तो चुड़ैल है आपके योग्य नहीं।'

सुकरात बोले – 'नहीं ये मेरे ही योग्य है। यह ठोकर लगा-लगाकर देखती रहती है कि सुकरात कच्चा है या पक्का। इसके बार-बार ठोकर लगाने से मुझे पता तो लगता रहता है कि मेरे अन्दर सहनशक्ति है या नहीं।

पत्नी ने ये शब्द सुने तो झट उनके चरणों में गिर पड़ी। रोती हुई बोली—'आप तो देवता हैं। मैंने आपको पहचाना नहीं।'

यह है तप की महिमा ! तप और सहनशीलता से अन्ततोगत्वा मनुष्य को विजय प्राप्त होती है। बुरे व्यक्ति भी अपना स्वभाव बदल देते हैं।

●●●

मिलकर रहिये, बाँटकर खाइये

एक चेला था। उसने अपने गुरू से पूछा—'महाराज ! संसार में रहने का क्या ढंग है?'

गुरू ने कहा—'अच्छा प्रश्न किया है तूने। एक-दो दिन में उत्तर देंगे।'

दूसरे दिन गुरू जी के पास एक व्यक्ति कुछ फल और मिठाइयाँ लेकर आया। सब वस्तुएँ महात्मा जी के सामने रखकर उन्हें प्रणाम किया और उनके पास बैठ गया। महात्मा जी ने उस व्यक्ति से बात भी नहीं की। पीठ मोड़ी, सब के सब फल खा लिये। मिठाई भी खा ली। वह व्यक्ति सोचता रहा—'यह विचित्र साधु है। वस्तुएँ तो सब खा गया, परन्तु मैं जो कुछ लाया हूँ, मेरी ओर देखता भी नहीं।'

अन्त में क्रुद्ध होकर उठा, चला गया। उसके जाने के पश्चात् महात्मा ने चेले से पूछा—'क्यों भाई? क्या कहता था वह व्यक्ति।

शिष्य ने कहा—'महाराज वह तो बहुत क्रुद्ध था। कहता था – मेरी वस्तुएँ तो खा लीं, मुझसे बोले भी नहीं।'

महात्मा जी बोले—'तो सुन ! संसार में रहने का यह ढंग नहीं। कोई दूसरा ढंग सोचना चाहिये।'

थोड़ी देर पश्चात् एक दूसरा व्यक्ति आया। वह भी फल और मिठाइयाँ ले आया। फल और मिठाइयों को साधु के सामने रखकर बैठ गया। साधु ने फल और मिठाइयों को उठाया, साथ वाली गली में फेंक दिया और उस व्यक्ति से बड़े प्यार और सम्मान के साथ बातें करने लगा—'कहो जी क्या हाल हैं? परिवार तो अच्छा है? कारोबार तो अच्छा है, बच्चे ठीक हैं? पढ़ते हैं न? बहुत अच्छा करते हो, उन्हें खूब पढ़ाओ। तुम्हारा अपना शरीर तो ठीक है? मन तो प्रसन्न रहता है? भगवान् का भजन तो करते हो? शरीर अच्छा हो, चित्त प्रसन्न हो और प्रभु भजन में मन लगे तो फिर मनुष्य को चाहिये ही क्या?

इस प्रकार की मीठी-मीठी बातें करता रहा और वह व्यक्ति मन ही मन कुढ़ता रहा–'यह विचित्र साधु है। मुझसे तो मीठी-मीठी बातें करता है, मेरी वस्तुओं का इसने अपमान कर दिया; इस प्रकार फेंक दिया जैसे उनमें विष पड़ा हो।'

वह भी चला गया तो महात्मा ने चेले से पूछा–'क्यों भाई, यह तो प्रसन्न हो गया?'

शिष्य ने कहा–'नहीं महाराज ! यह तो पहले से भी क्रुद्ध था। कहता था–मेरी वस्तुओं का अपमान कर दिया।'

महात्मा बोले–'तो सुन भाई ! संसार में रहने का यह ढंग भी ठीक नहीं है। अब कोई और विधि सोचनी होगी।'

तभी एक सज्जन वहाँ आए। वे भी फल और मिठाई लाये। साधु के समक्ष रखकर बैठ गये। साधु ने बहुत प्यार से उसके साथ बात की। उन वस्तुओं को आस-पास बैठे लोगों में बाँटा। कुछ मिठाई उस व्यक्ति को भी दी, कुछ स्वयं भी खाई। उसके घर-बार और परिवार की बातें करते रहे। उसे सुन्दर कथाएँ सुनाते रहे। जब वह भी गया, तो महात्मा ने पूछा–'क्यों भाई ! यह व्यक्ति क्या कहता था?'

शिष्य ने कहा–'यह तो बहुत प्रसन्न था महाराज। आपकी बहुत प्रशंसा करता था। कहता था–'ऐसे साधु से मिलकर चित्त प्रसन्न हो गया।'

महात्मा बोले–'तो सुन बेटे ! संसार में रहने का ढंग यही है।'

संसार में रहने का ढंग यह है कि प्रभु ने जो कुछ दिया है, उसे बाँटकर खा, त्याग-भाव से भोग और इसके साथ ही साथ भगवान से प्यार भी कर। उससे बातें कर। उसके नाम का भजन कर। उसका ध्यान कर।

●●●

पकाने वाले का दुष्प्रभाव

रणवीर था फाँसी की कोठरी में। मैं उसे प्रतिदिन उपनिषद् पढ़ाने जाता था। वह उपनिषदों का पाठ करता था। गायत्री मंत्र का जाप करता था। फाँसी की कोठरी में वह हर समय हँसता रहता था। परन्तु एक दिन मैंने उसे बहुत उदास देखा; पूछा–'तू आज उदास क्यों है?'

उसने कहा–'कल से बार-बार एक भयानक चित्र मेरे सामने आता है। मैंने ऐसी बात कभी स्वप्न में भी सोची नहीं, परन्तु इस बात के अतिरिक्त कोई दूसरी बात जाप करते समय भी दिखाई नहीं देती। मैं तो दुःखी हो गया हूँ। समझ में नहीं आता कि क्या हो गया है मुझे ?'

मैंने पूछा – 'क्या दिखाई देता है तुझे ?'

रणवीर ने कहा–'आप तो जानते हैं, मैं अपनी माँ से बहुत प्यार करता हूँ, परन्तु कल से ऐसा प्रतीत हो रहा है कि एक ग्रामीण का मकान है, कच्चा मकान। चारदीवारी के भीतर एक सेहन है। सेहन के परे एक कोठरी। ऐसा प्रतीत होता है कि कोठरी में मेरी माँ अपने बालों को खोले बैठी है, बालों को सुखा रही है। तभी मैं हाथ में तलवार लेकर सेहन में पहुँचा हूँ। सेहन से एक कोठरी में चला गया हूँ। अन्दर जाकर मैंने अपनी माँ को बालों से पकड़ा है। उन्हें घसीटकर बाहर के सेहन में ले आया हूँ। माँ चिल्ला रही है और मैं उनके वक्षःस्थल पर तलवार से वार के ऊपर वार कर रहा हूँ। वह रो रही हैं, चिल्ला रही हैं, लहुलुहान हो गई हैं, परन्तु मैं रुकने का नाम ही नहीं लेता। वह भयानक दृश्य मुझे बार-बार दिखाई देता है। अपनी ही माँ के लिए ऐसी बातें मेरे मन में आयें, इससे तो अच्छा है कि मैं मर जाऊँ।'

मैंने सोचते हुए कहा–'कल तूने खाया क्या था?'

उसने कहा–'जेल का जो साधारण खाना मेरे लिए आता है वही खाया था। असर केवल इतना है कि कल जो भोजन आया, वह पहले

से अधिक स्वादिष्ट था। शायद कोई नया-नया रसोइया जेल में आया है। बहुत अच्छा भोजन बनाता है वह।'

इस बात से मेरे मन को सन्तोष हुआ। मैंने जेल के दरोगा महोदय से पूछा-'रणवीर को जो भोजन आप देते हैं, उसे कल किसने बनाया था?'

उसने बताया कि कल से एक नये कैदी को खाना बनाने पर लगाया है।

मैंने पूछा-'वह कैदी कौन है?'

उन्होंने उस कैदी का रिकार्ड मँगवाकर बताया कि उसे अपनी माँ का कत्ल करने के अपराध में आजीवन कारावास मिला है। वह एक गाँव में रहता था, कच्चे मकान में जहाँ चारदीवारी के भीतर एक सेहन के परे एक कोठरी थी। उस कोठरी में उसकी माँ नहाने के पश्चात् अपने बाल सुखा रही थी कि वह व्यक्ति जो उसके धन पर अधिकार करना चाहता था, तलवार लेकर सेहन में आया। वहाँ से कोठरी में गया। माँ को घसीटता हुआ सेहन में ले आया। वहाँ बार-बार तलवार के वार करके उसे मार डाला। मरने वाली के क्रन्दन से लोग आ गए। उन्होंने माँ के हत्यारे को पकड़ लिया।'

मैं यह बात सुनकर चकित रह गया। जिस व्यक्ति ने भोजन बनाया, उसके मन के विचार किस प्रकार भोजन करने वाले के मन में पहुँच गए-यह देखकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मैंने उनसे कहा-'रणवीर का भोजन उस व्यक्ति से न बनवाएँ।'

वे सज्जन व्यक्ति थे, मान गये। तीसरे दिन मैं रणवीर के पास पहुँचा तो पूछा-'अब तो वह भयानक दृश्य दिखाई नहीं देता ?'

वह प्रसन्न था। हँसता हुआ बोला-'अब तो दिखाई नहीं देता। अब तो मन फिर से एकाग्र होने लगा है।'

यह है अन्न का प्रभाव ! बुरी कमाई का ही नहीं, बुरे व्यक्ति के हाथ का बनाया हुआ अन्न भी मन पर प्रभाव डालता है।

उचित क्रोध

महाराजा रणजीत सिंह के जनरैल सरदार हरिसिंह नलवा कश्मीर में थे, जब उन्हें महाराजा का सन्देश मिला कि पठानों की फौजें अटक के उस पार आ गई हैं, वहाँ पहुँचो, उन्हें हटाओ। सरदार हरिसिंह नलवा तेजी के साथ कश्मीर से अटक की ओर बढ़े। वह गढ़ी हबीबुल्ला के मार्ग में एबटाबाद की ओर बढ़ रहे थे कि दोमेल के निकट रहने वाले पठानों ने मार्ग देने से मना कर दिया। नलवा ने कहा–तुम क्या चाहते हो? तुम्हारे साथ मुझे लड़ना नहीं है।'

पठानों ने कहा–"'लड़ना हम भी नहीं चाहते, परन्तु हमारी कुछ शर्तें हैं। उन्हें माने बिना आगे नहीं जा सकते हो।'

सरदार हरिसिंह नलवा ने सारी बात को मजाक समझा, पूछा–'क्या शर्तें हैं?'

पठानों ने कहा–'आज शाम को हम आपस में फैसला करके बतायेंगे।'

नलवा ने कहा– 'कोई बात नहीं, आप शाम को बताइये। हम कल चले जायेंगे।' परन्तु जिस बात को नलवा ने मजाक समझा था, वह उसके लिए समस्या बन गई। शाम हो गई, कोई शर्त बताई न गई। दूसरे दिन भी शर्त तय न हुई। तीसरे दिन भी नहीं हुई। पठान मार्ग रोके खड़े थे। नलवा जी उनसे बिना लड़े आगे बढ़ना चाहते थे। समय व्यतीत हुआ जाता था। शर्तों का निर्णय होने में नहीं आता था। हरिसिंह चकित थे, करें तो क्या करें?

एक रात वह सो रहे थे तो ठप-ठप की आवाजें सुनकर जाग उठे। पास खड़े पहरेदार से उन्होंने पूछा-'ये आवाजें कैसी हैं?'

पहरेदार ने कहा-'साहब वर्षा हो रही है।'

हरिसिंह बोले-'वर्षा की आवाज मैं भी सुनता हूँ, परन्तु यह ठप-ठप क्या हो रहा है?'

पहरेदार ने कहा–'सरकार, सब लोग अपनी छतों पर चढ़कर मिट्टी को कूट रहे हैं। इस प्रदेश की मिट्टी ही ऐसी है कि कूटे-पीटे बिना ठीक नहीं रहती।'

हरिसिंह एकदम चौंक उठे, बोले–'क्या कहा तुमने? एक बार फिर कहो तो!'

पहरेदार ने कहा–'सरकार इस इलाके की मिट्टी ही ऐसी है। कूटे-पीटे बिना दुरुस्त नहीं होती।'

नलवा जी हँसकर बोले–'यह मेरी ही गलती थी कि मिट्टी की विशेषता को मैं नहीं समझ पाया। सेना को आज्ञा दो कि इसी समय पठानों पर आक्रमण कर दो। जो मिले, उसको वहीं पीट डालो!'

थोड़ी देर में सब ओर मार-पीट होने लगी। प्रातःकाल होने से पहले कितने ही पठान गर्दनों में पल्लू डाले मेरे पास आये। हरिसिंह गरजकर बोले-'क्या चाहते हो?'

पठानों ने सिर झुकाकर कहा-'कुछ नहीं श्रीमन्।'

हरिसिंह बोले-'क्या शर्तें हैं तुम्हारी?'

पठानों ने कहा-'सरकार कोई शर्त नहीं। मार्ग साफ है। आप जाइए, कोई आपको रोकेगा नहीं।'

यह है ठीक और उचित क्रोध, जो घर से बाहर और देश की रक्षा के लिए, उसकी स्वतंत्रता के लिए और धर्म की रक्षा के लिए किया जाये! ऐसा क्रोध आत्मदर्शन के मार्ग में रुकावट नहीं। वह क्रोध, जो घर में किया जाये, स्वार्थ के लिए किया जाये। ऐसा क्रोध घर को, परिवार को, जाति को, देश को, सबको नष्ट कर देता है। ऐसा क्रोध बुद्धि को नष्ट कर देता है। बुद्धि के नाश होने से सर्वनाश होता है।

●●●

जैसा आहार वैसा विचार

एक साधु रहता था किसी जंगल में। कितने ही लोग उसके दर्शन करने को आते। जो भी जाता, उसे शान्ति मिलती। एक दिन उस देश के राजा भी गए। देखा, साधु एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं। सर्दी और वर्षा से बचने का कोई प्रबन्ध नहीं है।

राजा ने कहा – 'महात्मन् ! यहाँ तो बहुत कष्ट होता होगा, आप मेरे साथ चलिए, महल में रहिये।'

साधु पहले तो माना नहीं, राजा ने बहुत आग्रह किया तो बोले – 'अच्छा चलो!'

महल में गये । एक सुन्दर कमरे में ठहरे। हर समय नौकर उपस्थित रहने लगे। अच्छा भोजन मिलने लगा । तीन मास व्यतीत हो गये। राजा उसकी पूजा करते । रानी श्रद्धा रखतीं। एक दिन रानी नहाने के लिए स्नानागार में गई। नहाकर उठी तो वह हीरों का हार पहनना भूल गई, जो उसने उतारकर स्नानागार में रख दिया था। हार वहीं पड़ा रहा। रानी के पश्चात् साधु स्नानागार में गया । हार को देखा, उठाकर अपने कोपीन में छुपा लिया। स्नानागार से निकले, महल से बाहर चले गए।

कुछ देर पश्चात् रानी को हार का ध्यान आया। दासी से बोली – 'स्नानागार में हार छोड़ आई हूँ, उसे ले आओ।' परन्तु वहाँ तो हार नहीं था। खोज होने लगी पूछा गया – गुसलखाने में रानी के पश्चात् कौन गया था ? पता लगा कि महात्मा गये थे महात्मा की खोज होने लगी। महात्मा मिले नहीं। राजा को ज्ञात हुआ तो उसने सिपाहियों को आज्ञा दी 'उस साधु के पीछे जाओ । उसे पकड़ ले आओ।'

इधर वे महात्मा शहर से बाहर निकले । जंगल में चले गये। दिन-भर चलते रहे। पाँव थक गये । भूख भी सताने लगी तो जंगल का

एक फल तोड़-कर खा लिया। फल था एक औषधि, उससे दस्त लग गए । इतने दस्त आये कि महात्मा निर्बल हो गए। तभी उन्हें हार का ध्यान आया। उसे देखते ही बोले–'मैं इसे क्यों उठा लाया? मैंने चोरी क्यों की?'

उसी समय वापस चल पड़े। आधी रात के समय राजा के महल पर पहुंचे । आवाज दी। राजा जागे । महात्मा ने उनसे जाकर कहा – 'राजन्! आपका यह हार है, ले लो। मैं यहाँ से उठाकर ले गया था। मुझसे अपराध हुआ। मैं क्षमा माँगने आया हूँ।'

राजा ने आश्चर्य से कहा – वापस ही लाना था, तो आप इसे ले क्यों गए थे?'

साधु ने कहा – 'राजन्! क्रोध न करना, तीन मास तक मैं तुम्हारा अन्न खाता रहा, उससे मेरा मन पापी हो गया। जंगल में जाकर दस्त आये। शरीर शुद्ध हो गया । तुम्हारे अन्न का प्रभाव समाप्त हो गया । मैंने वास्तविकता को जाना और वापस आ गया।'

यह है अन्न का प्रभाव ! इसीलिए यूनान के फिलॉसफर पैथागोरस ने कहा था–'तुम मुझे बताओ, कौन आदमी क्या खाता है, मैं तुम्हें बताऊँगा कि वह क्या सोचता है!'

इसीलिए कहते हैं कि जैसा अन्न खाओ, वैसा मन बनेगा। जो व्यक्ति गंदा और खोटा अन्न खाता है तो उसका मन कभी अच्छा होगा नहीं। अन्न को जिस भावना से कमाया हो और तैयार किया हो सबका प्रभाव मन पर पड़ता है।

●●●

जो कुछ है सब तोर

एक था राजा। बड़े परिश्रम से राज्य करता था। बहुत ध्यान रखता था प्रजा का, परन्तु ध्यान करते हुए भी थक जाता था। अन्त में दुःखी होकर वह अपने गुरू के पास गया, जो एक वन में एक वृक्ष के नीचे रहते थे। उनके पास जाकर बोला–'गुरुदेव ! मैं इस राज्य के झझंटों से, इसकी समस्याओं से, इसकी उलझनों से दुःखी हो गया हूँ। एक समस्या को हल करता हूँ तो दूसरी आकर खड़ी हो जाती है। दूसरी को सुलझाता तो तीसरी। नित नई उलझन, नित नये झगड़े । मैं तो दुःखी हो गया हूँ इस जीवन से, क्या करूँ?

गुरुदेव ने कहा – 'राजन् ! ऐसी बात है तो छोड़ दो इस राज्य को।'

राजा ने कहा – 'कैसे छोड़ूँ? राज्य छोड़ देने से इसकी समस्याएँ सुलझ नहीं जायेंगी। सब कुछ तितर-बितर हो जाएगा। अराजकता फैल जायेगी चहुँ ओर।'

गुरू ने कहा – 'बहुत अच्छा, अपने पुत्र को राज्य दे दे। तू मेरे पास आकर रह, जैसे मैं रहता हूँ वैसे ही निश्चिन्त होकर रह।'

राजा ने कहा – 'परन्तु मेरा पुत्र तो अभी छोटा-सा बच्चा है, वह इस भार को संभालेगा कैसे?'

गुरुदेव ने कहा– 'बहुत अच्छा, तो फिर तू अपना राज्य मुझे दे दे, मैं चलाऊँगा उसे।'

राजा ने कहा – 'यह मुझे स्वीकार है।'

गुरुदेव ने कहा – 'तो हाथ में पानी लेकर संकल्प कर। सारा राज्य मुझे दान कर दे।'

राजा ने ऐसा ही किया और उठकर चल पड़ा । गुरू ने पूछा – 'अब कहाँ जाते हो?'

राजा ने कहा – 'कोष से कुछ रुपया लेकर किसी दूसरे देश में जाऊँगा। वहाँ व्यापार करके जीवन व्यतीत करूँगा। गुरुदेव ने कहा–'अब उस पर तेरा अधिकार ही क्या है?'

राजा ने सिर झुकाकर कहा – 'वास्तव में कोई अधिकार नहीं। राज्य में वापस नहीं जाऊँगा।'

गुरू ने कहा – 'तो फिर करेगा क्या?'

राजा बोला – कहीं जाकर नौकरी करूँगा।'

गुरू बोले – 'यदि नौकरी ही करनी है तो मेरी कर ले । इतना बड़ा राज्य है न किसी को तो रखना ही पड़ेगा। तू ही यह कर । मुझे सेवक क़ी आवश्यकता है, तुझे सेवा की। बोल-यह काम करेगा?'

राजा ने सोचते हुए कहा-'करूँगा ।'

गुरू बोले – तो आज से मेरा सेवक बनकर राज्य को चला । देख, वहाँ कुछ भी तेरा नहीं। भला हो, बुरा हो, हानि हो, लाभ हो, सब मेरा होगा। तुझे केवल वेतन मिलेगा।'

राजा ने इस बात को स्वीकार कर लिया । वापस आकर राज्य चलाने लगा । कोई एक मास के बाद गुरू ने आकर पूछा–'कहो भाई, अब इस राज्य को चलाना कैसा लगता है? अब भी क्या जीवन संकटमय प्रतीत होता है?'

राजा ने कहा –'नहीं महाराज ! अब इसमें मेरा क्या है? मैं तो नौकरी करता हूँ। पूरे ध्यान से, परिश्रम करता हूँ और फिर रात को निश्चिंत होकर सो जाता हूँ।'

तो सुनो भाई ! यह है वह साधन, जिसको अपनाने के पश्चात् मनुष्य कर्म करता हुआ भी उसमें लिप्त नहीं होता अपने आपको स्वामी न समझो। यह सब कुछ तुम्हारा है नहीं। तुम केवल अपने कर्तव्य पालन करने के लिए आये हो उसे पूर्ण करो और चले जाओ।

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सब तोर ।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर ।।

●●●

बालक का स्वप्न

एक धोबी के यहाँ एक अल्प आयु का नौकर था। वह रात्रि में सोते हुए एकाएक चिल्ला उठा – 'अहो, मेरा ऐसा भाग्य !'

धोबी ने यह सुना और उस नौकर को जगाकर पूछा – "अरे, क्या चिल्ला रहा था?"

नौकर ने कहा – "कोई खास बात नहीं ।"

दूसरे दिन प्रातः धोबी ने फिर पूछा, तब भी वह बात टाल गया। परन्तु उसी दिन से उस स्वप्न को साकार करने के लिए वह बालक धोबी से छिपकर पढ़ने लगा। जब कई बार पूछने पर भी उसने नहीं बताया, तो एक दिन धोबी ने कहा –"या तो आज बता दे अन्यथा मेरे यहाँ काम करना बन्द कर दे।"

वह होनहार युवक था, अतः उसने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया और धोबी के यहाँ काम करना बन्द कर दिया ।

उसके उपरान्त वह लड़का अध्ययन दत्तचित रहने लगा, साथ ही उसे गांव के जमींदार के यहां नौकरी भी मिल गयी । एक दिन धोबी जमींदार के यहाँ कपड़े लेकर गया। धोबी ने उसे वहाँ देखा तो उससे पूछा, "तुम यहाँ कैसे?"

उसने बताया कि वह जमींदार के यहाँ काम कर रहा है।

उस धोबी ने जमींदार से कहा कि इसने एक रात्रि को स्वप्न में बड़े जोर से कहा कि, 'अहो मेरा भाग्य।' मैंने जानने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु यह किसी को नहीं बताता है। आप इससे पूछ लें। इस पर जमींदार ने उस लड़के को बुलाकर धोबी के सामने पूछा, तो भी उसने स्वप्न की बात बताने से इन्कार कर दिया। बाद में कई बार आग्रह करने पर भी जब उसने नहीं बताया तो जमींदार ने भी उसे अपने यहाँ से हटा दिया। परन्तु वह धुन का पक्का और दृढ़निश्चयी था। स्वप्न को साकार करने की

योजनाओं में सतत लगा रहा। अतः उसने अपना अध्ययन जारी रखा। साथ ही वह किसी प्रकार राजा के यहाँ एक साधारण नौकर हो गया और वहाँ से उन्नति करते-करते एक दिन मंत्री बन गया।

इसे सौभाग्य कहें या दुर्भाग्य कि एक दिन राजा साहब के यहाँ वे ही जमींदार, जिनके यहाँ वह पहले काम करता था, पहुँचे। उन्होंने उसे देखकर राजा साहब को बताया कि आपके यहाँ ये जो मंत्री हैं, ये पहले एक धोबी के यहाँ काम करते थे, बाद में मेरे यहाँ नौकर रहे। धोबी के यहाँ जब वे काम करते थे तो एक रात्रि को स्वप्न में ये जोर से चिल्लाये कि 'अहो मेरा ऐसा भाग्य।' परन्तु वह स्वप्न आज तक इन्होंने न धोबी को बताया और न मुझे ही। आप इसकी सत्यता के विषय में इनसे पता कर लीजिये।

राजा ने मंत्री को बुलाकर पूछा। उन्होंने स्वप्न के बारे में बताने से इंकार कर दिया। इस पर राजा ने चेतावनी देकर कहा कि या तो आप अपना स्वप्न बताइये, अन्यथा हम आपको दण्ड देंगे। स्वप्न न बताने पर राजा ने मंत्री को बंदीगृह में डाल दिया। उस मंत्री के बंदी हो जाने के कुछ समय उपरान्त एक पड़ोसी राजा ने इस राजा पर चढ़ाई करने की योजना बनाई और सीमा पर सेना जमा कर दी। यह जानने के लिए कि वहाँ के राजा या मंत्री चतुर हैं या नहीं, क्योंकि यदि चतुर होंगे तो युद्ध जीतना कठिन होगा, उसने दो घोड़ियाँ भेजीं और कहा कि बताया जाये कि कौन माँ है और कौन बेटी। सबने अपनी-अपनी बुद्धि लगाई, परन्तु कोई भी न बता पाया।

बन्दी मंत्री को नित्य भोजन देने के लिए जो नौकर जाता था, उससे वे राजा के यहाँ के नित्य के समाचार जान लिया करते थे।

एक दिन जब मंत्री ने नौकर से समाचारों के सम्बंध में पूछा तो उसने पड़ोसी राजा के हमले तथा दो घोड़ियों की बात बताई। साथ ही यह भी बताया कि राजा इससे बहुत चिन्तित हैं।

बन्दी मंत्री ने तुरन्त उत्तर दिया। इसमें कौन सी ऐसी चिन्ता की बात है। दोनों घोड़ियों को नदी में नहलाने के लिए ले जायें, जो माँ होगी वह

पानी में घुसते समय आगे जायेगी, बेटी उसके पीछे। इसी से ज्ञात हो जायेगा कि कौन माँ है और कौन बेटी।

परीक्षा के रूप में इसी प्रकार के दो तीन प्रयोग आक्रामक राजा ने और किये जिनका समुचित उत्तर पाकर उसे यह आभास मिल गया कि यह राजा बहुत चतुर है, इसे हराना कठिन है। तब उसने राजा के पास अपना दूत भेजा कि आप या आपके यहाँ जो भी इस प्रकार का व्यक्ति हो जिसने इन बातों का उत्तर दिया है, उससे हम अपनी कन्या का विवाह करना चाहते हैं। इस समाचार से सारे राज्य में सनसनी फैल गई और बन्दी मंत्री की बुद्धिमानी की प्रशंसा होने लगी। राजा ने उन्हें कारागार से मुक्त कर दिया। तदुपरान्त पड़ोसी राजा ने अपनी कन्या का विवाह उनसे कर दिया और साथ ही दहेज में अपना आधा राज्य भी उन्हें दे दिया।

इसके साथ ही जिस राजा के यहाँ वे मंत्री थे, उसने भी अपनी कन्या उसे ब्याह दी और खूब सम्पत्ति दी।

कुछ समय बाद एक दिन प्रातःकाल मंत्री ने दोनों राजाओं, जमींदार तथा धोबी को अपने यहाँ आमंत्रित किया। जब वे सब उपस्थित हुए, तो उस समय मंत्री अपनी चारपाई पर लेटे हुए थे और उसकी दोनों पत्नियाँ उनके पैर दबा रही थीं। इसके अलावा कई नौकर भी सेवा में रत थे। ये चारों लोग भी उनके आस-पास बैठ गये।

तब उन्होंने बताया कि इस समय जो दृश्य आप देख रहे हैं, यही मैंने स्वप्न में देखा था। यदि इससे पूर्व मैंने बता दिया होता, तो आप में से कोई भी इसे पूरा न होने देता।

अपने मन में जो विचार आते हैं, उनका ढिंढोरा न पीटते हुए उन्हें योजनाबद्ध रीति से कठिन परिश्रम करते हुए पूरा करने के लिए जुट जाओ। एक साधारण सा दिखने वाला व्यक्ति भी कर्म कठोरता, कार्य के प्रति अटूट लगन के साथ जुटा रहे तो बड़ा बन सकता है।

●●●

भेड़िया और बहादुर लड़की

एक समय की बात है, एक लड़की काफी समय से अपने ननिहाल नहीं गई थी। उसने अपनी माँ से ननिहाल जाने की इच्छा व्यक्त की। माँ बोली– "बेटी ननिहाल का रास्ता घनघोर जंगल से होकर जाता है, तू अकेली कैसी जायेगी? मुझे तो फुर्सत है नहीं और जंगल में भेड़िया रहता है।"

बेटी बोली– "माँ तुम मेरी जरा भी चिन्ता न करो, मैं आराम से ननिहाल चली जाऊँगी। नानी अब बहुत बूढ़ी हो चली है। न जाने वह कैसी होगी।"

बेटी की हठ थी। माँ चुपचाप सहमत हो गई।

अगले दिन सवेरे लड़की ननिहाल की ओर चल पड़ी। चलते-चलते वह जंगल के बीच जा पहुँची। उसे रास्ते में भेड़िया दिखाई दिया। किन्तु वह जरा भी डरी नहीं, चलती रही।

भेड़िए के नजदीक आकर वह ठिठक गई। भेड़िए ने दाँत निपोरकर कहा– "लड़की कहाँ जा रही हो?"

"मैं अपनी नानी की कुशल क्षेम पूछने जा रही हूँ," लड़की ने उत्तर दिया।

भेड़िया मन ही मन बड़ा खुश हुआ। सोचने लगा अच्छा शिकार हाथ लगा है। वह बोला– "जाओ, मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ।"

यह कहकर वह सिर पर पैर रखकर वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गया।

लड़की ने सोचा, चलो भेड़िये से तो जान बच गई। वह निर्भय होकर ननिहाल की ओर तेजी से कदम बढ़ाने लग गई।

उधर भेड़िया आनन-फानन में नानी के घर जा पहुँचा। नानी अस्वस्थ थी। उसने नानी को चट कर दिया और नानी के कपड़े पहन कर बिस्तर में लेट गया।

रात होते-होते लड़की थकी-माँदी ननिहाल पहुँची। नानी के पलंग के पास गई। बोली– 'नानी-नानी, कैसी तबियत है?'

"तबियत बहुत खराब है," भेड़िया बोला– "बेटी कोई मेरी खबर लेने ही नहीं आया। बहुत दिनों से बीमार पड़ी हूँ।"

"पर नानी, तेरी नाक लम्बी क्यों हो गई है?" भेड़िए का थूथन देखकर लड़की ने संदेह से पूछा।

"बेटी मक्खी-मच्छरों ने काट-काटकर मेरी यह दुर्गति कर डाली है।" भेड़िये ने मायूसी से जवाब दिया।

"इतने बड़े-बड़े नाखून कैसे ?" लड़की ने भेड़िये के लम्बे-नुकीले नाखूनों को देखकर डरते हुए पूछा।

"बेटी सालों से काटे ही नहीं।"

लड़की समझ गई कि यह नानी के वेश में भेड़िया है। किन्तु वह बड़ी समझदार थी। शोरगुल करने का मतलब था भेड़िये का ग्रास बनना। वह चालाकी से बोली-"नानी मुझे खीर अच्छी लगती है। मैं अभी खीर बनाकर लाती हूँ।"

भेड़िया क्या कहता? उसने सोचा जब वह खीर बनाकर लायेगी, तब खीर के साथ इसे भी डकार लूँगा। वह चुपचाप मुँह ढककर लेटा रहा।

कुछ देर बाद लड़की खीर बनाकर ले आई। खीर में उसने जहर मिला दिया। थाली भरकर खीर लेकर पलंग के पास खड़ी होकर बोली-"नानी उठ, खीर खा ले, फिर सो जाना।"

भेड़िया तो जगा ही था। खीर की थाली पकड़कर बोला-"ला बेटी! आज एक अर्से के बाद खीर खाने को मिली है।" यह कहते-कहते वह लपालप खीर खाने लगा।

खीर खाते-खाते भेड़िया बेहोश होकर पलंग पर गिर गया और मर गया।

लड़की ने चतुराई से अपनी जान भी बचा ली और खूंखार भेड़िये से अपनी नानी की मौत का बदला भी ले लिया।

लड़की की माँ ने जब यह सुना तब अपनी प्यारी बेटी को छाती से चिपका लिया। उसे अपनी माँ के मरने का इतना दुःख न था जितनी खुशी अपनी बेटी के भेड़िए के चंगुल से बच निकलने की थी।

हिम्मत और सूझबूझ से काम लिया जाये तो बड़ी से बड़ी मुसीबत से भी सरलता से मुक्ति मिल सकती है।

कोरे हाथ

वह अमीर बाप का इकलौता बेटा था–ऐश–इशरत में पला और बेहद आराम–पसन्द। उसने कभी कोई काम अपने आप नहीं किया था। जब वह अभी जवान ही था, उसका बाप मर गया। तब भी उसने किसी काम को हाथ नहीं लगाया और बाप की दौलत पर ऐश करता रहा।

कभी कोई उसे सलाह देता–"तुम्हें कोई न कोई काम शुरू करना चाहिये। एक दिन यह दौलत खत्म हो जायेगी, तो क्या करोगे?"

"तब देखा जायेगा," वह जवाब देता–"अभी से क्यों मुसीबत में पड़ूँ?" और फिर, दौलत खत्म हो गई, तो मैं उस साधु के पास जाऊँगा, जिसके वरदान से मेरे पिताजी ने इतनी दौलत कमायी थी। मैं भी उससे वरदान लेकर आऊँगा।"

आखिर एक दिन जब वह अपनी सारी दौलत खत्म कर बैठा, तो उस साधु से मिलने गया, जो जंगल में एक पहाड़ी पर रहता था। वह अभी कुछ ही दूर गया था कि उसे बहुत कमजोर और बूढ़ा शेर दिखाई दिया। शेर ने उससे पूछा – "कहाँ जा रहे हो?"

"यहाँ जंगल में एक साधु रहता है न, उसके पास," उसने कहा–"भला कौन सी पहाड़ी पर रहता है?"

"यहाँ से तीसरी पहाड़ी पर," शेर ने कहा, "अगर उसके पास जा रहे हो तो मेरा भी एक काम कर दोगे?"

"क्या काम?"

"मेरी भूख मर गई है। मैं कुछ खा नहीं पाता और दिन–प्रतिदिन कमजोर होता जा रहा हूँ। सो, उससे पूछना कि इसका क्या इलाज करूँ?

"याद रहा तो पूछूँगा," उसने लापरवाही से कहा और चल दिया।

जब वह पहाड़ी की ढलान उतर रहा था, तो पगडंडी के पास बैठी एक अंधी बुढ़िया ने उसे रोककर कहा–"तुम उन साधु महाराज के पास जा रहे हो न?"

"हाँ, पर तुम्हें कैसे पता लगा ?"

"बस पता लग गया। मुझे भी साथ ले चलो, ताकि मैं उनसे अपनी अंधी आँखों का इलाज पूछ सकूँ।"

"न-न, मैं यह मुसीबत मोल नहीं लेता।"

"तो फिर इलाज पूछ कर लौटते समय मुझे बता देना। ईश्वर तुम्हारा भला करेगा।"

उसने जवाब नहीं दिया और आगे बढ़ गया। काफी आगे जाने पर वह एक जगह रुक गया और सोचने लगा कि दायें हाथ जाये या बायें हाथ। तभी वहाँ खड़े एक सूखे पेड़ ने कहा–"अगर साधु के पास जाना हो तो बायें हाथ जाओ।"

उसने हैरानी से पेड़ की ओर देखा। तभी पेड़ ने कहा–"मैं कई सालों से सूखा हुआ हूँ। अब मैं किसी को न छाया दे सकता हूँ, न ही फल। शायद साधु इसका इलाज बता सके। अगर पूछ सको तो बहुत मेहरबानी होगी।"

"देखूँगा," उसने कहा और चल दिया।

आखिर जब वह साधु के पास पहुँचा, तो वह आँखें बन्द किये, समाधि लगाये बैठा हुआ था। आहट पाते ही उसने कहा – "आओ बैठो। वरदान माँगने आये हो न?"

"जी महाराज," उसने हाथ जोड़कर कहा – "आप तो एकदम अर्न्तयामी हैं।"

"आखिर तपस्या की है न। खैर...... तुम्हारे पिता ने तो हमारी बहुत सेवा की थी और वरदान पाया था। पर तुमने क्योंकि कभी कोई काम नहीं किया है, इसलिये तुम्हें बिना सेवा के ही वरदान मिल जायेगा।"

"तब तो बहुत-बहुत मेहरबानी होगी आपकी।" उसने खुश होकर कहा।

"पर अब से थोड़ी बहुत मेहनत जरूर शुरू करो," साधु ने कहा-"मेहनत में ही दौलत है। तुम्हारे पिता की दौलत वास्तव में उनकी मेहनत का ही फल था।"

"जरूर करूँगा। बस, आपका वरदान मिल जाये।"

"ठीक है," साधु ने कहा और हाथ उठाकर उसके सिर पर रखा, "हम वरदान देते हैं कि घर पहुँचने तक तुम मालामाल हो चुके होगे।"

उसी समय उसने साधु के पाँवों पर माथा रखा और उसका धन्यवाद किया। फिर जब वह जाने के लिए उठा, तो साधु ने कहा-"कुछ और नहीं पूछना है?"

"नहीं। बस, आपका वरदान ही पाना था।"

साधु के होंठों पर हल्की-सी मुस्कुराहट आयी, रास्ते में बीमार शेर, अंधी बुढ़िया और सूखे पेड़ ने कुछ पूछने के लिए नहीं कहा था?"

"हाँ-हाँ, उन्होंने अपना इलाज पूछने के लिए कहा था।" उसने जल्दी से कहा।

सो जाते समय उन्हें इलाज बताते जाना। सूखे पेड़ से कहना कि उसके नीचे मोहरों का एक बर्तन दबा हुआ है। अगर उसे निकाल दिया जाये, तो वह फिर से हरा-भरा हो जायेगा..... और अन्धी बुढ़िया से कहना कि उसके दायें हाथ जो कटीली झाड़ियाँ हैं, उनमें बना एक घोंसला है। उस घोंसले में छोटा-सा एक पत्थर पड़ा है, उस पत्थर को आँखों से छूने पर उसे फिर से दिखने लगेगा और बीमार शेर से कहना कि अगर वह किसी आदमी के कोरे हाथ सूंघे-ऐसे आदमी के, जिसने कभी कोई मेहनत की कमाई न की हो, तो उसकी भूख फिर से जाग उठेगी।"

"यह तो बहुत अच्छे इलाज बताये हैं आपने।" उसने कहा–"कभी मुझे भी कोई बीमारी हुई, तो मैं आपके पास आऊँगा।"

"खुशी से आना साधु ने कहा तो उसके होठों पर फिर मद्धिम–सी मुस्कुराहट आयी, "और हाँ, एक बात बताना मैं भूल ही गया। जहाँ उस पत्थर के स्पर्श से बुढ़िया की आँखों में रोशनी आ जायेगी, वहाँ बुढ़िया की आँखों को छूने से वह पत्थर पारस बन जायेगा–यानी लोहे की किसी भी चीज को छूने से वह उसे सोना बना सकेगा। अच्छा, जाओ अब। जाने के लिए बड़े उतावले दिखते हो। पर हाँ, तीनों को इलाज बताकर जाना, वरना मेरा वरदान पूरा नहीं होगा।"

वापस जाते समय उसने सूखे पेड़ को साधु का इलाज बताया, तो पेड़ ने कहा–"यहाँ और कौन आयेगा? तुम्हीं निकाल दो न वह बर्तन। उसमें रखी मोहरें तुम खुद ले लेना।"

"वाह इलाज भी बताया और अब जमीन खोदकर बर्तन भी निकालूँ।" उसने कहा–"यह जो मजदूरों का काम है। किसी और से कहना।" वह चल पड़ा।

बुढ़िया बड़ी उत्सुकता से उसका रास्ता देख रही थी। जब उसने इलाज सुना, तो गदगद कण्ठ से कहा–"तुम तो मेरे लिए जैसे नयी रोशनी लेकर आए हो। वारी जाऊँ मैं तुम पर। कितने अच्छे बेटे हो।" उसकी आँखों में आँसू आ गए, तो वह कुछ क्षण बोल न पायी। तब उसने सँभलकर कहा–"अब जल्दी से वह पत्थर लाकर मेरी आँखों को छुआओ, ताकि मैं फिर से इस संसार को देख सकूँ और सबसे पहले तुम्हारे जैसे अच्छे बेटे का मुँह देखूँ।"

"मैं जाऊँ उन कटीली झाड़ियों में पत्थर लाने।" उसने कहा–"मेरे हाथों में काँटे चुभ गये तो? मेरे कपड़े फट गये तो? कोई और आदमी यहाँ आए, तो उससे कहना। मुझे पहले ही देर हो रही है।" वह चल पड़ा।

"रुक जाओ, बेटा रुक जाओ।" बुढ़िया ने कहा–"बस थोड़ी देर और लगेगी। मेरी अंधेरी दुनिया में फिर से रोशनी आ जायेगी....."

मगर वह पहले से भी तेज चलने लगा। वह जल्दी से घर पहुँचकर मालामाल हो जाना चाहता था।

शेर से मिलने पर उसने उसे जल्दी से इलाज बताया और वहाँ से जाने को हुआ। तभी शेर ने निराश भाव से कहा–"भला ऐसा आदमी कहाँ मिलेगा जिसने कभी कोई मेहनत की कमाई न की हो? तब तो मेरा इलाज असम्भव है।"

"बहुत से आदमी मिल जायेंगे," उसने आगे बढ़ते हुए कहा–"मेरी तरह और भी कई अमीर घरों के बेटों ने कभी कोई मेहनत की कमाई नहीं की होगी।"

"अच्छा! तो तुम्हारे हाथों ने कभी कोई मेहनत नहीं की है?" शेर ने खुश होकर कहा–"तब तो अपने हाथ मुझे सुंघाते जाओ।"

"कोई और आदमी ढूंढना," उसने तेजी से आगे बढ़ते हुए कहा–"मुझे देर हो रही है।"

"सुँघाने में कितनी देर लगेगी।" शेर ने कहा और लपककर उसके पास गया, "बस चलते-चलते सुंघा दो।"

"नहीं, मैं अपने हाथ गन्दे करना नहीं चाहता।" उसने नफरत से कहा और तेजी से चलता रहा।

"तो फिर मुझे खुद सूँघने पड़ेंगे।"

शेर ने कहा और अपने पंजे के एक ही वार से उसे नीचे गिरा लिया। उसी समय उसने उसके हाथों को सूँघा, तो उसकी भूख चमक उठी। अगले ही क्षण उसने, उसके शरीर में अपने दाँत गड़ा दिये।

माँ ! मुझे मनुष्य बना दे !

शहर से दूर एक ऊँची पहाड़ी थी। उसकी चोटी पर एक छोटा-सा घर था। उसमें केवल दो प्राणी रहते थे। एक बूढ़ी औरत व दूसरा एक 12-13 वर्ष का उसका नाती। वृद्धा के सभी बाल सफेद हो चुके थे। शरीर पर झुर्रियाँ लटक रही थीं। कमर झुक गई थी। बालक सीधा, सरल अन्जान था। दोनों आनन्द से रहते थे। उन्हें कोई कष्ट न था। वहाँ से नगर का दृश्य बहुत अच्छा दीख पड़ता था।

पहाड़ों का प्राकृतिक दृश्य सुहावना था। ध्यान साधने योग्य स्थान समझकर एक दिन एक साधु उधर आ निकले उन्हें वह स्थान पसन्द आ गया। अतिथि को घर आया देखकर वृद्धा को चिन्ता हो गई। स्वागत-सत्कार के लिए घर में कुछ भी तो न था। परिवार निर्धन, परन्तु धार्मिक था। वृद्धा ने नाती को बुलाकर कहा-"बेटा, मोहन! स्वामी जी घर आये हैं। मेहमान का स्वागत करना अपना धर्म है। घर में खाने योग्य कोई सामान नहीं है। तुम बाजार चले जाओ, कुछ सामान खरीद लाओ।"

इतना कहकर उसने कई सामान गिना डाले। मोहन भीतर जाकर थैला उठा लाया। उसकी आँखों में चमक थी, बाजार जाने का अवसर जो मिल रहा था। पहाड़ी से उतरकर पगडंडी की ओर वह बढ़ने ही वाला था कि बुढ़िया ने टोककर कहा-"बेटा! यह लो पैसे तो लेते जाओ। साथ ही यह चश्मा भी लेते जाओ।"

इतना कहकर उसने मोहन के हाथ में एक पैसा रख दिया व एक चश्मा। दोनों चीजें देखकर बालक भौचक्का रह गया। वह बोल उठा-"एक पैसा? इससे इतना सामान कैसे मिलेगा? कौन दे-देगा दादी? और इस चश्में का क्या होगा?"

"बेटा! एक पैसा बहुत है। तुम लेकर तो जाओ। हाँ, एक बात और ध्यान रखना, इस चश्मे को लगाकर जाना। स्वामी जी के लिए सामान लाना है। यह

स्मरण रखना कि तुम उसी दुकान से लाना जहाँ मनुष्य ही सामान बेच रहा हो।"

दादी की बात सुनकर बालक भौचक्का रह गया। फिर भी आज्ञा शिरोधार्य करके वह चल पड़ा। मन में उधेड़बुन मची हुई थी। उसे लग रहा था कि पैसे की कमी के कारण कहीं उसे वापस कोरा न लौटना पड़े। नगर के पास आते ही उसने चश्मा आँखों पर चढ़ा लिया। बाज़ार में घुसते ही जो कुछ उसने देखा उससे तो वह भौचक्का ही रह गया। उसने देखा कि दुकानों में मालिक के रूप में बैठे सौदा तोल रहे अनेक प्रकार के जानवर हैं। चारों ओर कोई आदमी न दिख पड़ा।

कहीं भेड़िया तोल रहा था, तो कहीं शेर, लोमड़ी, कुत्ता, सियार। अनेक तरह के जानवर चारों ओर दीख पड़े। एक बार तो वह डर गया। तत्काल ही उसे अपनी दादी की बात याद आ गई। वह ऐसी दुकान की खोज करने लगा, जहाँ दुकानदार आदमी हो। बड़ी कठिनाई के बाद उसे एक छोटी सी दुकान दीख पड़ी। दुकानदार बूढ़ा सीधा-सादा व्यक्ति था। वह खांसता जाता था। दुकान मामूली थी। परचूनी आटा, दाल आदि की वह दुकान थी।

मोहन वहाँ आकर रुक गया। दुकानदार ने बड़े प्रेम से पूछा—"बेटा! क्या चाहिये?"

मोहन उसका स्नेह देखकर गद्‌गद् हो उठा। उसके हाथ बढ़ गये। थैला व सामान का पर्चा उसने दुकानदार को दे दिया। तत्काल उसका सामान बाँधा जाने लगा। घी, मिठाई, बेसन, चीनी, नमकीन बिस्कुट अनेक सामान उसमें लिखे थे। मोहन मन ही मन घबरा रहा था। उसके पास भुगतान के लिए तो केवल एक ही पैसा था। उसे लग रहा था कि उसकी खिल्ली उड़ेगी, डाँट पड़ेगी। थोड़ी ही देर में सामान भरा थैला दुकानदार ने उसके हाथों में सौंपकर कहा—"लो बेटा! यह रहा तुम्हारा सामान।"

डरते-डरते मोहन ने एक पैसा उसे देते हुए कहा–"मेरी दादी ने बस यही मुझे दिया था। अब मेरे पास कुछ भी नहीं है।"

उसकी जबान लड़खड़ा रही थी, पैर काँप रहे थे। स्नेह का हाथ उसके सिर पर फेरते हुए दुकानदार बोला–"बेटा! घबराओ मत। तुम्हारे पास जो है वह तुमने दे दिया है। मेरे पास जो तुम्हें देने योग्य है वह मैं दे रहा हूँ। लगता है तुम्हारे घर कोई अतिथि आये हैं। यह सब मेरी ओर से उन्हीं की सेवा में भेंट समझ लेना।"

मोहन की प्रसन्नता का कोई ठिकाना न था। उसकी आँखें छलछला आईं। यह आत्मीयता तो उसने बाजार में कहीं नहीं देखी थी। उसकी टाँगों में मशीन की गति आ गई थी।

घर पहुँचते ही उसने सामान तो दादी को दे दिया, परन्तु वह अपने को रोक न सका। बाजार में जो कुछ उसने देखा था वह उसने एक साँस में कह डाला। जिज्ञासा भरे शब्दों में वह कह रहा था–"दादी! वहाँ भेड़िये, कुत्ते, शेर आदि दुकानदार थे। ऐसा कैसे हुआ। मैं तो भौंचक्का रह गया हूँ।"

दादी ने कहा–"बेटे! मनुष्य का शरीर धारण करके, उसकी खाल ओढ़े आज लाखों भेड़िये, शेर और कुत्ते चारों ओर घूम रहे हैं। वे हमें लूट रहे हैं, सज्जन आदमियों को तंग कर रहे हैं। इस चश्मे को लगाने पर लोगों की असली सूरत दिखाई पड़ने लगती है। कोई लुटेरा है, कोई दुराचारी है, कोई राक्षसी आदत का है। जिसकी जैसी प्रकृति है वैसे ही जानवर का वह रूप धारण कर लेता है।"

इतना कहकर वृद्धा चुप हो गई।

"दादी! मोहन बोल उठा–चलो, भगवान की कृपा से मुझे तो मनुष्य की सूरत मिली है।"

वृद्धा मुस्कुरा उठी। वह बोली—"बेटा! तुम शीशे में जाकर अपनी शक्ल देख लो।"

बालक दौड़ा-दौड़ा घर में गया। चश्मा उसके नेत्रों पर अब भी लगा हुआ था। शीशे के सामने पहुँचते ही वह भौचक्का रह गया। अरे, यह क्या, उसे तो उसमें अपने स्थान पर एक हिरन की शक्ल दिख रही थी। वह घबरा गया और चीख उठा,—"दादी! यह क्या हो गया है?"

वृद्धा ने मुस्कराकर कहा—"बेटा! तुम चंचल बहुत हो। चंचल मन के लोग हिरन की भांति चंचल नहीं होंगे तो क्या होंगे?"

मोहन का धैर्य छूट रहा था। उसका शरीर थर-थर काँप रहा था। 'मैं आदमी से जानवर बन गया हूँ।' इस विचार ने उसे कँपा डाला था। वह रो रहा था।

दादी ने उसे प्रसन्न करने के लिए नाना प्रकार की आकर्षक चीजें व खेल-कूद के सामान दिये। खाने-पीने की स्वादिष्ट सामग्री लाकर उसके सामने रखी। उसकी इच्छा के अनुसार सभी चीजें तत्काल जुटा लाने का वचन दिया, परन्तु वह तो केवल एक ही रट लगाये जा रहा था—"दादी, मुझे मनुष्य बना दो, मुझे और कुछ नहीं चाहिये।"

वृद्धा मुस्करा रही थी। मोहन धाड़ मार-मारकर रो रहा था—"मुझे मनुष्य बना दो।" यही आवाज चारों ओर गूंज रही थी। सजल नेत्रों से गद्‌गद् हृदय से दादी बोल उठी—"काश! आज हम लोग यह समझ लेते कि हम कौन हैं। मनुष्य बनना जीवन की हमारी आवश्यकता है।

●●●

अच्छे साहसी बच्चे

मौत बगल से गुजर गयी

मध्य प्रदेश का छिन्दवाड़ा शहर, चोर फाटक रेलवे क्रॉसिंग, रेलगाड़ी आने वाली थी। दोनों फाटक बन्द कर दिये गये थे। फिर भी लोगों में रुककर इन्तजार करने का धीरज कहाँ होता है? कुछ लोग तब भी रेल की पटरियों को पार कर आ-जा रहे थे। जब बड़े ऐसा कर रहे थे तो बच्चे भला क्यों रुकते।

अचानक तेजी से आती हुई रेलगाड़ी दिखी। लोगों ने जल्दी-जल्दी पटरियाँ खाली कर दीं, किन्तु एक छोटी लड़की बीच में हक्की-बक्की खड़ी थी। उसकी गोद में एक छोटा बच्चा था और एक बच्चा उसकी उँगली पकड़े था। रेलगाड़ी के इंजन और भीड़ की चीख-पुकार से वह लड़की घबरा गई और छोटे बालक की उंगली छोड़कर पटरी के बाहर निकल गई। रेलगाड़ी काफी नजदीक आ चुकी थी। वह छोटा बालक रेलगाड़ी को एक खिलौने जैसा देख रहा था। लोग घबड़ा गये। कुछ ने तो आँखें भी बन्द कर लीं।

किन्तु तभी किशोर जयकिरण जैन बिजली की तरह लपका, उसने अपनी साइकिल एक ओर फेंक दी। घड़घड़ाती हुई रेलगाड़ी की कोई परवाह न कर वह तेजी से झपटा और उस छोटे बालक को लेकर उस पार निकल गया, लोग साँस रोके देखते रहे और रेलगाड़ी घड़घड़ाती हुई निकल गई। जब सब शान्त हो गया तो लोगों ने देखा—जयकिरण जैन उस बालक को मौत के मुँह से छीन चुका है। जयकिरण के साहस के कारण ही उस बालक की जान बच सकी।

• वह कुएँ में कूद गया

शाम हो रही थी, पौने पाँच का समय था, आन्ध्र प्रदेश के खंमाम जिले का माल्लेपल्ली नामक स्थान, एक चौदह वर्षीय बालक घर लौट रहा था। अचानक उसने एक महिला के चीखने-चिल्लाने का स्वर सुना। वह चौंक उठा। उसने इधर-उधर देखा।

सांमने कुएँ के पास खड़ी एक महिला जोर-जोर से रो रही थी। बालक ने देखा कि वह कुएँ में झांक रही थी। जरूर कोई गड़बड़ है, उसके मन ने कहा-'बोंडाला वीरास्वामी! इस समय कोई नहीं है जो बेचारी महिला की मदद करे' और दूसरे ही क्षण बालक वीरास्वामी कुएँ पर पहुँच गया, उस महिला का चार वर्षीय बालक कुएँ में गिर गया था।

बालक वीरास्वामी ने एक क्षण की भी देर करना ठीक न समझा। कुआँ दस मीटर गहरा था। उसमें तीन मीटर तक पानी भरा था। गहरे और सँकरे कुएँ में कूदकर डूबते बालक की जान बचाना आसान न था। बचाने वाला खुद भी खतरे में फँस सकता था, किन्तु वीरास्वामी को खतरे की कोई परवाह न थी।

एक पतली रस्सी के सहारे वह कुएँ में कूद गया। डूबते हुए बालक को उसने पकड़ लिया। वीरास्वामी को हालाँकि चोट भी लग गई थी किन्तु ऐसी मामूली चोट के लिए वह चिन्तित न था। बड़ी हिम्मत के साथ वीरास्वामी उस बालक को लेकर कुएँ के बाहर आया।

बालक जिन्दा था, तुरन्त उसके प्राथमिक उपचार का इन्तजाम किया गया। वीरास्वामी खुश था कि उसने उस बच्चे की जान बचा ली।

● विषधर से युद्ध

यह घटना महाराष्ट्र के कोलाबा जिले के अलीबाग तालुका के अन्तर्गत कमालेपाड़ा ग्राम की है। 21 अगस्त 1978 को सवेरे जय गाँव का प्राइमरी स्कूल खुला तो पहली कक्षा के बच्चे घबड़ा कर चीखते हुए भाग खड़े हुए। दरअसल कक्षा में रखे श्यामपट्ट के पीछे एक बहुत बड़ा साँप बैठा हुआ था।

बच्चों का घबड़ाना स्वाभाविक ही था। साँप से तो सभी डरते हैं। उन सबके समझ में नहीं आ रहा था कि अब क्या किया जाये? उन्होंने आपस में सलाह की, लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला।

तुरन्त ही कुछ बच्चे गाँव में गये और कुछ लोगों को बुला लाये। साँप को मारने की बातें तो सभी लोग बढ़ा-चढ़ा कर कह रहे थे, किन्तु जब उस साँप को आकर देखते तो उनके हौंसले टूट जाते। साँप को मारना भी इसलिये कठिन था क्योंकि वह श्यामपट्ट के पीछे था और उस पर मार ठीक से न पड़ने का अन्देशा था।

किन्तु काम करने वाले साहसी लोग निर्णय करने में देर नहीं करते। इस बात का परिचय दिया उसी प्राइमरी स्कूल की छठी कक्षा के सोलह वर्षीय छात्र पाटिल रमेश पांडुरंग ने। वह बड़ी देर से खड़े-खड़े साँप को देख रहा था और वह मारने वालों की बनावटी बातें सुन रहा था। उसने सोचा–क्या इन्सान से भी ज्यादा ताकत वाला है यह साँप? बस, रमेश ने कोई एक मीटर लम्बा डंडा लिया और कमरे में घुस गया। कुछ लोगों ने उसे रोका, किन्तु बालक रमेश निर्भीकता से साँप की ओर बढ़ा। फिर उसने अचानक साँप पर बड़ी तेजी से भरपूर वार किये। उसके वार इतने मजबूत और सही थे कि साँप वहाँ से हिल-डुल भी न सका। साँप को मारकर रमेश कक्षा से बाहर आया, तो विजय से उसका चेहरा खिला हुआ था। सोलह वर्षीय रमेश ने अपने साहस से बड़े-बड़े तीसमार खाँ का सिर झुका दिया था।

● डूबती बालिका को बचाया

तैराकी सीखना सिर्फ शौक नहीं है यह कई बार मौत से बचने-बचाने का उपाय भी बन जाती है। यह बात सिद्ध हुई महाराष्ट्र, कोलाबा जिले के पनबेल में। वहाँ डा० नीलकान्त विष्णु बापट की पुत्री कुमारी मनीषा बापट ने तैरना सीखा। साढ़े दस साल की मनीषा को अभी तैराकी सीखे कुछ ही दिन हुये थे कि एक दिन उसकी परीक्षा की घड़ी आ गयी। मनीषा उस परीक्षा में खरी उतरी।

घटना 9 मई 1977 की है। मनीषा अपनी माँ के साथ तालाब में तैरने गयी थी। वह तैरते-तैरते उस पार पहुँच गई। थक गई थी, इसलिए कुछ देर सुस्ताने के लिए वहीं सीढ़ियों पर बैठ गई।

मनीषा को वहाँ बैठे कुछ ही क्षण हुए थे कि अचानक उसे माँ के चिल्लाने की आवाज सुनायी दी। हुआ यह कि आठ वर्षीया लड़की भावना भी तैराकी सीख रही थी पर उसे अभी कुछ दिन ही हुए थे। भावना जैसे ही पानी में कूदी कि डूबने लगी। उसे डूबता देख उसकी माँ ने जोर-जोर से चिल्लाना शुरू किया।

माँ की आवाज सुनकर पहले तो मनीषा कुछ समझी नहीं, लेकिन भावना को डूबते देखकर वह सब समझ गयी। मनीषा तत्काल पानी में कूद पड़ी। वह तेजी से तैरती हुई गयी और भावना को पकड़ कर किनारे पर ले गई। बाद में हालाँकि मनीषा की माँ भी सहायता के लिए पहुँच गई थी, किन्तु यदि उस क्षण मनीषा ने भावना को न बचाया होता तो दुर्घटना अवश्य हो जाती।

●●●

हरगिज नहीं करेंगे

एक था राक्षस। उसने एक आदमी को पकड़ लिया था। वह उससे बराबर काम लेता रहता था। जब कभी वह काम न करता, तो वह राक्षस कहता–"खा जाऊँगा तुझे, अभी चट कर डालूँगा।"

शुरू में वह मनुष्य उससे डरता रहा और डर से सब काम करता रहा। एक दिन वह सोचने लगा–"यह मुझे हर रोज खा जाने की, चट कर डालने की धमकी देता है। अब मरना तो है ही। यह मुझे कभी न कभी मार डालेगा। फिर रोज-रोज घुट-घुटकर क्यों मरूँ। एक बार ही क्यों न मर जाऊँ।"

दूसरे दिन राक्षस आया और उसे डाँटकर कहने लगा–"खा जाऊँगा, तुझे चट कर डालूँगा।"

परन्तु अब उसकी डाँट-फटकार उस मनुष्य के लिए असह्य हो गयी थी। इस लिए उसने कहा–"ले, खा डाल, सोचता क्या है, देर न कर।"

ये सुनकर राक्षस को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह उसे खा जाने वाला थोड़े ही था। उसे तो एक गुलाम चाहिये। वह सोचने लगा–"अगर मैं इसको खा जाता हूँ, तो मेरा यह सारा काम कौन करेगा।'

उसने डराने धमकाने की बात छोड़ दी।

सचमुच देह की आसक्ति कितनी खतरनाक है। यह हमें हौवा बनकर डराया करती है। जहाँ हमने देह की आसक्ति छोड़ी कि हम स्वतन्त्र हुए।

●●●

राम की गिलहरी

शनिवार की छुट्टी के बाद ही स्कूल के बड़े हॉल में सब लड़के इकट्ठे हो जाते और प्रधानाध्यापक की अध्यक्षता में बाल कथा-संघ का साप्ताहिक कार्यक्रम आरम्भ होता। आज उसकी बैठक थी।

प्रधानाध्यापक ने सभापति का आसन ग्रहण किया। उनके अगल-बगल शिक्षक-गण बैठ गये। छोटे लड़के हॉल में आगे की सीटों पर और बड़े लड़के पीछे की सीटों पर शान्तिपूर्वक बैठे थे। इस बैठक में कोई न कोई शिक्षक एक नई कहानी सुनाते थे। आज प्रधानाध्यापक की बारी थी। कार्यक्रम शुरू हुआ।

प्रधानाध्यापक ने कहा-"बच्चों! आज हम लोगों की तीसवीं बैठक है। अब तक हम लोग 29 कहानियाँ सुन चुके हैं। आज की कहानी बड़ी ही रोचक है, इसलिए बड़े ध्यान से सुनो। अच्छा, पहले यह तो बताओ कि वीरवर का नाम तुम में से किसी ने सुना है?"

आगे की सीट पर बैठे छः वर्षीय पप्पू ने खड़े होकर कहा-"हाँ, बीलबल का नाम हमने सुना है।"

प्रधानाध्यापक-"बीलबल नहीं, वीरवर।"

पप्पू-"हाँ, बीलबल ही तो। मियाँ अकबल के साथ लहता था।"

प्रधानाध्यापक-"नहीं, पप्पू। उसका नाम था बीरबल। मैं वीरवर कह रहा हूँ।

पप्पू-"अच्छा, बीलबल! तब हम नहीं जानते।"

प्रधानाध्यापक-"अच्छा, तो बैठ जाओ। वीरों में जो श्रेष्ठ वीर होता है, उसे वीरवर कहते हैं। बीरबल जैसे मसखरे तो बहुत मिलते हैं, किन्तु बच्चों वीरवर जैसा बहादुर देशभक्त मिलना आसान नहीं।"

इसी बीच प्रधानाध्यापक ने देखा कि हाल में बैठे लड़के मुँह पर हाथ और रूमाल रखे हँसी रोकने की जी-जान से चेष्टा कर रहे हैं पर हँसी रुकती ही नहीं। उन्होंने पूछा–"तुम लोग हँस क्यों रहे हो?"

पप्पू खड़ा हो गया–"हम बतायें छल। हम बीलबल को बीलबल कहते हैं न, इछीलिए ये छब हँछते हैं।"

अब तो हँसी रोकना और भी कठिन हो गया। प्रधानाध्यापक जी ठहाका मार उठे। फिर अपने को सँभालकर उन्होंने कहा–"अच्छा बच्चों, अब कहानी सुनो।

प्राचीन काल की बात है। एक बड़े ही प्रतापी राजा थे। उनका नाम था शूद्रक। वे अपनी प्रजा से पुत्रवत् स्नेह करते थे। प्रजा को कोई कष्ट न हो, इसके लिए वे वेश बदलकर अपने राज्य में घूमा करते और यदि उन्हें पता चलता कि किसी को कोई कष्ट है, तो वह शीघ्र ही उस कष्ट को दूर करने का उपाय निकालते।

एक दिन वे अपने मन्त्रियों के साथ दरबार में बैठे थे। इसी बीच एक राजकुमार महल के दरवाजे पर उपस्थित हुआ, उसने द्वारपाल से कहा–"मुझे महाराज से मिलना है, इसलिए मुझे उनके पास ले चलो।"

द्वारपाल उसे महाराज के पास ले गया। उसने महाराज का अभिवादन किया और बोला–"महाराज! यदि आपकी इच्छा हो तो मुझे आप अपने सेवक के रूप में नियुक्त कर लें।"

राजा ने पूछा–"तुम कितना वेतन लोगे?"

राजकुमार ने कहा–"चार सौ सोने की मुद्राएँ रोज।"

उत्तर सुनकर राजा और मंत्री बड़े आश्चर्य में पड़ गये। राजा ने पूछा–"इतना वेतन माँगते हो। आखिर तुम में ऐसी क्या विशेषता है?"

राजकुमार ने उत्तर दिया–"विशेषता तो कुछ नहीं, केवल दो हाथ हैं और एक तलवार है।"

राजा ने कहा–"इतना वेतन मैं नहीं दे सकता।"

युवक ने महाराज को नमस्कार किया और विदा ली। अभी वह दरवाजे तक भी न पहुँचा होगा कि महाराज शूद्रक के प्रधानमंत्री ने उनसे निवेदन किया–"राजन! यह युवक इतना वेतन माँगता है, इसलिए देखना जरूरी है कि इसमें ऐसी क्या विशेष बात है। अच्छा हो यदि चार दिन का वेतन देकर इसकी परीक्षा की जाये।"

राजा सहमत हो गये। युवक को बुलाकर उसे 400 स्वर्ण मुद्रायें दी गईं और पान का बीड़ा देकर कहा गया कि तुम्हें काम पर नियुक्त कर लिया गया है।

युवक द्वारपाल के रूप में महल के दरवाजे पर पहरा देने का काम करने लगा। कई दिन बीत गये। एक दिन की बात है। अमावस्या की रात थी। घना अँधेरा चारों ओर छाया था। महाराज शूद्रक सोने के लिए शयन कक्ष में पहुँचे। इसी समय उन्हें किसी स्त्री के रोने का करुण स्वर सुनाई पड़ा। वे व्याकुल हो गये। उन्होंने पुकारा–"दरवाजे पर कौन है?"

युवक ने उत्तर दिया–"महाराज मैं हूँ, वीरवर। आज्ञा दीजिये।"

राजा ने कहा–"वीरवर! देखो यह कौन रो रहा है, क्यों रो रहा है? पता लगाकर शीघ्र मुझे सूचना दो।"

भयानक अँधेरी रात थी, किन्तु निर्भय वीरवर बाहर निकल पड़ा। जिस ओर से स्त्री के रोने का स्वर आ रहा था, उसी ओर वह आगे बढ़ने लगा। कोई स्त्री फूट-फूट कर रो रही थी। काफी आगे बढ़ने पर वीरवर को पता चला कि यह आवाज जंगल के भीतर से आ रही है। एक ओर घना अँधेरा और दूसरी ओर घनघोर जंगल। किन्तु वीरवर को कोई भय नहीं हुआ। वह अँधेरे में धीरे-धीरे आवाज की ओर बढ़ने लगा। जब वह जंगल के बीच में पहुँचा तो उसने देखा –एक बड़ा ही सुन्दर प्राचीन मन्दिर है। उस मन्दिर के भीतर से ही रोने की आवाज आ रही है। उसने मन्दिर में प्रवेश किया। वहाँ देवी की तरह एक परम सुन्दरी स्त्री बाल

बिखेरे हुए फूट-फूट कर रो रही थी। वीरवर उसके पास गया। बोला—"देवी! इस घनघोर जंगल में और ऐसी अँधेरी रात में आप अकेले यहाँ क्यों आयीं? आप इस तरह रो क्यों रही हैं? मुझे अपने दुःख का कारण बताइये, जिससे मैं आपकी कुछ सहायता कर सकूँ।"

स्त्री ने कहा—"मैं महाराज शूद्रक की भाग्य-लक्ष्मी हूँ। अनेक वर्षो तक राजा शूद्रक की छत्रछाया में मैंने सुख से जीवन बिताया है किन्तु अब राजा मर जायेगा। मुझे दूसरी जगह चले जाना पड़ेगा। इसीलिये रो रही हूँ।"

वीरवर ने कहा—"देवि, हर विपत्ति को दूर करने का कोई उपाय अवश्य होता है। आपके कष्ट को दूर करने का कोई उपाय है या नहीं?"

स्त्री ने कहा—"उपाय तो है। यदि तुम देवी अन्नपूर्णा के मन्दिर में अपने पुत्र शक्तिधर की बलि दे सकते हो तो अवश्य मैं अपनी इस विपत्ति से मुक्त हो जाऊँगी। इतना ही नहीं इसके बाद मैं बहुत वर्षों तक फिर इसी राज्य में सुख-पूर्वक निवास कर सकूँगी।"

यह कहकर वह स्त्री गायब हो गई। वीरवर उसी समय अपने घर आया। स्त्री और पुत्र गहरी नींद में सो रहे थे। उन दोनों को जगाकर उसने सारा हाल कहा। सुनकर पुत्र शक्तिधर आनन्द से उछल पड़ा। बोला—'पिताजी, तो अब शीघ्र ही यहाँ से चलें। शुभ काम में देर क्यों की जाये। मैं कितना भाग्यवान हूँ कि मेरे शरीर की बलि से राजा को जीवन मिलेगा, उनकी भाग्यलक्ष्मी सुखी होंगी।'

वीरवर की पत्नी ने भी पुत्र के बलिदान का समर्थन किया।

तीनों वे सर्वमंगला देवी के मन्दिर में पहुँचे। वीरवर ने सर्वमंगला की विधिवत् पूजा की और कहा—'देवी, आप प्रसन्न हों। महाराज शूद्रक दीर्घजीवी और सदा विजयी हों। वह बलि आप स्वीकार करें।' ऐसा कहकर उसने अपने पुत्र शक्तिधर का मस्तक तलवार से काटकर सर्वमंगला के चरणों में समर्पित कर दिया।

वह खुश था, क्योंकि उसने कर्त्तव्य का पालन किया था। किन्तु शीघ्र ही वह शोक में डूब गया। उसने सोचा–अब पुत्रहीन होकर जीवित रहने से क्या लाभ? यह सोच उसने उसी तलवार से अपना सिर भी सर्वमंगला के सामने अर्पित कर दिया। जब पत्नी ने देखा कि पुत्र और पति दोनों ही चल बसे, तो उसने भी उसी तरह अपने प्राण त्याग दिये।

महाराज शूद्रक छिपकर यह सब देख रहे थे। वे वीरवर के पीछे-पीछे आये थे, क्योंकि इतने अँधेरे में उस युवक का अकेले जाना ठीक नहीं। तीनों के मृत शरीर अब उनके सामने पड़े थे। उनको यह सब देखकर बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने सोचा कि मेरी रक्षा के लिए इन तीनों ने सहर्ष अपने प्राण त्याग दिये। मैं इनके बलिदान का कारण बना। अब मेरा भी जीवित रहना ठीक नहीं। यह सोचकर उन्होंने अपना सिर काटने के लिए तलवार उठाई। इतने में देवी सर्वमंगला उनके सामने प्रकट हो गईं। देवी ने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा–'पुत्र तुम्हें मरने की जरूरत नहीं। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। जो वरदान चाहो, माँग लो।'

राजा ने कहा–'देवी, इन वीरों के बलिदान के बाद मैं जीना नहीं चाहता। यदि आप सचमुच मुझपर प्रसन्न हैं तो आप इन्हें जिला दीजिये।'

देवी ने 'एवमस्तु' कहा और अन्तर्ध्यान हो गयी।

वीरवर तथा उसके पुत्र और पत्नी पुनर्जीवित हो गये। राजा शूद्रक चुपके से वहाँ से महल की ओर लौट पड़े। वीरवर की पत्नी और पुत्र अपने घर चले गये और वीरवर महल के दरवाजे पर आकर पहले की तरह पहरा देने लगा।

सवेरा हुआ। राजा ने वीरवर को बुलाकर पूछा–'वीरवर, कल रात को कौन स्त्री रो रही थी?'

वीरवर ने उत्तर दिया–'महाराज, उस स्त्री को मैं नहीं पहचानता। उसने ज्यों ही मुझे देखा, त्यों ही वह गायब हो गई, बस।'

राजा ने सुना और बड़ा ही प्रसन्न हुआ। उसने सोचा कि ऐसा उदार और वीरों में महावीर कौन होगा?

दोपहर के समय दरबार लगा। राजा ने वीरवर को राजसभा में उपस्थित होने का आदेश भिजवाया। वीरवर के आने पर उसे राजा के सामने के आसन पर बैठाया गया, सम्मानित किया गया। राजा ने सभासदों से कहा–'मैं मन्त्रियों की सलाह के अनुसार वीरवर को रोज चार सौ स्वर्ण मुद्रायें देता था। कुछ दिनों में ही मुझे मालूम पड़ गया कि वीरवर दो सौ स्वर्ण मुद्रायें तो पढ़ने-पढ़ाने वाले विद्वान ब्राह्मणों को दे देते थे और एक सौ स्वर्ण मुद्रायें असहाय लोगों को। बाकी सौ मुद्राओं से वे अपना निर्वाह करते थे। यह सब जानकर मैं समझ गया कि वीरवर दूसरों के कल्याण के लिए ही शरीर धारण किये हुए हैं। लेकिन कल रात को जो घटना हुई, उसके लिये वीरवर को मैं विशेष सम्मानित करना चाहता हूँ। आज से मैं उन्हें कर्नाटक प्रदेश का राजा बनाता हूँ।' फिर राजा ने पिछली रात की सारी घटनायें कह सुनाईं। सुनकर सभी लोग वीरवर की जय-जयकार करने लगे।

प्रधानाध्यापक क्षणभर के लिए रुके, फिर बोले–"बच्चों कहानी तुम लोगों ने सुनी। अब यह बता सकते हो कि राजा ने वीरवर को सबसे बड़ा वीर क्यों कहा?"

एक लड़के ने उठकर उत्तर दिया–"जी, इसलिए कि वीरवर ने राजा के लिए अपने प्राण दे दिये।"

प्रधानाध्यापक ने सिर हिलाते हुए कहा–"ठीक, लेकिन बात इतनी ही नहीं है। उस समय राजा का यह कर्त्तव्य होता था कि वह बाहरी आक्रमण से अपने राज्य की रक्षा करे, प्रजा की अर्थात् जनता की भलाई करे। राजा को कुछ हो गया, तो देश और जनता की दुर्गति थी। वीरवर ने राजा के प्राणों की रक्षा की, अर्थात् देश और जनता को दुर्गति से बचा लिया। इसीलिये वह सबसे बड़ा वीर है।"

मां की ममता

ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया बहुत चिन्तित थीं। उनकी बेटी ने अपने जीवन में कभी किसी प्रकार का दु:ख नहीं सहा था। वह महान ब्रिटिश साम्राज्य के कल्पतरु की छाया में पली थी। आज उसका दुलारा बेटा रोग की भयानक पीड़ा में तड़पता हुआ मृत्यु से संघर्ष कर रहा था। अभी वह आठ-दस वर्ष का अबोध बालक ही था कि उसे विचित्र प्रकार के संक्रामक रोग ने धर दबोचा था। लन्दन के शाही अस्पताल में योग्यतम डॉक्टरों की देख-रेख में उसका इलाज हो रहा था। डॉक्टरों के अनुसार नन्हें राजकुमार की साँसों के साथ अत्यंत विषैली हवा निकल रही थी। यदि किसी के नथुनों में राजकुमार की साँस प्रवेश कर गई, तो उसकी तत्काल मृत्यु हो सकती है।

लन्दन के सभी गिरजाघरों में नन्हें राजकुमार के जीवन के लिए प्रार्थनाएँ हो रहीं थीं, पर राजकुमार की सेवा में नियुक्त सेविकाओं में मौत की दहशत फैल गई थी। यद्यपि चिकित्सा और सेवा में रंचमात्र भी कमी नहीं थी, किन्तु मौत से जूझते राजकुमार को दवा की अपेक्षा दुलार और प्यार की अधिक आवश्यकता थी।

राजकुमार की माँ का बहुत बुरा हाल था। डॉक्टरों की सलाह के अनुसार उसे अपने लाडले बेटे से दूर ही रहना था। किन्तु वह माँ थी, बेटे के अन्तिम क्षणों में उसे अपनी गोद में लेने के लिए उसका रोम-रोम तड़प उठा। एक ओर अपने तुच्छ, नश्वर जीवन की सुरक्षा और दूसरी ओर पुत्र के प्रति प्रेम और ममता का उमड़ता सागर। राजकुमारी अपने को नहीं रोक सकी। जीवन की सुरक्षा पर माँ की ममता ने विजय पाई। वह दौड़कर अपने बेटे के बिछौने पर बैठ गई और राजकुमार के सिर को अपने सीने से लगा लिया।

मरणासन्न राजकुमार को माँ की गोद में जैसे नयी जिन्दगी मिल गई। वह खिल उठा। उसने माँ के गले में अपनी बाँहें डाल दीं। उससे नहीं रहा गया। वह बोल पड़ा–"मम्मी, मेरी अच्छी मम्मी। जब से मैं बीमार पड़ा, तुमने मुझे चूमा नहीं। क्या तुम मुझे अब प्यार नहीं करतीं?"

राजकुमारी बेटे के इन शब्दों को सुनकर तड़प उठी। उसकी आँखों में आँसू भर आये। वात्सल्य और ममता के आवेग में वह अपने बेटे का मुख चूमने लगी। वात्सल्य भावनाओं के ज्वार में डूब-डूबकर उसने राजकुमार के अनगिनत चुम्बन लिये। राजकुमार ने आनन्द विभोर होकर आँखें बन्द कर ली थीं। राजकुमारी की आँखों से झर-झर आँसू झर रहे थे। वह अब स्वयं भी बेटे को गोद में लिए मौत के हिंडोले में झूल रही थी। वह एक अलौकिक अनुभूति के दिव्य आलोक में नहा उठी थीं।

डाक्टरों ने राजकुमारी से पूछा, "यह क्या किया आपने? जान-बूझकर आपने मौत बुली ली।"

राजकुमारी मुस्करा उठी। उसकी आँखों में दिव्य प्रकाश तैर गया। वह बोली–"आप नहीं समझ सकते। माँ की ममता को आप क्या जानें। मैंने जानबूझ कर अपनी मौत बुला ली क्योंकि मैं माँ हूँ।"

लन्दन के शाही कब्रिस्तान में राजकुमारी की कब्र पर लिखा हुआ है–'क्योंकि मैं माँ हूँ।'

उपरोक्त घटना किसी फिल्म की कहानी या उपन्यास की कुछ पंक्तियाँ मात्र नहीं हैं। यह कहानी या घटना है माँ की ममता और वात्सल्य प्रेम का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करने वाली ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया की सुपुत्री राजकुमारी एलिस की जिसने अपने त्याग और बलिदान से यह सिद्ध कर दिया कि किस प्रकार माताएँ विभिन्न प्रकार के कष्ट सहकर बच्चों का लालन-पालन करती हैं।

●●●

पालतू तोता

एक दिन दोपहर को जब पिकलू स्कूल से लौटा तो बरामदे में एक तोते को बैठा देखकर वह खुशी से उछल पड़ा। वह दौड़कर अपनी दादी के पास गया और उन्हें तोता देखने के लिए बाहर बुला लाया।

उसकी दादी ने तोते को देखते ही कहा, "यह जरूर किसी का पालतू तोता है जो पिंजरे से भाग आया है, वरना कोई भी तोता इस तरह आकर घर में ऐसी जगह पर नहीं बैठ सकता।"

"दादी, मैं इसे पकड़ कर खुद पालना चाहता हूँ।" पिकलू ने उत्सुकता से कहा।

"तुम इसे पाल सकते हो, लेकिन नई जगह इसका मन लगने में कुछ समय लगेगा।"

पिकलू ने अपने नौकर की मदद से तोते को पकड़ लिया। वह उसका पूरा ध्यान रखता। पहले तो तोते ने कुछ भी खाने से इनकार कर दिया। वह चुपचाप रहता और कुछ न बोलता। पिकलू ने बहुत कोशिश की कि पक्षी को अपने घर जैसा महसूस हो। हालांकि उसने तरह-तरह के फल और बीज उसे दिए, लेकिन तोते ने किसी चीज को छुआ तक नहीं।

तीसरे दिन पिकलू यह देखकर बहुत खुश हुआ कि उसने तोते को जो लाल मिर्च दी थी, उसे वह अपने एक पंजे से पकड़कर खा रहा था। उसने सोचा कि तोते का मन लग गया है।

एक दिन पिकलू की दादी ने कहा, "अगर तोते के मालिक को इसके यहाँ होने का पता लग जाए और आकर तोता वापस माँगे तो क्या करोगे?"

"मैं तोता वापस नहीं दूँगा, बल्कि इसकी कीमत चुका दूँगा।" उसकी दादी यह सुनकर मुस्करा उठीं।

कुछ दिनों बाद एक सब्जी बेचने वाला 'सब्जी लो, सब्जी लो' की आवाज लगाते हुए उधर आया।

पिकलू की माँ बाहर कुछ सब्जी खरीदने गईं। खिड़की से पिकलू ने अपने तोते के लिए कुछ मिर्चें भी खरीदने के लिए कहा।

माँ ने मुसकुराते हुए जवाब दिया, "ठीक है, बेटा। मैं तुम्हारे तोते के लिए भी कुछ चीजें खरीद लूँगी।"

सब्जी वाले ने भी यह बात सुनी। उसने पूछा, "दीदी, आपका बेटा क्या कह रहा है?"

"अरे मेरा बेटा अपने पालतू पक्षी के पीछे पागल है।"

"क्या उसके पास कोई पालतू पक्षी है? जिनके पास पालतू पक्षी होता है, वही उसकी कीमत समझते हैं। मेरे पास एक पालतू तोता था।"

"अब कहाँ है वह?"

"मेरा मालिक उसे अपने साथ आगरा ले गया। वह बोल भी सकता था। वह मुझे मेरे नाम से 'सीताराम' पुकारता था।"

कुछ दिनों बाद पिकलू अपने बरामदे में तोते के साथ बैठा हुआ था। पिंजरा मेज पर रखा था। पिकलू गाजर खा रहा था और गा रहा था:

"तोते, मेरे प्यारे तोते,
तुम गाजर नहीं खा सकते।
मैं तुम्हें लाल मिरच दूँगा,
और खुश कर दूँगा।"

दरवाजे से झांकते सब्जी वाले ने तोता देखा तो बोला, "अपने तोते के लिए कुछ लाल मिर्चें ले लो," यह कहते हुए वह तोते के नजदीक आ गया।

जैसे ही तोते ने सब्जीवाले को देखा। चिल्लाने लगा, "सीताराम.... ....सीताराम।"

सब्जी वाला हैरान रह गया, "यह कैसे संभव है? यह मेरा नाम बोल रहा है। मेरा तोता भी मुझे इसी तरह बुलाता था।"

पिकलू को तुरंत अपनी दादी की चेतावनी याद आ गई कि तोते के मालिक को जब पता चल जाएगा तो वह इसे माँगने आ जाएगा, उसने सब्जी वाले से कहा, "लेकिन यह तुम्हारा तोता नहीं है।"

सब्जी वाले ने ध्यान से तोते को देखा और कहा, "लेकिन यह लगता तो मेरा ही तोता है।"

पिकलू की माँ ने कहा, "लेकिन उस दिन तुम ने कहा था कि तुम्हारे पास जो तोता था उसे तुम्हारा मालिक आगरा ले गया था। अब झूठ मत बोलो, सब्जी वाले।"

"यह सच है, दीदी, जब मैं अपने मालिक के घर में रहता था, तब मैंने एक तोता खरीदा था। मेरे मालिक का लड़का उसे बहुत चाहता था, इसलिए मैंने उसे अपना तोता दे दिया पर उसकी देखभाल मैं ही करता था।

"जब मेरा मालिक आगरा गया तब मैं यहाँ नहीं था। अपने गाँव गया हुआ था। उन्होंने आगरा छोड़ते समय शायद तोते को किसी और नौकर के पास रख दिया होगा, जिसने इसकी ठीक से देखभाल नहीं की। तोता पिंजरा छोड़कर भाग आया होगा।

यह तोता मुझे इतना चाहता था कि जब भी मैं इसके पास आता था, यह मेरा नाम पुकारता था, इसलिए मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ, दीदी।" सब्जी वाले ने सारी बात बताई।

पिकलू ने यह सब सुना तो चिन्तित हो गया, 'कहीं तोता उससे छिन न जाए।' उसने अपनी माँ के कान में कहा।

सब्जी वाला बोला, "मुन्ना क्या कह रहा है, दीदी?"

"इसका कहना है कि तुम तोते के बदले कुछ पैसे ले लो, क्योंकि यह इसे बहुत चाहने लगा है। यह मेरा इकलौता बेटा है। तुम इस तोते के बदले में पैसा ले लो।"

सब्जी वाले ने एक क्षण सोचा, फिर कहा, "मुझे अफसोस है कि मैं अपने पालतू तोते के बदले में पैसे नहीं ले सकता, पर तोता अपने बच्चे को दे दीजिये।" फिर उसने पिकलू से कहा, "तुम भी मेरे बच्चे के समान हो। मैं तोते के लिए रोज हरी मिर्चें ले आया करूँगा। मैं इन दिनों बेरोजगार हूँ।"

पिकलू ने सब्जी वाले को कृतज्ञता के भाव से देखा और विनम्रता से बोला, "तुम बहुत अच्छे हो।"

उसकी दादी ने अन्दर बैठे सब कुछ सुना था। बाहर आकर उन्होंने सब्जी वाले से पूछा, क्या तुम हमारे यहाँ रहोगे? तुम हमारे बगीचे की देखभाल करो, क्योंकि हमारा माली चला गया है। मैं सोचती हूँ कि इससे तुम दोनों को खुशी होगी।"

पिकलू अपनी दादी के पास गया और उनसे लिपट गया, "दादी! आप कितनी अच्छी हैं।"

सब्जी वाला भी खुश हो गया। उसने दादी के पैर छूकर कहा, 'अम्मा, आपने सचमुच मुझ पर दया की है।"

तभी सब लोगों ने सुना कि तोता 'सीताराम........सीताराम' पुकार रहा है। सभी खुशी से हँसने लगे।

●●●

भले का भला

सूरज भालू चंपकवन में अपनी पत्नी एवं बच्चों के साथ रहता था। सूरज को सवारी का बहुत शौक था। उसने एक नई कार खरीदी। वह प्रतिदिन शाम को अपनी पत्नी दुर्गा एवं बच्चों के साथ घूमने जाता था।

एक दिन सूरज और दुर्गा कार में बैठे कहीं जा रहे थे। तभी रास्ते में मुनमुन बत्तख दिखाई दी। वह लंगड़ाती हुई सड़क पर चली जा रही थी। सूरज ने कार रोककर पूछा, "मुनमुन, कहाँ जा रही हो?"

मुनमुन बोली, "सूरज भैया, पैर में दवा लगवाने अस्पताल जा रही हूँ।"

यह सुनते ही सूरज ने मुनमुन को भी कार में बैठा लिया। अस्पताल पास आने पर सूरज ने मुनमुन को उतार दिया। घर पहुँचने पर उसकी पत्नी नाराज हो गई। वह कहने लगी, "मुनमुन को कार में बैठाने की क्या जरूरत थी, वह पैदल ही चली जाती।"

सूरज ने समझाया, "यह तो भलाई का काम है।" यदि थोड़ी सी सहायता से किसी को आराम मिल जाए तो सहायता कर देने में क्या हर्ज है?"

सूरज अपने पड़ोसियों की कुछ न कुछ मदद करता रहता था। आवश्यकता पड़ने पर काम आता था, पर दुर्गा यह पसन्द नहीं करती थी। वह सदा अपने पड़ोसियों से झगड़ा करती रहती थी।

एक दिन सूरज कुछ सामान लेने शहर गया हुआ था। मुनमुन बत्तख दुर्गा के पास आकर कहने लगी, "बहन, थोड़ा नमक दे दो।" यह सुनते ही दुर्गा क्रोध में भर उठी। उसने नमक देने से इनकार कर मुनमुन को घर से बाहर निकाल दिया।

दुर्गा बड़बड़ाती हुई रसोईघर में पहुँची और खाना बनाने की तैयारी करने लगी। चूल्हा जलाते हुए वह मुनमुन के बारे में सोचने लगी कि ये लोग कितने बदमाश हैं।

चूल्हा कब का जल चुका था, पर दुर्गा का ध्यान कहीं और था। एकाएक उसने देखा कि चूल्हे की आग उसके रसोईघर में फैल चुकी है। वह बाहर आकर चिल्लाने लगी, "आग........आग.........बचाओ।"

उसकी पुकार सुनकर सबसे पहले मुनमुन बत्तख और हीरा हाथी घर से बाहर निकले। मुनमुन पानी ला रही थी और हीरा उसे आग पर डाल रहा था। धीरे-धीरे सभी मिलकर आग बुझाने लगे। कुछ देर बाद आग बुझ गई।

जब सूरज शहर से वापस लौटा तो उसने देखा कि उसके घर का पिछला भाग जल चुका था। दुर्गा आंगन में पड़ोसियों के बीच बैठी थी और सभी उसे दिलासा दे रहे थे।

सूरज के आने पर दुर्गा ने उसे बताया, "आज तो बरबाद हो गए होते। इन पड़ोसियों ने आग बुझाकर हमारी बड़ी सहायता की।"

इस पर सूरज ने कहा, "अब तो देख लिया भलाई क्या होती है। जिन लोगों से तुम नाराज होती थीं, उन्होंने ही मुसीबत में तुम्हारी सहायता की।"

दुर्गा के दिल पर इस घटना बड़ा असर हुआ। वह सबके प्रति दयालु हो गई। उनकी सहायता भी करने लगी। उसने अपने गरीब पड़ोसियों को छोटा समझना छोड़ दिया। मुनमुन बत्तख तो उसकी खास सहेली बन गई।

●●●

कपड़ों की दावत

एक नेता का सामाजिक क्रांति पर छः बजे भाषण होना था। वह पाँच मिनट पहले ही सभा-स्थल पर पहुँच गए। सोचा था, देर से पहुँचने पर सही स्थान न मिले। ज्ञान की नई बात सुनने से वंचित न रह जायें।

पर वहाँ तो खाली फर्श बिछे पड़े थे। सामने चौकियों पर ऊँचा मंच बना था। वह वृद्ध चप्पल उतारकर मंच के पास जाकर फर्श पर बैठ गया। साढ़े छः बजे मालायें लेकर आयोजक आए। फिर धीरे-धीरे श्रोताओं ने आना शुरू किया।

बढ़िया कपड़े पहने हुए, जो बड़े आदमी आते, दनदनाते हुए आगे बढ़ जाते। उस पुराने से, सिकुड़े हुए, साधारण कुर्ता पायजामा पहने बूढ़े से कहते—'अमां मियां! जरा सरकना।' और उसे पीछे सरका कर स्वयं आगे जाकर बैठ जाते।

नतीजा यह हुआ कि पीछे सरकते-सरकते वह वृद्ध अन्तिम छोर पर पहुँच गये जहाँ जूते-चप्पल रखे हुए थे। उसकी पुरानी चप्पलें भी ढेर में दब गई थीं। कुछ देर बाद वहाँ खड़े रहना भी मुश्किल हो गया क्योंकि भाषण शुरू होने पर पीछे कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा था और लोग-बाग आगे बढ़ने की कोशिश में धक्का-मुक्की कर रहे थे।

वृद्ध सज्जन मायूस होकर घर लौट आए। उन्होंने तुरंत धोबी का धुला चूड़ीदार पायजामा, बढ़िया शेरवानी, तुर्की टोपी और चमकती जूतियाँ पहनीं। उधर भाषण समाप्त हो गया था। सब दावत के लिए बैठे थे।

वृद्ध सज्जन को लक-दक लिबास में देखकर काना-फूसी शुरू हो गई–'देखो ये कौन बड़ा आदमी आया' कुछ लोग दौड़ते हुए आए–"अरे! सादी साहब तशरीफ लाए हैं। किबला, इधर तशरीफ लाइए।"

"हुजूर आइये, इधर आइये।"

भीड़ को चीरकर हाथों ही हाथों पर ले जाकर प्रकांड विद्वान शेख सादी साहब को मुख्य अतिथि के सामने जगह दी गई।

सभी इसरार करने लगे–"जनाब, सादी साहब! पहले आप बिसमिल्लाह (खाने की शुरुआत) कीजिये।"

सादी साहब ने शोरबे की प्लेट उठाई–अपनी शेरवानी पर उड़ेल ली। पुलाव तुर्की टोपी को खिलाने लगे.......।

लोग हैरान होकर चिल्लाने लगे–"सादी साहब, यह क्या कमाल कर रहे हैं। इतना लज्जतदार खाना बना हैं और आप कपड़ों पर फैला रहे हैं।"

सादी साहब ने गम्भीरता से बस इतना कहा–"भाइयो, तुम अपनी इज्जत मेरे इन चमक-दमक वाले कपड़ों को ही दे रहे हो।" पूरी बात सुनकर सभी सन्न रह गये।

बच्चों! विद्वान पुरुष, ज्ञान के भूखे होते हैं, बढ़िया खाने के नहीं। समाज ज्ञानी, गुणवान ही नहीं, धनवान की इज्जत करता है लेकिन गुणी व्यक्तियों को धन की दासता नहीं स्वीकार कर लेनी चाहिये।

●●●

आदत की बात

बच्चों! दही खाने में तुम्हें बड़ा मजा आता है। यह दूसरी बात है कि कुछ बच्चे उसमें बूरा चीनी मिलाते हैं, कुछ नमक-मिर्च मिलाकर नमकीन बना लेते हैं। अकबर बादशाह अपने दरबार में बीरबल को रखते थे। वह बादशाह को अपनी बातों से खट्टा, मीठा, चरपरा स्वाद चखाया करते थे। पर बीरबल थे बुद्धिमान। बात पते की कहते थे।

एक बार बादशाह सलामत आगरा से फतेहपुर सीकरी, जहाँ नई राजधानी बनाई थी, जा रहे थे। प्रत्येक मील पर एक चौकी होती थी। बादशाह के काफिले के वहाँ पहुँचने पर नगाड़े पर इतने जोर की चोट पड़ती थी कि अगले मील की चौकी तक आवाज पहुँचती थी।

जून का गर्मियों का दिन था। एक किसान सुबह से खेत में काम करता थक गया था। मट्ठा से बाजरे रोटी खाकर, नीम की छाया में सड़क के किनारे पड़े कँकड़ों पर हाथ का तकिया बनाकर सो गया था। जब अकबर बादशाह ने देखा तो बोले-"बीरबल! देखो यह आदमी कितना सुखी है। इतनी गर्मी में कँकड़ों पर कितने आराम से सो रहा है। नगाड़े की आवाज का भी असर नहीं हुआ।"

बीरबल मन ही मन मुस्कराये। उस आदमी को बुलाकर, अपने साथ फतेहपुर सीकरी ले गये। उसे डाँटा-"बादशाह सलामत वहाँ से होकर गुजरे और तुम सोते रहे।"

वह निडर बोला-"हुजूर मेहनत कर थककर सो गया। फिर मुझे पता नहीं चला कि बादशाह की सवारी कब आ गई।"

बीरबल ने कहा-"आज से तुम्हें इस महल का चोबदार बनाया जाता है। तुम्हारा काम केवल यह है कि रात को कभी-कभी जाकर यह देख लिया करना कि पहरेदार ठीक से पहरेदारी करते हैं या नहीं।"

वह महलों में आराम से रहने लगा। बढ़िया खाना, बढ़िया पहनना, काम कुछ नहीं। रात-दिन सोना।

जाड़े के दिन आये तो बीरबल ने चोबदार के लिए मखमल की विशेष प्रकार की रजाई बनाने का हुक्म दे दिया।

चोबदार इतना आरामतलब हो गया था कि मखमल की रजाई ओढ़ी तो उसमें कुछ चुभने लगा। रजाई पलट कर ओढ़ी तो फिर कुछ चुभता सा लगा। रात करवटें बदलते बीत गई, नींद नहीं आई। इस प्रकार दिन-रात तीन दिन बीत गये। आँख सूजकर पकौड़ा बन गई। चेहरे से लगता कितने दिन से बीमार है।

उसी समय अकबर के सामने बीरबल ने उसे बुलवाया। उसे देखकर अकबर ने कहा-"क्या बात है चोबदार, कितने दिन से बीमार हो? शाही हकीम ने सही इलाज नहीं किया?"

चोबदार गिड़गिड़ाकर बोला-"अलीजहाँ, मुझे कोई बीमारी नहीं है। पता नहीं तीन दिन से एक मिनट भी नींद नहीं आई है।"

बीरबल को हँसता देखकर महाराज समझ गये-इसमें कुछ रहस्य है।

बीरबल ने बताया-"हुजूर, यह वही सुखी इंसान है जो भीषण गर्मी में कँकड़ों पर सोता था। अब धुनिया ने मेरे हुक्म से दोनों ओर दो-दो बिनौले छोड़ दिये थे। वही रजाई ओढ़ते समय इतने चुभते थे कि नींद हराम हो गई।"

उस आदमी को नौकरी से निकाल दिया गया। गाँव पहुँचा तो हल चलाने मेहनत करने पर हाथों में छाले पड़ गये, लेकिन दो-चार महीने में फिर पुरानी आदत पड़ गई और चैन से मेहनत की जिंदगी बिताने लगा।

बच्चों! खाने, पहनने की जैसी आदत बना लेते हैं, उसी में सुख-दुःख मिलता है। जीवन में सबसे बड़ी चीज है परिश्रम करना। सुखी रहना है तो जो कुछ मिले, उसी में संतुष्ट रहना चाहिये।

सच ही तो कहा गया है-

रूखी सूखी खाय कै, ठंडा पानी पी।
देख बिरानी चूपरी, मत ललचावै जी।।

●●●

सच्चाई का जोर

एक दिन की बात है। खलीफा मामूं रशीद अपने दरबार में बैठे लोगों की शिकायतें सुन रहे थे। तभी कुछ सिपाही एक बुढ़िया को लेकर हाजिर हुए। खलीफा ने उनसे पूछा क्या बात है? सिपाहियों ने बताया कि हुजूर यह बुढ़िया बगैर अपनी बारी के जबरदस्ती दरबार में घुसने की कोशिश कर रही थी। हमने इसे रोका, तो गाली बकने लगी।

यह सुनकर ख़लीफा ने सिपाहियों से कहा कि बुढ़िया को छोड़ दो और फिर उससे बड़ी नर्मी से बोले, 'बड़ी बी, क्या बात है? तुम्हें क्या शिकायत है?'

'ऐ हुजूर, एक जालिम ने मेरी जायदाद छीन ली।' बुढ़िया ने गुस्से से नथुने फुलाते हुए कहा।

'उस व्यक्ति का नाम धाम भी तो बताओ, बड़ी बी।' खलीफा ने पूछा।

इस पर बुढ़िया ने खलीफा के बराबर बैठे व्यक्ति की तरफ इशारा कर दिया। वह व्यक्ति खलीफा का बेटा अब्बास था। खलीफा की त्यौरी पर बल पड़ गये। उन्होंने वजीरेआजम को हुक्म दिया कि शहजादे को बुढ़िया के बराबर ख़ड़ा कर दे और दोनों के बयान सुनें।

चुनांचे वैसा ही किया गया। शहजादा रुक-रुक कर धीरे-धीरे हकला-हकलाकर बयान देने लगा। लेकिन जब बुढ़िया की बारी आई, तो उसकी आवाज में बला की तेजी थी। वजीरे-आजम ने उसे रोका खलीफा के सामने चिल्लाकर बोलना बेअदबी है।

"नहीं! कोई बेअदबी नहीं, उसे आजादी से अपनी बात कहने दो। सच्चाई ने उसकी जबान में जोर भर दिया है और अब्बास को गूंगा बना दिया है।" खलीफा ने हुक्म दिया।

अंत में फैसला बुढ़िया के पक्ष में हुआ और उसकी जायदाद वापस मिल गयी।

बुद्धि बल

एक जंगल में एक भासुरक नाम का शेर रहता था। बहुत बलशाली होने के कारण वह प्रतिदिन जंगल के मृग, खरगोश, हिरण, रीछ, चीता आदि पशुओं को मारा करता था।

एक दिन जंगल के सभी जानवरों ने मिलकर सभा की और निश्चय किया कि वह अपने भोजन के लिए प्रतिदिन एक पशु से अधिक की हत्या न किया करे। इस निश्चय को शेर तक पहुँचाने के लिए पशुओं के प्रतिनिधि शेर से मिले। उन्होंने शेर से निवेदन किया कि उसे रोज एक पशु बिना शिकार के मिल जाया करेगा, इसलिए वह अनगिनत पशुओं का शिकार न किया करे। शेर यह बात मान गया। दोनों ने प्रतिज्ञा की कि वे अपने वचनों का पालन करेंगे।

उस दिन के बाद से वन के अन्य पशु वन में निर्भय घूमने लगे। उन्हें शेर का भय नहीं रहा। शेर को भी घर बैठे एक पशु मिलता रहा। शेर ने यह धमकी दे दी थी कि जिस दिन भी उसे कोई पशु नहीं मिलेगा, उस दिन वह फिर अपने शिकार पर निकल जाएगा और मनमाने पशुओं की हत्या कर देगा। इस डर से भी सब पशु यथा-क्रम एक-एक पशु को शेर के पास भेजते रहे।

इसी क्रम से एक दिन खरगोश की बारी आ गई। खरगोश शेर की माँद की ओर चल पड़ा; किन्तु मृत्यु के भय से उसके पैर नहीं उठते थे। मौत की घड़ियों को कुछ और टालने के लिए वह जंगल में इधर-उधर भटकता रहा। एक स्थान पर उसे एक कुआँ दिखाई दिया। कुएँ में झाँककर देखा तो उसे अपनी परछाई दिखाई दी। उसे देखकर उसके मन में एक विचार उठा, क्यों न भासुरक को उसके वन में दूसरे शेर के नाम से उसकी परछाई दिखाकर इस कुएँ में गिरा दिया जाए?

यही उपाय सोचता-सोचता वह भासुरक शेर के पास बहुत समय बाद पहुँचा, शेर उस समय तक भूखा प्यासा होंठ चाटता बैठा था। उसके

भोजन की घड़ियाँ बीत रही थीं। वह सोच ही रहा था कि कुछ देर और कोई पशु न आया तो वह अपने शिकार पर चल पड़ेगा और पशुओं के खून से सारे जंगल को सींच देगा। इसी बीच वह खरगोश उसके पास पहुँच गया और प्रणाम करके बैठ गया।

खरगोश को देखकर शेर ने क्रोध से लाल-लाल आँखें करते हुए गरज कर कहा-"नीच खरगोश! एक तो तू इतना छोटा है और फिर इतनी देर लगाकर आया है। आज तुझे मारकर कल मैं सारे पशुओं की जान ले लूँगा। वंश नाश कर दूँगा।"

खरगोश ने विनय से सिर झुकाकर उत्तर दिया-"स्वामी! आप व्यर्थ क्रोध करते हैं। इसमें न मेरा अपराध है और न ही अन्य पशुओं का। कुछ भी फैसला करने से पहले देरी का कारण तो सुन लीजिये।

शेर-"जो कुछ कहना है जल्दी कह। मैं बहुत भूखा हूँ। कहीं तेरे कुछ कहने से पहले ही तुझे अपने दाढ़ों में न चबा जाऊँ।"

खरगोश-"स्वामी! बात यह है कि सभी पशुओं ने सभा करके और यह सोचकर कि मैं बहुत छोटा हूँ, मुझे तथा अन्य चार खरगोशों को आपके भोजन के लिए भेजा था। हम पाँचों आपके पास आ रहे थे कि मार्ग में कोई दूसरा शेर अपनी गुफा से निकलकर आया और बोला, 'अरे! किधर जा रहे हो तुम सब ? अपने देवता का अन्तिम स्मरण कर लो, मैं तुम्हें मारने आया हूँ।' मैंने उसे कहा, 'हम सब अपने स्वामी भासुरक के पास आहार के लिए जा रहे हैं।' तब वह बोला भासुरक कौन होता है? यह जंगल तो मेरा है। मैं ही तुम्हारा राजा हूँ। तुम्हें जो बात कहनी हो मुझसे कहो। भासुरक चोर है। तुम में से चार खरगोश यहीं रह जायें । एक खरगोश भासुरक के पास जाकर उसे बुला लाये, मैं उससे स्वयं निपट लूँगा। हममें जो शेर अधिक बली होगा, वही इस जंगल का राजा होगा।' अब मैं किसी तरह उससे जान छुड़ाकर आपके पास आया हूँ। इसीलिये मुझे देर हो गई। आगे स्वामी की जो इच्छा हो, करें।

यह सुनकर भासुरक बोला-ऐसा ही है तो जल्दी से मुझे उस दूसरे शेर के पास ले चल। आज मैं उसका रक्त पीकर ही भूख मिटाऊँगा। मैं इस जंगल में किसी का हस्तक्षेप पसंद नहीं करता।

खरगोश–'स्वामी! यह तो सच है कि अपने स्वत्व के लिए युद्ध करना आप जैसे शूरवीरों का धर्म है, किन्तु दूसरा शेर अपने दुर्ग में बैठा है। दुर्ग से बाहर आकर ही उसने हमारा रास्ता रोका था। दुर्ग में रहने वाले शत्रु पर विजय पाना बड़ा कठिन होता है। दुर्ग में बैठा शत्रु सौ शत्रुओं के बराबर माना जाता है। दुर्गहीन राजा दन्तहीन सांप और मदहीन हाथी की तरह कमजोर हो जाता है।

भासुरक–तेरी बात ठीक है, किन्तु मैं उस दुर्गस्थ शेर को भी मार डालूँगा। शत्रु का जितनी जल्दी हो नष्ट कर देना चाहिये। मुझे अपने बल पर पूरा भरोसा है। शीघ्र ही उसका नाश न किया गया तो वह बाद में असाध्य रोग की तरह प्रबल हो जायेगा।

खरगोश–यदि स्वामी का यही निर्णय है तो आप मेरे साथ चलिये।

यह कहकर खरगोश भासुरक शेर को उसी कुएँ के पास ले गया, जहाँ झुक कर उसने अपनी परछाईं देखी थी। वहाँ जाकर वह बोला–स्वामी! मैंने जो कहा था, वही हुआ। आपको दूर से ही देखकर वह अपने दुर्ग में घुस गया है। आप आइए, मैं आपको उसकी सूरत तो दिखा दूँ।

भासुरक–जरूर ! उस नीच को दिखाओ मैं उसके दुर्ग में ही उससे लड़ूँगा।

खरगोश शेर को कुएँ की मेड़ पर ले गया। भासुरक ने झुककर कुएँ में अपनी परछाईं देखी तो समझा कि यही दूसरा शेर है। तब वह जोर से गरजा। उसकी गरज के उत्तर में कुएँ से दुगुनी गूँज पैदा हुई। उसकी गूँज को प्रतिपक्षी शेर की ललकार समझकर भासुरक उसी क्षण कुएँ में कूद पड़ा और वहीं पानी में डूबकर प्राण दे दिये।

खरगोश ने अपनी बुद्धिमत्ता से शेर को हरा दिया। वहाँ से लौटकर वह सभा में गया। उसकी चतुराई सुनकर और शेर की मौत का समाचार सुनकर सब जानवर खुशी से नाच उठे।

●●●

दमनक ने कहानी सुनाने के बाद करटक से कहा–तेरी सलाह हो तो मैं भी अपनी बुद्धि से उनमें फूट डलवा दूँ। अपनी प्रभुता जमाने का यही मार्ग है। मैत्री-भेद किये बिना काम नहीं चलेगा।

करकट–मेरी भी यही राय है। तू उनमें भेद कराने का यत्न कर। ईश्वर करे तुझे सफलता मिले।

वहाँ से चलकर दमनक पिंगलक के पास गया। उस समय पिंगलक के पास संजीवक नहीं बैठा था। पिंगलक ने दमनक को बैठने का इशारा करते हुए कहा–कहो दमनक! बहुत दिन बाद दर्शन दिए।

दमनक–स्वामी! आपको अब हम से कुछ प्रयोजन ही नहीं रहा तो आने का लाभ? फिर भी आपके हित की बात कहने को आपके पास आ जाता हूँ। हित की बात बिना पूछे भी कह देनी चाहिये।

पिंगलक–जो कहना हो निर्भय होकर कहो। मैं अभय-वचन देता हूँ।

दमनक–स्वामी संजीवन आपका मित्र नहीं बैरी है। एक दिन उसने मुझे एकान्त में कहा था कि पिंगलक का बल मैंने देख लिया, उसमें विशेष सार नहीं है। उसको मारकर मैं तुझे मन्त्री बनाकर सब पशुओं पर राज्य करूँगा।

दमनक के मुख से उन वज्र की तरह कठोर वचनों को सुनकर पिंगलक ऐसा चुप रह गया, मानो मूर्छा आ गई हो। दमनक ने जब पिंगलक की यह अवस्था देखी तो सोचा पिंगलक का संजीवन से प्रगाढ़ स्नेह है, संजीवक ने इसे वश में कर रखा है। जो राजा इस तरह मंत्री के वश में हो जाता है, नष्ट हो जाता है। यह सोचकर उसने पिंगलक के मन से संजीवक का जादू मिटाने का निश्चय और पक्का कर लिया।

पिंगलक ने थोड़ा होश में आकर किसी तरह धैर्य धारण करते हुए कहा–दमनक संजीवक तो हमारा बहुत ही विश्वासपात्र नौकर है। उसके मन में मेरे लिए वैर-भावना नहीं हो सकती।

दमनक–स्वामी! आज जो विश्वासपात्र है, वही कल विश्वासघातक बन जाता है। राज्य का लोभ किसी के भी मन को चंचल बना सकता है। इसमें अनहोनी कोई बात नहीं।

पिंगलक–दमनक! फिर भी मेरे मन में संजीवक के लिए द्वेष–भावना नहीं उठती। अनेक दोष होने पर भी प्रियजनों को छोड़ा नहीं जाता। जो प्रिय है, वह प्रिय ही रहता है।

दमनक–यही तो राज्य–संचालन के लिए बुरा है। जिसे भी आप स्नेह का पात्र बनायेंगे, वही आपका प्रिय हो जायेगा। इसमें संजीवक कोई विशेषता नहीं, विशेषता तो आपकी है। आपने उसे अपना प्रिय बना लिया तो वह बन गया अन्यथा उसमें गुण ही कौन–सा है? आप यह समझते हैं कि उसका शरीर बहुत भारी है और वह शत्रु संहार में सहायक होगा, तो यह आपकी भूल है। वह तो घास–पात खाने वाला जीव है; आपके शत्रु तो सभी मांसाहारी हैं, अतः उसकी सहायता से शत्रु नाश नहीं हो सकता। आज वह आपको धोखे से मार राज्य करना चाहता है। अच्छा है कि उसका षडयंत्र पकने से पहले ही उसको मार दिया जाये।

पिंगलक–दमनक! जिसे हमने पहले गुणी मानकर अपनाया है, उसे राजसभा में आज निर्गुण कैसे कह सकते हैं ? फिर तेरे कहने से ही तो मैंने उसे अभय–वचन दिया था। मेरा मन कहता है कि संजीवक मेरा मित्र है, मुझे उसके प्रति कोई क्रोध नहीं है। यदि उसके मन में वैर आ गया है तो मैं उसके प्रति वैर–भावना नहीं रखता। अपने हाथों लगाया विष–वृक्ष भी अपने हाथों नहीं काटा जाता।

दमनक–स्वामी! यह आपकी भावुकता है। राजधर्म इसका आदेश नहीं देता। वैर–बुद्धि वाले को क्षमा करना राजनीति की दृष्टि से मूर्खता है। आपने उसकी मित्रता के वश में आकर सारा राजधर्म भुला दिया है। आपके राजधर्म से च्युत होने के कारण ही जंगल के अन्य पशु आपसे विरक्त हो गये हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि संजीवक को मार दें अन्यथा वह आपको मार देगा अथवा उसकी संगति से आप जब स्वभाव–विरुद्ध काम करेंगे, अपनों को छोड़कर परायों को अपनाएँगे तो आप पर आपत्ति आ जायेगी।

●●●

काकोलूकीय

दक्षिण देश में महिलाराप्य नाम का एक नगर था। नगर के पास एक बड़ा पीपल का वृक्ष था। उसकी घने पत्तों से ढकी शाखाओं पर पक्षियों के घोंसले बने हुए थे। उन्हीं में कुछ घोंसलौं में कौवों के बहुत से परिवार रहते थे। कौवों का राजा वायसराज मेघवर्ण भी वहीं रहता था। वहाँ उसने अपने दल के लिए एक व्यूह-सा बना लिया था।

उससे कुछ दूर पर्वत की गुफा में उल्लुओं का दल रहता था। इनका राजा अरिमर्दन था।

दोनों में स्वाभाविक वैर था। अरिमर्दन हर रात पीपल के वृक्ष के चारों ओर चक्कर लगाता था। वहाँ कोई इकला-दुकला कौवा मिल जाता तो उसे मार देता था। इसी तरह एक-एक करके उसने सैकड़ों कौवे मार दिये।

तब मेघवर्ण ने अपने मन्त्रियों को बुलाकर उनसे उलूकराज के प्रहारों से बचने का उपाय पूछा। उसने कहा–कठिनाई यह है कि हम रात को देख नहीं सकते और दिन को उल्लू न जाने कहाँ छिपते हैं। हमें उनके स्थान के संबंध में कुछ भी पता नहीं। समझ में नहीं आता कि इस समय सन्धि, युद्ध, यान, आसन, संश्रय, द्वैधीभाव आदि उपायों में से किसका प्रयोग किया जाये।

पहले मेघवर्ण ने उज्जीवी नाम के प्रथम सचिव से प्रश्न किया। उसने उत्तर दिया–महाराज! बलवान शत्रु से युद्ध नहीं करना चाहिये। उससे तो सन्धि करना ही ठीक है। युद्ध से हानि ही है। समान बल वाले शत्रु से ही पहले सन्धि करके, कछुए की तरह सिमटकर शक्तिसंग्रह करने के बाद ही युद्ध करना उचित है।

उसके बाद संजीवी नाम के द्वितीय सचिव से प्रश्न किया गया। उसने कहा–महाराज! शत्रु के साथ सन्धि नहीं करनी चाहिये। शत्रु सन्धि

के बाद भी नाश ही करता है। पानी अग्नि द्वारा गरम होने के बाद भी अग्नि को बुझा ही देता है। विशेषतः क्रूर, अत्यंत लोभी और धर्म रहित शत्रु से तो कभी सन्धि न करें। शत्रु के प्रति शान्ति-भाव दिखलाने से उसकी शत्रुता की आग और भी भड़क जाती है। वह और भी क्रूर हो जाता है। जिस शत्रु से हम आमने-सामने की लड़ाई न लड़ सकें, उसे छल-बल द्वारा हराना चाहिये, किन्तु सन्धि नहीं करनी चाहिये। सच तो यह है कि जिस राजा की भूमि शत्रुओं के खून से और उनकी विधवा स्त्रियों के आंसुओं से नहीं सींची गई, वह राजा होने योग्य ही नहीं।

तब मेघवर्ण ने तृतीय सचिव अनुजीवी से प्रश्न किया। उसने कहा–महाराज! हमारा शत्रु दुष्ट है, बल में भी अधिक है। इसलिए उसके साथ सन्धि और युद्ध दोनों के करने में हानि है। उसके लिए तो शास्त्रों में याननीति का ही विधान है। हमें यहाँ से किसी दूसरे देश में चले जाना चाहिये। इस तरह पीछे हटने में कायरता-दोष नहीं होता। शेर भी तो हमला करने से पहले पीछे हटता है। वीरता का अभिवादन करके जो हठपूर्वक युद्ध करता है, वह शत्रु की इच्छा पूरी करता है और अपने वंश का नाश कर लेता है।

इसके बाद मेघवर्ण ने चतुर्थ सचिव प्रजीवी से प्रश्न किया। उसने कहा–महाराज! मेरी सम्पत्ति में तो सन्धि, विग्रह और यान तीनों का दोष है। हमारे लिए आसन नीति का आश्रय लेना ही ठीक है। अपने स्थान पर दृढ़ता से बैठना सबसे अच्छा उपाय है। मगरमच्छ अपने स्थान पर बैठकर शेर को भी हरा देता है, हाथी को भी पानी में खींच लेता है। वही यदि अपना स्थान छोड़ दे तो चूहे से भी हार जाए। अपने दुर्ग में बैठकर हमारा एक सिपाही शत-शत शत्रुओं का नाश कर सकता है। हमें अपने दुर्ग को दृढ़ बनाना चाहिये। अपने स्थान पर दृढ़ता से खड़े छोटे-छोटे वृक्षों को आंधी-तूफान के प्रबल झोंके भी नहीं उखाड़ सकते।

तब मेघवर्ण ने चिरंजीवी नाम के पंचम सचिव से प्रश्न किया। उसने कहा –महाराज मुझे तो इस समय संश्रय नीति ही उचित प्रतीत होती है।

किसी बलशाली सहायक मित्र को अपने पक्ष में करके ही हम शत्रु को हरा सकते हैं। अत: हमें यहीं ठहर किसी समर्थ मित्र की सहायता ढूंढनी चाहिये। यदि एक समर्थ मित्र न मिले तो अनेक छोटे-छोटे मित्रों की सहायता भी हमारे पक्ष को सबल बना सकती है। छोटे-छोटे तिनकों में गुथी रस्सी भी इतनी मजबूत बन जाती है कि हाथी को जकड़कर बांध लेती है।

पाँचों मन्त्रियों से सलाह लेने के बाद वायसराज मेघवर्ण अपने वंशागत सचिव स्थिरजीवी के पास गया। उसे प्रणाम करके वह बोला—श्रीमान! मेरे सभी मंत्री जुदा-जुदा राय दे रहे हैं। आप उनकी सलाहें सुनकर अपना निश्चय दीजिये।

स्थिरजीवी ने उत्तर दिया—वत्स! सभी मन्त्रियों ने अपनी बुद्धि के अनुसार ठीक ही मन्त्रणा दी है; अपने-अपने समय सभी नीतियाँ अच्छी होती हैं। किन्तु मेरी सम्मति में तुम्हें द्वैधीभाव या भेद-नीति का ही आश्रय लेना चाहिये। उचित है कि पहले हम सन्धि द्वारा शत्रु में अपने लिए विश्वास पैदा कर लें, किन्तु शत्रु पर विश्वास न करें। सन्धि करके युद्ध की तैयारी करते रहें; तैयारी पूरी होने पर युद्ध कर दें। सन्धि काल में हमें शत्रु के निर्बल स्थलों का पता लगाते रहना चाहिये। उनसे परिचय होने के बाद वहीं आक्रमण कर देना उचित है।

मेघवर्ण ने कहा—आपका कहना नि:संदेह सत्य है। किन्तु शत्रु का निर्बल स्थल किस तरह देखा जाये?

स्थिरजीवी—गुप्तचरों द्वारा ही हम शत्रु के निर्बल स्थल की खोज कर सकते हैं। गुप्तचर ही राजा की आँख का काम देता है।

●●●

शरणागत के लिये आत्मोत्सर्ग

एक जगह एक लोभी और निर्दय व्याध रहता था। पक्षियों को मारकर खाना ही उसका काम था। इस भयंकर काम के कारण उसके प्रियजनों ने भी उसका त्याग कर दिया था। तब से वह अकेला ही हाथ में जाल और लाठी लेकर जंगलों में पक्षियों के शिकार के लिए घूमा करता था।

एक दिन उसके जाल में एक कबूतरी फंस गई। उसे लेकर जब वह अपनी कुटिया की ओर चला तो आकाश बादलों से घिर गया। मूसलाधार वर्षा होने लगी। सर्दी से ठिठुरकर व्याध आश्रय की खोज करने लगा। थोड़ी दूर पर पीपल का वृक्ष था। उसके खोल में घुसते हुए उसने कहा–यहाँ जो भी रहता है, मैं उसकी शरण जाता हूँ। इस समय मेरी जो सहायता करेगा, उसका जन्मभर ऋणी रहूँगा।

उस खोल में वही कबूतर रहता था, जिसकी पत्नी को व्याध ने जाल में फँसाया था। कबूतर उस समय पत्नी के वियोग से दुःखी होकर विलाप कर रहा था। पति को प्रेमातुर पाकर कबूतरी का मन आनन्द से नाच उठा। उसने मन ही मन सोचा, मेरे धन्य भाग्य हैं जो ऐसा प्रेमी पति मिला है। पति का प्रेम ही पत्नी का जीवन है। पति की प्रसन्नता से ही स्त्री जीवन सफल होता है। मेरा जीवन सफल हुआ। यह विचार कर वह पति से बोलीः –पतिदेव मैं आपके सामने हूँ। इस व्याध ने मुझे बाँध लिया है। यह मेरे पुराने कर्मों का फल है। हम अपने कर्म-फल से ही दुःख भोगते हैं। मेरे बंधन की चिन्ता छोड़कर तुम इस समय अपने शरणागत अतिथि की सेवा करो, जो जीव अपने अतिथि को सत्कार नहीं करता, उसके सब पुण्य छूटकर अतिथि के साथ चले जाते हैं और सब पाप वहीं रह जाते हैं।

पत्नी की बात सुनकर कबूतर ने व्याध से कहा–चिन्ता न करो बधिक! इस घर को भी अपना ही जानो। कहो, मैं तुम्हारी कौन-सी सेवा कर सकता हूँ ?

व्याध–मुझे सर्दी सता रही है, इसका उपाय कर दो।

कबूतर ने लकड़ियाँ इकट्ठी कर के जला दीं और कहा–तुम आग सेंककर सर्दी दूर कर लो।

कबूतर को अब अतिथि-सेवा के लिए भोजन की चिन्ता हुई। किन्तु उसके घोंसले में तो अन्न का एक दाना भी नहीं था। बहुत सोचने के बाद उसने अपने शरीर से ही व्याध की भूख मिटाने का विचार किया। यह सोचकर वह महात्मा कबूतर स्वयं जलती आग में कूद पड़ा। अपने शरीर का बलिदान करके भी उसने व्याध के तर्पण करने का प्रण पूरा किया।

व्याध ने जब कबूतर का यह अद्‌भुत बलिदान देखा तो आश्चर्य में डूब गया। उसकी आत्मा उसे धिक्कारने लगी। उसी क्षण उसने कबूतरी को जाल से निकाल कर मुक्त किया और पक्षियों को फँसाने का जाल व अन्य उपकरणों को तोड़-फोड़कर फेंक दिया।

कबूतरी अपने पति को आग में जलता देखकर विलाप करने लगी। उसने सोचा–मेरे पति के बिना अब मेरे जीवन का प्रयोजन ही क्या है? मेरा संसार उजड़ गया, अब किसके लिए प्राण धारण करूँ ? – यह सोचकर वह पतिव्रता भी आग में कूद पड़ी। इन दोनों के बलिदान पर आकाश से पुष्पवर्षा हुई। व्याध ने भी उस दिन से प्राणी-हिंसा छोड़ दी।

क्रूराक्ष के बाद अरिमर्दन ने दीप्ताक्ष से प्रश्न किया।

दीप्ताक्ष ने भी यही सम्मति दी।

इसके बाद अरिमर्दन ने वक्रनास से प्रश्न किया। वक्रनास ने भी कहा–देव! हमें इस शरणागत शत्रु की हत्या नहीं करनी चाहिये। कई बार शत्रु भी हित का कार्य कर देते हैं।

लालच बुरी बला

एक नगर में चार ब्राह्मण पुत्र रहते थे। चारों में गहरी मैत्री थी। चारों ही निर्धन थे। निर्धनता को दूर करने के लिए चारों चिन्तित थे। उन्होंने अनुभव कर लिया था कि अपने बंधु-बांधव भी उनसे किनारा कर लेते हैं, अपने ही पुत्र-पौत्र भी उससे मुख मोड़ लेते हैं, पत्नी भी उससे विरक्त हो जाती है। मनुष्य लोक में धन के बिना न यश सम्भव है न सुख! धन हो जाता है, तो कुरूप सुरूप कहलाता है और मूर्ख भी पंडित बन जाता है।

ये सोचकर उन्होंने धन कमाने के लिए किसी दूसरे देश को जाने का निश्चय किया। अपने बंधु-बांधवों को छोड़ा, अपनी जन्म-भूमि से विदा ली और विदेश यात्रा के लिए चल पड़े।

चलते-चलते क्षिप्रा नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ नदी के शीतल जल में स्नान करने के बाद महाकाल को प्रणाम किया। थोड़ी दूर आगे जाने पर उन्हें एक जटाजूटधारी योगी दिखाई दिए। इन योगीराज का नाम भैरवानन्द था। योगिराज इन चारों नौजवान ब्राह्मण-पुत्रों को अपने आश्रम में ले गए और उनसे प्रवास का प्रयोजन पूछा। चारों ने कहा—हम अर्थ सिद्धि के लिए यात्री बने हैं। धनोपार्जन ही हमारा लक्ष्य है। इस धनहीन जीवन से मृत्यु ही अच्छी है।

योगिराज ने उनके निश्चय की परीक्षा के लिए जब कहा कि धनवान बनना तो दैव के अधीन है, तब उन्होंने उत्तर दिया—यह सच है कि भाग्य ही पुरुष को धनी बनाता है, किन्तु साहसिक पुरुष भी अवसर का लाभ उठाकर अपने भाग्य को बदल लेते हैं। पुरुष का पौरुप कभी-कभी दैव से भी अधिक बलवान हो जाता है। इसलिए आप हमें भाग्य का नाम लेकर निरुत्साहित न करें। हमने अब धनोपार्जन का प्रण

पूरा करके ही लौटने का निश्चय किया है। आप अनेक सिद्धियों को जानते हैं। आप चाहें तो हमें सहायता दे सकते हैं; हमारा पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं। योगी होने के कारण आपके पास महती शक्तियाँ हैं। हमारा निश्चय भी महान है। महान ही महान की सहायता कर सकता है।

भैरवानन्द को उनकी दृढ़ता देखकर प्रसन्नता हुई। प्रसन्न होकर धन कमाने का एक रास्ता बतलाते हुए उन्होंने कहा—तुम हाथों में दीपक लेकर हिमालय पर्वत की ओर जाओ। वहाँ जाते-जाते जब तुम्हारे हाथ का दीपक नीचे गिर पड़े तो ठहर जाओ। जिस स्थान पर दीपक गिरे उसे खोदो। वहीं तुम्हें धन मिलेगा। धन लेकर वापस चले आओ।

चारों युवक हाथों में दीपक लेकर चल पड़े। कुछ दूर जाने के बाद उनमें से एक के हाथ का दीपक भूमि पर गिर पड़ा। उस भूमि को खोदने पर उन्हें ताम्रमयी भूमि मिली। वह तांबे की खान थी। उसने कहा—यहाँ जितना चाहो तांबा ले लो। अन्य युवक बोले—मूर्ख! तांबे से दरिद्रता दूर नहीं होगी। हम आगे बढ़ेंगे। आगे इससे अधिक मूल्य की वस्तु मिलेगी। उसने कहा—तुम आगे जाओ, मैं तो यहीं रहूँगा। यह कहकर उसने यथेष्ट ताँबा लिया और घर लौट आया।

शेष तीन मित्र आगे बढ़े। कुछ आगे जाने के बाद उनमें से एक के हाथ का दीपक जमीन पर गिर पड़ा। उसने जमीन खोदी तो चांदी की खान पाई। प्रसन्न होकर बोला—यहाँ जितनी चाहो चांदी ले लो, आगे मत जाओ। शेष दो मित्र बोले—पीछे ताँबे की खान मिली थी, यहाँ चाँदी की खान मिली है; निश्चय ही आगे सोने की खान मिलेगी। इसलिए हम तो आगे ही बढ़ेंगे।—यह कहकर दोनों मित्र आगे बढ़ गये।

उन दो में से एक के हाथ से फिर से दीपक गिर गया, खोदने पर उसे सोने की खान मिल गई। उसने कहा—यहाँ जितना चाहो सोना ले लो। हमारी दरिद्रता का अन्त हो जायगा। सोने से उत्तम कौन-सी चीज

है। आओ सोने से यथेष्ट सोना खोद लें और घर ले चलें।–उसके मित्र ने उत्तर दिया–मूर्ख पहले ताँबा मिला, फिर चांदी मिली, अब सोना मिला है: निश्चय ही आगे रत्नों की खान होगी। सोने की खान छोड़ दे और आगे चल। –किन्तु वह न माना। उसने कहा–मैं सोना लेकर ही घर चला जाऊँगा, तुझे आगे जाना है तो जा।

अब वह चौथा युवक एकाकी आगे बढ़ा। रास्ता बड़ा विकट था। काँटों से उसके पैर छलनी हो गए। बर्फीले रास्तों पर चलते-चलते उसका शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया, किन्तु वह आगे बढ़ता गया।

बहुत दूर जाने के बाद उसे एक मनुष्य मिला, जिसका सारा शरीर खून से लथपथ था और उसके मस्तक पर चक्र घूम रहा था। उसके पास जाकर चौथा युवक बोला–तुम कौन हा? तुम कौन हो तुम्हारे मस्तक पर चक्र क्यों घूम रहा है? यहाँ कहीं जलाशय है तो बतलाओ, मुझे प्यास लगी है।

यह कहते ही उसके मस्तक का चक्र उतरकर ब्राह्मण-युवक के मस्तक पर लग गया। युवक के आश्चर्य की सीमा न रही। उसने कष्ट से कराहते हुए पूछा–यह क्या हुआ? यह चक्र तुम्हारे मस्तक से छूट कर मेरे मस्तक पर क्यों लग गया?

अजनबी युवक ने उत्तर दिया–मेरे मस्तक पर भी यह इसी तरह अचानक लग गया था। अब यह तुम्हारे मस्तक से तभी उतरेगा जब कोई व्यक्ति धन के लोभ में घूमता हुआ यहाँ तक पहुँचेगा और तुमसे बात करेगा।

युवक ने पूछा–यह कब होगा?

अजनबी–अब कौन राजा राज्य कर रहा है?

युवक–वीणा वत्सराज!

अजनबी—मुझे काल का ज्ञान नहीं। मैं राजा राम के राज्य में दरिद्र हुआ करता था और सिद्धि का दीपक लेकर यहाँ पहुँचा था। मैंने भी एक और मनुष्य से यही प्रश्न किये थे, जो तुमने मुझसे किये थे।

युवक—किन्तु, इतने समय में तुम्हें भोजन व जल कैसे मिलता है?

अजनबी—यह चक्र धन के अति लोभी पुरुषों के लिए बना है। इस चक्र के मस्तक पर लगने के बाद मनुष्य को भूख-प्यास, नींद, जरा-मरण आदि नहीं सताते, केवल चक्र घूमने का कष्ट ही सताता है। वह व्यक्ति अनन्तकाल तक कष्ट भोगता है।

यह कहकर वह चला गया और वह अति लोभी ब्राह्मण युवक कष्ट भोगने के लिए वहीं रह गया। थोड़ी देर बाद खून से लथपथ हुआ वह इधर-उधर घूमते-घूमते उस मित्र के पास पहुँचा, जिसे स्वर्ण की सिद्धि हुई थी और जो अब स्वर्ण-कण बटोर रहा था। उसे चक्रधर ब्राह्मण युवक ने सब वृत्तांत कह सुनाया। स्वर्ण सिद्धि युवक ने चक्रधर युवक को कहा कि मैंने तुझे आगे जाने से रोका था। तूने तब मेरा कहना नहीं माना। बात यह है कि ब्राह्मण होने के कारण विद्या तो मिल गई, कुलीनता भी मिली; किन्तु भले-बुरे को परखने वाली बुद्धि नहीं मिली। विद्या की अपेक्षा बुद्धि का स्थान ऊँचा होता है। विद्या होते हुए जिसके पास बुद्धि नहीं होती, वे नष्ट हो जाते हैं।

●●●

वैज्ञानिक मूर्ख

एक नगर में चार मित्र रहते थे। उनमें से तीन बड़े वैज्ञानिक थे, किन्तु बुद्धिरहित थे। चौथा वैज्ञानिक नहीं था, किन्तु बुद्धिमान था। चारों ने सोचा कि विद्या का लाभ तभी हो सकता है, यदि वे विदेशों में जाकर धन ग्रहण करें। इसी विचार से वे विदेश यात्रा को चल पड़े।

कुछ दूर जाकर उनमें से सबसे बड़े ने कहा-

हम चारों विद्वानों में एक विद्याशून्य है, वह केवल बुद्धिमान है। धनोपार्जन के लिए और धनिकों की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए विद्या आवश्यक है। विद्या के चमत्कार से ही हम उन्हें प्रभावित कर सकते हैं। अतः हम अपने धन का कोई भी भाग इस विद्याहीन को नहीं देंगे। वह चाहे तो घर चला जाए।

दूसरे ने इस बात का समर्थन किया। किन्तु, तीसरे के कहा-यह बात उचित नहीं है। बचपन से ही हम एक-दूसरे के सुख-दुःख के सहभागी रहे हैं। हम जो भी धन कमायेंगे, उसमें इसका हिस्सा रहेगा। अपने पराये की गणना छोटे दिलवालों का काम है। उदार-चरित्र व्यक्तियों के लिए सारा संसार ही अपना कुटुम्ब होता है। हमें उदारता दिखलानी चाहिये।

उसकी बात मानकर चारों आगे चल पड़े। थोड़ी दूर जाकर जंगल में उन्हें एक शेर का मृत शरीर मिला। उसके अंग-प्रत्यंग बिखरे हुए थे। तीनों विद्याभिमानी युवकों ने कहा-आओ, हम अपनी विज्ञान की शिक्षा की परीक्षा करें। विज्ञान के प्रभाव से हम इस मृत शरीर में जीवन डाल सकते हैं-यह कहकर तीनों उसकी हड्डियाँ बटोरने और बिखरे हुए अंगों को मिलाने में लग गये। एक ने अस्थिसंचय किया; दूसरे ने चर्म,

मांस, रुधिर संयुक्त किया; तीसरे ने प्राणों के संचार की प्रक्रिया शुरू की। इतने में विज्ञान शिक्षा से रहित बुद्धिमान मित्र ने उन्हें सावधान करते हुए कहा–जरा ठहरो। तुम लोग अपनी विद्या के प्रभाव से शेर को जीवित कर रहे हो। वह जीवित होते ही तुम्हें मारकर खा जाएगा।

वैज्ञानिक मित्रों ने उसकी बात को अनसुना कर दिया। तब वह बुद्धिमान बोला–यदि तुम्हें अपनी विद्या का चमत्कार दिखलाना ही है, तो दिखलाओ; लेकिन एक क्षण ठहर जाओ, मैं वृक्ष पर चढ़ जाऊँ। यह कहकर वृक्ष पर चढ़ गया।

इतने में तीनों वैज्ञानिकों ने शेर को जीवित कर दिया। जीवित होते ही शेर ने तीनों पर हमला कर दिया। तीनों मारे गये।

अत: शास्त्रों में कुशल होना ही पर्याप्त नहीं है। लोक-व्यवहार को समझने और लोकाचार के अनुकूल काम करने की बुद्धि भी होनी चाहिये। अन्यथा लोकाचारहीन विद्वान भी (मूर्ख पंडितों की तरह) उपहास के पात्र बनते हैं।

●●●

असंतोष की जन आँधी
प्रकट हुई बनकर गाँधी

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार,
पै दृढ़ श्री हरिचन्द्र को, टरै न सत्य विचार।

सूत्रधार को उपरोक्त घोषणा के साथ ही प्रारम्भ हुए नाटक 'सत्यवादी हरिश्चन्द्र' के अन्तिम दृश्य के समाप्त होते ही कक्ष तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। राजा हरिश्चन्द्र के चरित्र से अत्यधिक प्रभावित बालक मोहनदास गाँधी ने घर लौटते हुए अपने मित्र से कहा–'बन्धु! सत्य पर अटल रहने का कैसा सुन्दर आदर्श प्रस्तुत किया राजा हरिश्चन्द्र ने। अपने स्वप्न के तथ्य को मूर्तिमान सत्य के रूप में परिणत करते हुए अपना राज-पाट तक दान कर दिया, उस नरपुंगव ने। पत्नी, पुत्र तथा स्वयं को बेचकर कितना कष्ट सहा उसने अपने सत्य की रक्षा के लिए। काश! मैं भी इसे अपने जीवन में उतार पाता।'

'मोहनदास! नाटक तो नाटक ही होता है। किसी आदर्श में बँध जाना और फिर उसे अपने व्यावहारिक जीवन में घटाना, क्या इतना ही सहज है?' मित्र ने कहा।

'ऐसा न हो मित्र! निश्चय दृढ़ होने से सब कुछ सम्भव हो सकता है।' मोहन ने कहा।

●●●

'बच्चों ! तुम्हारे अंग्रेजी ज्ञान की जाँच हेतु पाँच शब्द बोल रहा हूँ, लिखकर दिखाओगे?' स्कूल की जाँच करने आये अंग्रेज इन्स्पेक्टर ने कक्षा को सम्बोधित करके कहा।

'आप बोलें, श्रीमान।' सब छात्रों ने एक स्वर में कहा।

एक-एक कर पाँच शब्द बोले इन्स्पेक्टर ने। बच्चे साथ-साथ लिखते जा रहे थे। अचानक अध्यापक की दृष्टि बालक मोहनदास की कापी पर गई और एक शब्द गलत लिखा देखकर अध्यापक ने मोहन को इशारे से समझाया-'पास बैठे छात्र की नकल कर लो।'

किन्तु अचल रहा मोहनदास।

पुनः अपना जूता मोहन के पैर से छुआ कर इशारा किया, किन्तु व्यर्थ।

इन्स्पेक्टर के चले जाने पर अध्यापक ने मोहनदास को डाँटते हुए कहा-'मूर्ख, इतना समझाने के बावजूद भी दूसरे छात्र की नकल करके अपनी शब्द-रचना को सुधार नहीं सका?'

बालक मोहनदास ने उत्तर दिया-'महोदय! अपने अज्ञान पर पर्दा डालकर, दूसरे की नकल करूँ-यह नहीं होगा।'

'मोहनदास! यद्यपि तुम्हारे दुराग्रह से मेरे मन में अत्यन्त क्षोभ था किन्तु तुम्हारी सत्यनिष्ठा और दृढ़ निश्चय से मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ।'

●●●

अभ्यास का फल

कहा जाता है कि एक बार बहुत दिनों तक जल वृष्टि नहीं हुई। अकाल पड़ गया। चारों ओर हाहाकर मचने लगा। पशु-पक्षी भूख प्यास से तड़प-तड़प कर मरने लगे। लोगों को बड़ी चिन्ता हुई। अत: ज्योतिषियों से विचार-विमर्श किया गया तो पता चला अकाल लम्बा जाएगा। लोगों को तरह-तरह की चिन्ताएँ बढ़ने लगीं।

एक किसान को बस एक ही चिन्ता थी। वह सोचता था कि बहुत दिनों तक पानी नहीं बरसेगा तो हम धीरे-धीरे खेती करना अर्थात् कब कौन सा बीज बोना चाहिये? कब खेत की तैयारी करनी चाहिये? हम हल चलाना भूल जायेंगे, बैलों को जुआँना भूल जायेंगे, बैल भी ठीक तरह चलना भूल जायेंगे। फिर जब अभ्यास समाप्त हो जायेगा तो पानी बरसेगा तब भी हम खेती नहीं कर पायेंगे। अत: इन सब बातों से उस किसान ने निष्कर्ष निकाला कि हमको थोड़ा-थोड़ा कार्य करते रहना चाहिये।

अगले दिन उस किसान ने अपना हल बैल संभाला और खेत की ओर चल दिया। रास्ते में जो भी मिलता उस किसान को रोकता कि ऐसी कड़ी, सूखी जमीन में हल कैसे चलेगा? लोग कहते-'यह मूर्ख स्वयं भी मरेगा और बैलों के भी कंधे तोड़ेगा,' परन्तु वह किसान अपनी धुन में मस्त था। खेत पर पहुँचा बैल जुआँए और हल चलाना प्रारम्भ कर दिया। एक दिन दोपहर तक जुताई की लेकिन सूखी कड़ी जमीन में हल बार-बार उछलता था और उस किसान के हाथ भी दर्द करने लगते थे। दूसरे दिन पुन: हल बैल लेकर उसी खेत पर पहुँचा और दोपहर तक जुताई करता रहा। जब धूप तेज होने लगी तो एक साधु उधर से निकला और उसने किसान से पूछा-"भाई! अभी पानी तो बरसने वाला नहीं है। खेत जोतना बेकार है।"

किसान दोपहर तक तेज धूप में थक गया था, झल्लाया और बोला–"कुछ जानते भी हो कि सब बेकार ही बता दिया?"

वह साधु चला गया। किसान ने दोपहर काफी देर तक खेत जोतकर हल छोड़ा।

तीसरे दिन पुनः किसान हल बैल लेकर खेत पर पहुँचा और जुताई प्रारम्भ कर दी। दोपहर देर तक जोतता रहा तो उधर से भगवान शंकर और पार्वती जी घूम कर वापस कैलाश जा रहे थे। उधर से निकले तो देखा कि किसान इतनी कड़ी धूप में सूखी और कड़ी जमीन में जुताई कर रहा है। पार्वतीजी ने कहा–"भगवन् ! यह किसान स्वयं भी व्यर्थ परेशान हो रहा है और बैलों को भी प्यास से मार रहा है। इसको रोकिये न।"

शंकरजी साधु वेश बनाकर किसान के पास पहुँचे और कहा–"भाई! क्यों व्यर्थ में परेशान हो रहे हो और बैलों को भी परेशान कर रहे हो?"

किसान बोला–"महात्मा जी! यदि रोज-रोज हल चलाने का अभ्यास नहीं रहेगा तो हम चलाना भूल जायेंगे, उनके कंधे खराब हो जायेंगे और जब पानी बरसेगा तब भी हम खेती का कार्य ठीक से नहीं कर सकेंगे।"

शंकर जी वापस पार्वती जी के पास आए और सारा हाल कह सुनाया।

शंकर जी थोड़ी देर बैठे। उनको भी स्मरण आया कि हमने अपना डमरू बहुत दिनों से बजाया नहीं है। ऐसा तो नहीं हम डमरू बजाना ही भूल जायें। पार्वती जी को भी बताया तो उन्होंने कहा–"आपने बहुत दिनों से न डमरू ही बजाया है और न अपना नृत्य ही दिखाया है।"

तुरन्त शंकर भगवान ने अपना डमरू बजाना प्रारम्भ किया। थोड़ी देर बजाया और आनन्द विभोर हो गये। खड़े होकर ताण्डव नृत्य भी करने

लगे। बस फिर क्या था संसार का कल्याण हो गया। तुरन्त जोर-जोर से वर्षा हुई। संसार का प्राणीमात्र खुशी से नाच उठा। किसान भीगा हुआ हल-बैल लेकर घर पहुँच गया।

शिक्षायें:

1. कोई भी विषय बिना पुनरावृत्ति के ठीक तरह ग्रहण नहीं कर सकते।
2. प्रातःकाल पढ़ने के निमित्त जगने का अभ्यास चाहिये। एकाएक किसी एक दिन चार बजे स्वयं नहीं जग सकते।
3. प्रत्येक विद्यार्थी को प्रतिदिन कम से कम दो घण्टे पढ़ने का अभ्यास करना चाहिये। अचानक किसी एक दिन दो घण्टे तक मन को एकाग्र नहीं कर सकते।
4. शरीर को स्वस्थ रखने के लिए नित्य शारीरिक श्रम आवश्यक है।
5. परिश्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता।
6. परिश्रम से कभी-कभी अनायास ही दुर्लभ फल की प्राप्ति संभव है।

●●●

अनुशासन से लाभ

देश के मध्य भाग में एक छोटा सा राज्य था। उस राज्य की जनता शान्त, धीर और गम्भीर स्वभाव की थी। उसी राज्य के एक गाँव में एक पण्डित जी रहते थे। गाँव में वर्षा न होने से खेती-बारी नहीं चली तो गाँव छोड़कर परदेस जाने की तैयारी की।

पण्डित जी रास्ते में एक वृक्ष के नीचे रात्रि बिताने की तैयारी करने लगे। उन्होंने अपने पुत्रों को समझाया कि जंगल से लकड़ी आदि इकट्ठा कर लें जिससे भोजन तैयार हो सके।

पिता के आदेश को पालन किया गया। सभी पुत्रों ने भोजन की पूरी तैयारी कर ली पर खाने के लिए चावल नहीं जुटाये जा सके। भूख से पण्डित के सभी पुत्रों का बुरा हाल था। जिस वृक्ष के नीचे डेरा जमाया गया था उस वृक्ष पर बैठा एक पक्षी इन सब शिशुओं की बेचैनी देख रहा था। उसने बड़े पुत्र से कहा—"चावल तो लाए नहीं, खाओगे क्या?"

भूख से बेचैनी बढ़ रही थी। वह चीखा—"अभी तुझे मारकर खाता हूँ।"

पक्षी घबड़ा गया कि भूखा क्या नहीं करता? कहीं मुझे ही न मार डाले। इस भय को उसने पण्डित के बड़े पुत्र से कहा—"तुम मुझे मत मारो। मैं तुम्हें एक स्थान बताता हूँ जहाँ से तुम्हें अपार सम्पत्ति मिल जायेगी।"

और थोड़ी दूरी पर पक्षी के निर्देश पर खुदाई करने पर ढेर सोना-जवाहरात मिले। सभी पुत्र प्रसन्न हो अपने गाँव वापस लौट आए।

पड़ोसी को उसकी सम्पन्नता की बात समझ में न आई तब अगले दिन पूछ ही बैठा—"भई, तुम बच्चों को लेकर परदेश जा रहे थे पर लौट कैसे आए?"

पण्डित जी ने सारी कथा बता दी। अब तो पड़ोसी भी वहीं पेड़ के नीचे डेरा जमाने की तैयारी करने लगा।

पण्डित की तरह लालची पड़ोसी ने बच्चों से भोजन की तैयारी करने, लकड़ी व सामान आदि एकत्रित करने को कहा। परन्तु पड़ोसी के सभी पुत्र उद्दण्ड स्वभाव के थे। किसी ने कोई सामग्री एकत्रित नहीं की। वही पक्षी पेड़ पर बैठा-बैठा सब कुछ देख रहा था और समझ रहा था। तभी पक्षी के टोकने पर पड़ोसी के बालक ने उससे कहा–"ठहर अभी मैं तुझी को मारकर खाता हूँ।"

पक्षी बिना घबड़ाये बोला–"जो पुत्र अपने पिता की आज्ञा नहीं मान सकते, जो बड़ों का कहना नहीं पूरा करते; जो जरूरत पड़ने पर एक-दूसरे की मदद नहीं कर सकते वे बालक मुझे कभी नहीं मार सकते।" और वह पक्षी वहाँ से उड़ गया।

पण्डित के पुत्रों की आज्ञाकारिता और अनुशासनबद्धता देखकर पक्षी को डर था कि वे पुत्र अवश्य मुझे मार सकते हैं, इसीलिये उनको सोने का खजाना बताया। पड़ोसी के लड़कों की उद्दण्डता के कारण वे सब बिना सम्पन्न हुए अपना सा मुँह लेकर लौट गए।

●●●

राणा की रणनीति

दोपहर का समय था। चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। दूर-दूर तक कहीं कोई भी प्राणी नजर नहीं आता था। सुनसान दोपहरी में सौ मुगल घुड़सवार अपने घोड़ों की लगाम थामे चुपचाप तेजी से बढ़े जा रहे थे। सैनिकों की चुप्पी और उनकी सतर्क दृष्टि बता रही थी कि वे किसी भी खतरे का सामना करने के लिए तैयार हैं, किन्तु वे जानबूझकर कोई खतरा मोल नहीं लेना चाहते थे। इसलिए जहाँ तक सम्भव था, बिना बोले रास्ता पार कर रहे थे। केवल धरती पर पड़े सूखे पत्ते खड़-खड़ की आवाज करते बज रहे थे और इस आवाज को कम करना उनके वश की बात नहीं थी।

तभी आगे वाली पालकी में से आवाज आई-"अभी वह दुर्ग कितनी दूर है?"

आवाज इतनी सुरीली थी कि मानो कोयल कुहुक उठी हो। साथ वाली पालकी में बैठी दासी ने यही सवाल सेना की टुकड़ी के नायक से किया। नायक सुगठित शरीर वाला, एक सुन्दर तुर्क युवक था और शाही अदब-कायदों का पूरा पाबन्द था, इसलिए वह अपने स्वामी की पत्नी की पालकी से कुछ हटकर चल रहा था। अन्य सैनिकों को भी पालकी से हटकर चलने का ही आदेश था। इस तरह इस छोटी सी टुकड़ी ने तीनों पालकियों को घेरकर एक व्यूह सा बना लिया था।

दासी का सवाल सुनकर नायक ने समझ लिया कि प्रश्न स्वामिनी ने किया है। उसने बड़ी नम्रता से जवाब दिया कि दुर्ग अभी दूर है। यहाँ आस-पास कोई ऐसी जगह भी नहीं है, जहाँ कुछ देर ठहरा जा सके। खानखाना साहब का हुक्म है कि रास्ते में कहीं रुकना नहीं है। महाराणा प्रताप के सैनिक इन अरावली के जंगलों में सब जगह हैं, कहीं पर और कभी भी उनसे मुठभेड़ हो सकती है। इसलिए जल्दी ही हम दुर्ग पहुँच जाना चाहते हैं।

दासी ने कहा–"मगर बेगम साहिबा को तो जोर से प्यास लगी है। प्यास की वजह से उन्हें चक्कर आ रहे हैं। यही कहीं छाया में रुककर थोड़ी देर आराम कर लो। पास ही में किसी चश्मे की तलाश करो।"

"अच्छा तो फिर सामने वाले पेड़ों के उस झुण्ड तक चलते हैं। वहाँ शायद कोई चश्मा है। बेगम साहिबा से कहो कि कुछ देर और धीरज रखें, पानी का इन्तजाम किया जायेगा", नायक ने कहा।

नायक ने सैनिकों को इशारा किया और सैनिकों का दल पेड़ों के उस झुरमुट की ओर मुड़ गया। पेड़ों के नीचे पहुँचकर सैनिक घोड़ों से उतर पड़े। चार सैनिक पास बहते चश्मे से जल भर लाये। सैनिकों और स्त्रियों ने कुछ खाया-पिया। यह सोचकर कि घोड़े भी कुछ देर आराम कर लें तो आगे का रास्ता जल्दी कट जायेगा, उन्होंने कुछ देर और आराम करने की सोची।

अभी इन लोगों को आराम करते कुछ ही देर हुई थी कि घोड़ों की टापों से जंगल गूँज उठा। घोड़ों के दौड़ने की आवाजें नजदीक आती जा रही थीं। सैनिक जल्दी से अपने-अपने घोड़ों पर सवार हो गये। पालकी उठाने वालों ने पालकियाँ उठा लीं। दल ने चलने की तैयारी कर दी। मगर इतने में देखा कि सामने से घुड़सवार राजपूतों का एक दल तेजी से बढ़ा चला आ रहा है। राजपूतों का सरदार सबसे आगे था। उसकी तनी हुई भौंहे और लाल आँखें बता रही थीं कि शत्रु सैनिकों को देखकर वह उनके रक्त का प्यासा हो उठा है।

राजपूतों को देखकर मुगल सैनिक घबड़ाये, मगर वे भी हथियार खींचकर लड़ने को तैयार हो गए। राजपूत सरदार ने आगे बढ़कर कहा–'अगर जान प्यारी है तो हथियार डाल दो।' जो सैनिक अपनी मर्जी से अपने हथियार हमें सौंप देंगे उन्हें जीवन-दान मिलेगा। वे हथियार सौंपकर जा सकते हैं और जो हथियार उठाने की कोशिश करेगा, उसका सिर काट लिया. जायेगा।

राजपूत की ललकार सुनकर स्त्रियाँ तो एकदम सहम गईं। दासी ने बेगम की पालकी के पर्दे गिरा दिये। मुगल सैनिक पालकियों के और नजदीक आकर घेरा बनाकर खड़े हो गए।

मुगल सेनानायक इस बीच घोड़े पर सवार होकर सामने आ चुका था। उसने जवाब दिया—'हथियार सौंपकर प्राणों की भीख माँगना वीरों का धर्म नहीं है। हम तुर्क नमकहलाली करना जानते हैं। नमक का हक अदा करते हुए मरेंगे।'

यह कहते हुए उसने भाला तानकर राजपूत सरदार पर चलाना चाहा, मगर यह क्या! राजपूत सरदार का घोड़ा तो उसके घोड़े के मस्तक पर अगले पैर जमाये दो टांगों पर खड़ा था और सरदार की खिंची तलवार उसकी गर्दन के सामने थी।

दोनों की तलवारें साथ-साथ हवा में लहराकर टकराईं। तलवारों की झनझनाहट से जंगल गूँज उठा। अचानक तलवार के एक झटके से नायक का एक हाथ कटकर तलवार सहित अलग जा पड़ा। अगले ही क्षण उसका सिर सूखे पत्तों पर लोट रहा था।

मुठभेड़ में अधिकांश मुगल सैनिक मारे गये। बचे हुए सैनिकों को बन्दी बनाकर और पालकियाँ उठवाकर राजपूतों का यह दल जिधर से आया था, उधर ही लौट गया। मृत सैनिक वहीं पड़े रहे।

शाम ढल रही थी। नदी के पास ही पड़ी एक शिला पर एक वीर पुरुष बैठा कुछ सोच रहा था। उसके हाथ में नंगी तलवार अब भी चमक रही थी। उसकी नजर नदी के पास दूर आकाश में माथा उठाये खड़े चित्तौड़गढ़ की ओर रह-रह कर उठ जाती। यह थे, मेवाड़ केसरी, महाराणा प्रताप।

तभी युद्ध वेश में सजे एक राजपूत सरदार ने आकर अभिवादन किया, राणा की दृष्टि सरदार की ओर उठी। धीरे से पूछा—"कहो सरदार कृष्ण सिंह, मेवाड़ का कोई नया समाचार मिला है क्या?"

'महाराणा, एक समाचार अभी-अभी मिला है। कुंवर अमर सिंह ने मुगल सैनिकों की एक टुकड़ी पर विजय पाई है। उन्होंनें कुछ सैनिकों को बन्दी बनाकर यहाँ भेजा है। बन्दियों में मुगल सेनापति खानखाना की बेगम भी हैं।'

सरदार कृष्णसिंह का आखिरी वाक्य सुनते ही महाराणा की भौंहें तन गईं। वह तमककर बोले-'क्या कहा? खानखाना की बेगम? और बन्दी बनाकर यहाँ लाई गई हैं। यह मूर्खता किसने की है?'

कृष्णसिंह बोले-'महाराणा सेवक का अपराध क्षमा हो। इस खानखाना ने हमें कितनी हानि पहुँचाई है। शत्रु की शक्ति को कम करने के लिए उसकी बेगम को बन्दी बनाना रणनीति के विरुद्ध तो नहीं है।'

सुनकर महाराणा और भी क्रोधित हो उठे-'विरुद्ध है! स्त्री को बन्दी बनाना हमारी रणनीति के एकदम विरुद्ध है। जानते हो शेर भूखा होकर भी भय से दुबकी श्रृंगाली का शिकार नहीं करता। एक स्त्री को बन्दी बनाकर अपने को शक्तिशाली समझ लेना कहाँ की वीरता है? हमारा दुर्ग छिन गया है, उसका मतलब यह तो नहीं कि हम स्त्रियों को कैद करते फिरें, उनके साथ दुर्व्यवहार करें। मुझे दुःख है कि यह अनैतिक कार्य मेवाड़ की धरती पर मेवाड़ के ही एक बेटे ने किया है। इस लज्जाजनक कर्म को अमर ने किया है, यह जानकर और भी मेरी छाती फटी जा रही है।'

'तो फिर क्या आज्ञा है?' सरदार कृष्णसिंह ने सहमी-सहमी आवाज में पूछा।

'बेगम को पूरे सम्मान के साथ खानखाना के पास दुर्ग में भेज दो। बेगम को दुर्ग तक पहुँचाने की जिम्मेदारी राजपूतों की है, महाराणा ने कहा।

रात काफी गहरी हो चुकी थी। दुर्ग में खानखाना साहब बेचैनी से चहल-कदमी कर रहे थे। वे परेशान थे कि बेगम को लेकर अभी तक सैनिक लौटे क्यों नहीं।

तभी बेगम की पालकी के साथ राजपूतों की एक टुकड़ी दुर्ग तक आयी और दुर्ग के बाहर ही पालकी को छोड़कर लौट गई।

बेगम को अन्दर लाया गया। बेगम ने सारी बात खानखाना का बतायी। सुनकर वे गम्भीर हो गये। कुछ देर बाद बोले......'महाराणा सचमुच महाराणा हैं। अब तक मैंने उनकी तलवार के जौहर देखे थे, आज उनकी दरियादिली देखी। यही सच्ची वीरता है। जानती हो, अगर तुम महाराणा की कैद में रहती तो मेरा हौसला पस्त हो जाता। फिर महाराणा मुझे आसानी से हरा सकते थे, परन्तु हार-जीत की परवाह किये बिना राणा ने तुम्हें, अपने शत्रु की बेगम को, जो इज्जत बख्शी, वह इतिहास में बेमिसाल रहेगी।

'आप तो महाराणा के भक्त हो गये लगते हैं।' बेगम ने मुस्कुराकर कहा।

'हाँ! राणा ने सचमुच मुझे जीत लिया।'

'तो फिर अब क्या करने का इरादा है, कोरी भक्ति या और भी कुछ?'

'हाँ, बेगम कुछ करना भी चाहता हूँ। मैं सेनापति का पद छोड़ दूँगा। भले ही सब मुझे कायर कहें। मैं बादशाह से कह दूँगा कि महाराणा के खिलाफ युद्ध एकदम गलत है। महाराणा किसी पर हमला करने नहीं आए, उन पर हमला किया गया है। अपनी धरती की इज्जत के लिए मर मिटना एक वीर का फर्ज है। महाराणा उसी फर्ज को पूरा कर रहे हैं, ऐसे नेक दरियादिल इंसान के खिलाफ युद्ध का मैं हरगिज समर्थन नहीं करूँगा।'

बेगम ने खानखाना की ओर देखा और हल्के से मुस्करा दीं।

●●●

किस्सा चतुर बुढ़िया का

प्रजा का हाल जानने के लिए राजा भोज और पण्डित माघ अक्सर वेश बदलकर निकला करते थे। एक बार वे इसी तरह घूम रहे थे कि रास्ता भूल गये। समझ में ही न आया कि कहाँ आ पहुँचे हैं।

पण्डित माघ ने कहा, "राजन, हमें किसी से पूछताछ कर लेनी चाहिये। बिना पूछे तो हम सारी उम्र भटकते रहेंगे।"

राजा भोज ने 'हाँ' में सिर हिलाया। 'उधर खेत में एक बुढ़िया काम करती दीख रही है। आइए, उसी से पूछ लेते हैं।'

दोनों ने अपने घोड़े खेत की दिशा में मोड़े। बुढ़िया ने दूर से ही पहचान लिया कि राजा भोज और पण्डित माघ बढ़े आ रहे हैं। वह सावधान हो गई।

'माँ जी यह रास्ता कहाँ जा रहा है?' पण्डित माघ ने पूछा।

बुढ़िया बोली, 'बेटा! रास्ता तो कहीं नहीं जाता। वह तो जहाँ का तहाँ पड़ा रहता है। हाँ, रास्ते पर से लोग जरूर आते-जाते हैं। तुम दोनों कौन हो और कहाँ जाना चाहते हो?'

वे दोनों अपना असली परिचय देना नहीं चाहते थे। राजा भोज ने उत्तर दिया। 'माँ जी हम मुसाफिर हैं, हमें उज्जैन जाना है।'

बुढ़िया मुस्कुराकर बोली, "इस दुनिया में मुसाफिर दो ही हैं। एक तो सूर्य और दूसरा चन्द्र। सच-सच बताओ, सही परिचय दो तुम दोनों हो कौन?"

इस पर पण्डित माघ बोले, 'हम? यों समझ लीजिए कि हम मेहमान हैं।'

लेकिन बुढ़िया ने कहा 'मेहमान कैसे? इस दुनिया में मेहमान दो ही हैं। एक धन ओर दूसरा यौवन।' मैं तुम्हें मेहमान मानने को तैयार नहीं। अपना सही परिचय छिपाओ मत।'

राजा भोज अकुला गये। उन्होंने सही परिचय बता देने में ही गनीमत समझी और कहा, 'माँ जी मैं राजा हूँ।'

इस पर बुढ़िया ने गंभीरता से पूछा, 'क्या तुम देवराज इन्द्र हो?'

'नहीं।'

'क्या तुम यमराज हो?'

'नहीं।'

'फिर तुम कैसे राजा हो? इस दुनिया में राजा सिर्फ दो हैं—देवराज इन्द्र और यमराज। तुम्हें कौन मानेगा राजा?'

राजा भोज सिर खुजलाने लगे।

पण्डित माघ ने कहा, 'माँ जी, हम अपना सही परिचय छिपा नहीं रहे हैं, हम दोनों ऐसे व्यक्ति हैं जो दूसरों को माफ कर सकते हैं।'

मगर बुढ़िया ने कहा, 'दुनिया में केवल दो जने ऐसे हैं, जो माफ कर सकते हैं। एक धरती, दूसरी नारी। तुम धरती नहीं हो और नारी भी नहीं। बताओ, तुम कौन हो?'

राजा और पण्डित ने हाथ जोड़ दिये, 'माँ, हम दो गरीब आदमी हैं। उज्जैन जाना चाहते हैं। रास्ता बता दीजिए, बड़ी दया होगी।'

'तुम न बकरी हो, न बेटी। इस दुनिया में केवल दो ही गरीब माने गये हैं। एक बकरी, दूसरी बेटी। बोलो, तुम कौन हो?'

राजा भोज और पण्डित माघ की अकुलाहट की सीमा न रही। इतने विद्वान होने के बावजूद वे एक मामूली बुढ़िया को हरा नहीं पा रहे थे।

भटकन और थकान के मारे वे वैसे ही खिन्न थे। ऊपर से बुढ़िया की अड़ंगेबाजी। उन्हें गुस्सा आया और हँसी भी।

उन्होंने दुबारा हाथ जोड़कर कहा, 'अब और न छकाइये। हम हार गये हैं। दया करके रास्ता दिखा दीजिये।'

मगर बुढ़िया अब भी अड़ी हुई थी। बोली, 'कौन कहता है तुम हार गये? आज की दुनिया में हारा हुआ तो केवल दो जनों को माना जाता है। एक जो कर्जदार हो, दूसरा वह, जो लड़की का बाप हो। बोलो, कौन हो तुम दोनों?'

राजा भोज और पण्डित माघ मारे अकुलाहट के पानी पानी हो गये। कहने लगे, 'पता नहीं हम कौन हैं। हमें कुछ नहीं मालुम। जो कुछ भी मालुम है, सिर्फ आपको मालुम है। आप ही बताइये, हम कौन हैं!'

बुढ़िया बोली, 'हाँ, मैं बताती हूँ। आप राजा भोज और पण्डित माघ हैं। आपको उज्जैन जाना है न? ठीक है। चले जाइये इस तरफ।'

और हँसती हुई बुढ़िया ने अपनी अनुभवी उँगली से एक दिशा में इशारा कर दिया।

दोनों ने बड़ी श्रद्धा से बुढ़िया को प्रणाम किया और उसके बताये रास्ते पर चल दिये।

●●●

जिसने बलिदान का दीप जलाया

"प्रिय प्रजाजनों! आज के इस भारी संकट को टालने का एक ही उपाय बचा है, वह है नरमेध। कौन ऐसा वीर है जो स्वेच्छा से देशहित के लिए आत्मबलि देने को तैयार है?"

राजा ने आम सभा बुलाकर घोषणा की।

सभा में सन्नाटा छा गया। सब मौन नतमस्तक खड़े रह गये। कौन अपने प्राण दे? सभी को अपने प्राणों से मोह होता है।

सहसा नीरव शान्ति को चीरती हुई एक कोमल कंठ ध्वनि सुनाई दी, "देश के रक्षा हित मैं सहर्ष बलि को प्रस्तुत हूँ, महाराज! यह प्राण देश के लिए काम आ सकें, भला इससे बड़ा सौभाग्य क्या होगा मेरे लिये?"

एकत्रित जन-समूह की आँखें तुरन्त उस ध्वनि की ओर घूम गईं। महान आश्चर्य! उत्सर्ग का यह महान संकल्प बारह वर्ष के बालक के कंठ से निकला था। राजा का मस्तक गौरव से ऊँचा हो गया। आखिर महान विपत्ति से निकलने का रास्ता निकल आया। बारह वर्षों से देश में अकाल पड़ रहा था। सारी प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही थी। मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी भी अन्न-जल के बिना प्राण त्याग रहे थे। मातायें अपने बच्चों को गोद से उतारकर प्राण बचाने का प्रयास कर रही थीं। कुछ उपाय नहीं सूझ रहा था।

देश के विद्वज्जनों की सभा बुलाई गई। उनमें अधिकतर लोगों की राय थी कि यह दैवी प्रकोप है, जिसका एक ही उपाय है वह है 'नरमेध'। स्वेच्छा से दी हुई बलि से ही देवता प्रसन्न होंगे, यह भी सत्य बात थी।

तभी राजा ने आम सभा बुलाकर उपरोक्त घोषणा की। जब एक बारह वर्ष का बालक आत्मबलि देने के लिए सहर्ष तैयार हो गया तो हजारों आँखों में उसके प्रति असीम श्रद्धा और प्रेम उमड़ पड़ा। लेकिन एक विद्वान ने इस बलि पर आपत्ति की, वे बोले, "इसकी अवस्था कम है, अतः यह बालक बलि के सर्वथा अयोग्य है।"

बालक शतमन्यु की आवाज गूँज उठी, "इसमें अवस्था का क्या प्रश्न है? नरमेध यज्ञ में नरबलि का विधान है, बालक या वृद्ध का निषेध कहीं नहीं है।"

सभी लाजवाब हो गये। मन्त्री ने कहा, "शतमन्यु, इसके लिए तुम्हें अपने अभिभावकों से अनुमति लेनी होगी।"

"राजन्, मेरा पुत्र देश के काम आ सके, इससे बढ़कर गौरव की बात क्या हो सकती है। पिता की आँखें हर्ष से चमक उठीं। वे बोले महाराज, मैं अपने इकलौते पुत्र को नरमेध के लिए अनुमति देते हुए गर्व अनुभव करता हूँ।"

माँ की भी तो अनुमति आवश्यक है," एक ओर से आवाज आई।

"मेरे लिए इससे बड़ा सौभाग्य क्या हो सकता है? मैंने किसी जन्म में बहुत बड़ा पुण्य किया है कि मुझे शतमन्यु जैसे बालक की माँ होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।" माँ ने आगे बढ़कर कहा।

राजा उस बलिदानी परिवार को देखकर आत्मविभोर हो उठे, बोले, "तुम वन्दनीय हो माँ। तुम जैसी माताओं के रहते, इस देश के सौभाग्य पर कभी आँच नहीं आ सकती।"

थोड़ी देर पश्चात् ही शतमन्यु को विविध अलंकारों से सजाकर यज्ञ स्तम्भ के पास बलि के लिये लाया गया। लोगों की आँखों से आनन्द

अश्रु बह रहे थे। प्रजा उसके दर्शनों के लिए टूट पड़ रही थी।

सहसा उसी क्षण देवराज इन्द्र प्रकट हुए और शतमन्यु के सिर पर हाथ फेरते हुए बोले, "वत्स! तेरी भक्ति और प्रेम को देखकर मैं बेहद प्रसन्न हूँ। जिस देश के बालक देश की रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग करने के लिए सदैव तैयार रहते हैं, उस देश का कभी पतन नहीं हो सकता।"

सारी जनसभा तालियों से गूँज उठी, 'शतमन्यु की जय', 'देवराज इन्द्र की जय' से आकाश गूँज उठा, पुष्प वर्षा होने लगी, लोगों को लगने लगा कि भगवान का साक्षात रूप यही है। कुछ लोग बलायें ले रहे थे, कुछ उसके पैरों की धूल माथे पर लगा रहे थे। जहाँ सधवायें उसके पैरों की मिट्टी से अपनी माँग भर रही थीं, वहाँ दुःखी प्राणी कई प्रकार की मनौतियाँ मान रहे थे। बड़े-बूढ़े 'शत वर्ष जीवित रहो' का आशीर्वाद दे रहे थे।

इसके पश्चात् देवराज इन्द्र की कृपा से भरपूर वर्षा हुई और चारों ओर हरियाली लहलहा उठी।

शतमन्यु की उत्सर्ग की यह गाथा आज भी अपने देश की रक्षा के लिए प्राणों की बलि देने की प्रेरणा देती है।

●●●

करत-करत अभ्यास के...

मैं उस दिन बहुत दुःखी और उदास था। मेरे गुरुजन मुझसे अप्रसन्न रहें और मुझे जड़बुद्धि समझें, यह बात मुझे बहुत परेशान करती थी। सहपाठी भी मेरा मजाक उड़ाया करते थे। घर पर मेरे माता-पिता यद्यपि प्यार किया करते थे किन्तु मेरी पढ़ाई से वे प्रसन्न नहीं थे। उस दिन निराश होकर मैं घर से निकल पड़ा था पढ़ाई को सदा के लिये छोड़ देने का संकल्प लेकर। सोचा था कि कुछ काम करूँगा और इस प्रकार अपने माता-पिता को प्रसन्न रखूँगा। किन्तु मुझ जैसे छोटे बालक को काम कहाँ मिलता? थोड़ी देर के बाद ही मैं थक गया और एक कुएँ के पास जाकर बैठ गया। थका था ही, शीघ्र ही झपकी लेने लगा।

कुछ समय के बाद जब मेरी आँख खुली। मैंने एक महिला को कुएँ से पानी खींचते हुए देखा। मैंने रस्सी को देखा और उस पत्थर को देखता रहा, देखता रहा। महिला के चले जाने के पश्चात् मैं उस पत्थर के निकट आया। पत्थर को छूकर देखा। मैं सोचने लगा इतना कठोर पत्थर किस प्रकार इतना घिस गया है? क्या रस्सी में इतनी शक्ति है कि वह पत्थर को भी घिस सकती है? फिर मुझे रस्सी का पत्थर से रगड़ खाकर ऊपर आना नीचे जाना याद आया। 'रस्सी का लगातार ऊपर आना, नीचे जाना और ऊपर आना और पत्थर का घिस जाना' लगातार ये विचार मेरे मन में आने लगे। यकायक मेरा मन प्रसन्नता से भर गया। मुझे कोई निधि मिल गई है। मेरे ज्ञान चक्षु खुल गये। ज्ञान, मंदिर से नहीं मिला था। वह प्रकाश मुझे इस जड़ पत्थर ने दिया है। जब इतनी कोमल रस्सी इतने कठोर पत्थर को भी ऐसा बना सकती है तो मैं तो मनुष्य हूँ—एक विचारशील मनुष्य। एक ही शब्द बार-बार मेरी चेतना को झंकृत करते लगा। अभ्यास......... अभ्यास........ अभ्यास..........।

उस दिन के बाद न मालुम कहाँ से इतनी शक्ति आ गई कि मैं जड़ बुद्धि समझा जाने वाला बालक गुरुजनों का स्नेह-पात्र बन गया। बाद में मनुष्य मुझे संस्कृत का महान पण्डित और महावैयाकरण समझने लगे। मूर्ख बालक बोपदेव को वे आचार्य बोपदेव के नाम से सम्बोधित करने लगे। किन्तु मैं सदैव यही सोचता रहा कि मुझे और आगे जाना है....मुझे और आगे जाना है.....और इसका एक ही मार्ग है अभ्यास........ अभ्यास........अभ्यास.........।

●●●

पृथ्वी तेरे हाथ में तलवार है?

एक दिन औरंगजेब अपने दरबारियों के साथ बैठा हुआ था। समीप ही एक पिंजड़ा रखा हुआ था। इस पिंजड़े में एक शेर था। शेर के सुगठित शरीर और निर्भय मुखाकृति को देखकर बादशाह अत्यन्त प्रसन्न हो रहा था। वह अपने दरबारियों से कह रहा था, "मैंने अपनी जिन्दगी में बहुत से शेर देखे हैं, किन्तु ऐसा शेर आज तक नहीं देखा।"

"ठीक फरमा रहे हैं,जहाँपनाह," एक दरबारी बोला। इसी प्रकार सभी दरबारी उसकी हाँ में हाँ मिला रहे थे, किन्तु औरंगजेब की दृष्टि जोधपुर के राजा जसवन्त सिंह की ओर थी। बादशाह से न रहा गया, बोला, "आपको मेरा शेर पसन्द नहीं है, क्या?"

"पसन्द करने जैसी कोई बात भी तो नहीं है, इसमें।" राजा जसवन्त सिंह ने उत्तर दिया।

सभी दरबारी स्तब्ध रह गये। बादशाह का मुखमण्डल क्रोध से लाल हो गया—"फिर आपको कौन सा शेर पसन्द है?" बादशाह ने भृकुटी तान कर कहा।

"मुझे अपना शेर पसन्द है, जहाँपनाह।" जसवन्त सिंह ने शान्ति से उत्तर दिया।

"तो लाओ अपने शेर को। यदि तुम्हारा शेर मेरे शेर के सामने न ठहर सका तो तुम्हारा सिर धड़ से अलग हो जायेगा।" बादशाह ने क्रोध से गरजते हुए कहा।

जसवन्तसिंह की निर्भयता और स्वाभिमान सबकी आँखों में खटकता था। सभी दरबारी बहुत प्रसन्न हुए। इतना अच्छा अवसर कब हाथ लगता। अत्यंत उत्साह से एक साथ कहने लगे, "महाराज जसवन्त सिंह! यदि आपको अपने शेर की ताकत पर इतना भरोसा है तो क्यों नहीं ले आते अपने शेर को।"

महाराज जसवन्त सिंह स्वाभिमान के साथ बोले, "मेरा शेर तो यहीं है।"

"कहाँ?" बादशाह क्रोध से एकदम उबल पड़ा।

जसवन्त सिंह ने अपने 12 वर्षीय पुत्र पृथ्वीसिंह की ओर संकेत करके कहा–"यह है मेरा शेर।"

दोनों शेरों की कुश्ती का आयोजन हुआ। मैदान में उतरने से पहले पृथ्वी सिंह ने अपने पिता के चरणों को स्पर्श किया। पिता ने उसका माथा चूमकर आशीर्वाद दिया। कलेजा दहलाने वाला यह दृश्य चाटुकार दरबारियों को और सत्ता मदान्ध औरंगजेब को अत्यंत प्रसन्न कर रहा था।

पृथ्वी सिंह ने हाथ में, तलवार लेकर जैसे ही पिंजड़े में प्रवेश किया, महाराज जसवन्त सिंह बोले, "पृथ्वी तेरे हाथ में तलवार है और यह शेर निःशस्त्र है। राजपूत धर्मयुद्ध लड़ते हैं। बेटे, फेंक दे इस तलवार को।"

पृथ्वी सिंह ने तलवार को फेंक दिया और अपनी राजपूती आन-बान को याद करता पिंजड़े की ओर बढ़ने लगा।

शेर ने शेर को देखा। जंगल के शेर ने आज पहली बार अपने को पराजित अनुभव किया। बाल शेर की आँखों में वीरता और साहस के अँगारे जल रहे थे। सभी दर्शक दाँतों तले अँगुली दबा रहे थे।

युद्ध प्रारम्भ हुआ। पृथ्वी ने विद्युत गति से पैंतरा बदला और शेर के जबड़ों को चीर डाला। पृथ्वी सिंह की जय-जयकार होने लगी। औरंगजेब के मुखमण्डल पर भी हर्ष झलक आया। निर्बल आत्मा में जुगनू की चमक की तरह।

जसवन्त सिंह ने पुत्र को गले लगा लिया। उनका फौलादी निश्चय विजय के इन क्षणों में ममता के आँसू बनकर निकलने लगा। औरंगजेब ने इस स्वर्गीय दृश्य को देखा। उसे स्वयं पर ग्लानि हुई व धीरे-धीरे पैर रखता हुआ अपने महल में चला गया।

●●●

बोलते पत्थर

आज भी विश्व को चमत्कारित करने वाली पत्थर की मूर्तियाँ जिस मन्दिर में अपनी टूटी-फूटी अवस्था में, मीठी-मीठी अस्पष्ट बोली में जनमानस को आकर्षित कर रही हैं, वह कोणार्क सूर्य मन्दिर जगन्नाथधाम पुरी के निकटवर्ती समुद्र के किनारे भग्न अवस्था में खड़ा है। उत्कल मुनि के सुपुत्र किसोलियो द्वारा निर्मित कोणार्क सूर्य मन्दिर आज भग्न अवस्था में है फिर भी पत्थरों में निर्मित जितनी मूर्त्तियाँ वहाँ हैं उनको देखने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई नाच रहा है, कोई गा रहा है, कोई हँस रहा है, घोड़े और हाथी दौड़ रहे हैं, सूर्य देवता के रथ का पहिया घूम रहा है। ये सारे निर्माण का महत्त्व तथा मन्दिर की पूर्णता प्राप्ति का गौरव जिसके द्वारा संभव हुआ वह भी एक 12 साल का शिशु था। उसका नाम था धर्मपद।

इतिहास साक्षी है कि कोणार्क सूर्य मन्दिर उत्कल के बारह सौ कारीगरों के द्वारा बारह साल में समाप्त किया गया था। मन्दिर निर्माण के बाद मन्दिर का कलश न बैठाया जा सका, न उसकी समाप्ति हो सकी, इसके लिए सारे कारीगर असफल हुए। जितनी बार कारीगरों ने मन्दिर के कलस को बैठाया उतनी ही बार न जाने वह किस कारण गिर पड़ा। असफलता की खबर राजा के कानों में गई। बारह साल की चेष्टा और इन्तजार ने राजा को अधीर कर दिया। एक दिन राजा का कठोर आदेश घोषित कर दिया गया कि आगामी सूर्योदय के पहले मन्दिर का कलस बैठाया जाये और मन्दिर की समाप्ति की जाये नहीं तो कार्यरत बारह सौ कारीगरों का सिर काट लिया जायेगा।

वहाँ कार्यरत बारह सौ कारीगरों का मुख्य विष्णु महाराणा था। बारह वर्ष पहले जब वह सूर्य मन्दिर निर्माण के लिए कोणार्क आया तब घर में उसकी पत्नी गर्भवती थी और उसके आने के कुछ दिनों बाद एक पुत्र को जन्म दिया था। उस पुत्र का नाम धर्मपद रखा गया था। धर्मपद बड़ा हो रहा था। अपनी माँ के प्यार और सहपाठियों के बीच वह बड़ा हो रहा था, ज्ञान प्राप्त कर रहा था। धर्मपद को अपने पिता के बारे में कुछ मालूम नहीं था। एक दिन एक सहपाठी के साथ उसका झगड़ा हो गया। सहपाठी ने धर्मपद

को 'अडम वपुवा' (जिस पुत्र को अपने पिता के बारे में कुछ नहीं मालूम है) कह कर गाली दी। धर्मपद ने बच्चा होने के कारण उनके साथ खलने से इंकार कर दिया। धर्मपद रोता हुआ घर आया और अपने पिता के बारे में माता से पूछा। उनके पिता विष्णु महाराणा किसी महान कार्य के लिए गये हैं उसको बताया गया। यह सब सुनने के बाद धर्मपद अपने पिता के पास जाने के लिए जिद करने लगा। माता ने उसको बहुत समझाया लेकिन वह मानने के लिए तैयार नहीं था। माता को विवश होकर उसको पिता के पास जाने की अनुमति देनी पड़ी। धर्मपद ने कभी अपने पिता को देखा नहीं था इसलिए घर से पिता से भेंट के लिए निकलते समय धर्मपद ने बगीचे की वरकोली और घर के कुत्ते वालिया को साथ ले लिया।

दुःख की बात तो यह हुई कि जिस दिन धर्मपद कोणार्क पहुँचा और अपने पिता विष्णु महाराणा के साथ उसकी भेंट हुई उसी दिन राजा का निष्ठुर आदेश जारी हुआ था। और सारे कारीगरों में हताशा का वातावरण फैल रहा था। सब दुःखी थे, निराश थे, उदासीन थे। आगामी प्रभात में अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। फिर भी विष्णु महाराणा ने अपने पुत्र को आलिंगनबद्ध किया। मृत्यु से पहले पुत्र से भेंट हो गई उसको उन्होंने भगवान का आशीर्वाद समझा। भेंट के बाद धर्मपद ने उस स्थान को जहाँ अपने वंशधर ने यौवन के बारह साल बिताये थे और उस मंदिर को जो कि अपने पिता और उसके साथियों के परिश्रम से गढ़ा हुआ है, देखने की इच्छा प्रकट की। वहाँ के सारे कारीगरों से मिलने के पश्चात् सबके मन में फैली निराशा का कारण उसे मालूम पड़ा।

बारह साल का छोटा शिशु धर्मपद अपने कारीगर भाइयों के दुःख से विचलित हो उठा। धर्मपद ने अपने पिता और भाइयों का दुःख दूर करने के लिए मन में निश्चय किया। उस विशाल मन्दिर के पास वह जा पहुँचा। वहाँ पहुँच कर धर्मपद ने पत्थर में खुदी हुई मूर्तियों को देखा, शिल्पियों के कला चातुर्य को देखा। मन्दिर की गठन प्रणाली और रचना शैली को देखा तो देखते-देखते मन्दिर में प्रविष्ट होने वाले देवता सूर्य नारायण को नमस्कार करके मन्दिर के शिखर पर जा पहुँचा। नीचे भयभीत कारीगर समाज, ऊपर मन्दिर का कलस बैठाने में व्यस्त शिशु धर्मपद को सूर्य देवता आशीर्वाद दे

रहे थे। दिन बीता, रात्रि आ गई। कारीगरों के मन में न शान्ति है, न आँखों में नींद है, रात्रि के तीसरे पहर में सारे कारीगरों को एक अद्‌भुत खबर मिली। सब मंदिर की ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर सभी बारह सौ कारीगर आश्चर्यचकित हो गये। मुख्य कारीगर विष्णु महाराणा के बारह साल के बेटे, जो आज ही कोणार्क आया है, मन्दिर के कलस को बैठा दिया है और अधूरा कार्य पूरा कर दिया है। सबने आनन्द प्रकट किया। सभी धर्मपद की श्रेष्ठ कारीगर के नाते प्रशंसा करने लगे। पिता ने गर्व और अभिमान में पुत्र को गले लगाया। अल्प समय बाद फिर सबके मन में एक दूसरा भय जाग उठा। आगामी प्रभात जब राजा को यह खबर मिलेगी कि एक बारह साल के शिशु ने मन्दिर कार्य समापन किया है, जिसको करने के लिए सारे कारीगर असमर्थ हुए थे तो सारे कारीगरों को मृत्यु का दण्ड मिलेगा।

अपने जाति और भाइयों के बीच होने वाली चर्चा धर्मपद को सुनने को मिली। जिन भाइयों का दुःख दूर करने के लिए धर्मपद ने यह असाधारण कार्य किया था उन भाइयों के दुःख और मृत्यु का कारण अब वही हो गया। दृढ़ प्रतिज्ञ धर्मपद इससे विचलित नहीं हुआ। धर्मपद ने सारे कारीगर भाइयों को बुलाया और उन सबके सामने अपने विचार प्रकट किये। पिता विष्णु महाराणा का पितृ हृदय काँप उठा। उन्होंने पुत्र को ऐसा करने से रोका लेकिन अपनी ख्याति के लिए और अपने कारीगर समाज के लिए, उत्कल की महान कला संस्कृति की रक्षा के लिए अपना जीवन बलिदान करने का निश्चय धर्मपद ने कर लिया था। उपस्थित कारीगर मौन थे। विष्णु राणा का ही पितृ हृदय फूट-फूटकर रो रहा था। पिता से विदा लेकर हँसते हुए देखते-देखते धर्मपद मन्दिर की चोटी पर पहुँचा। वहाँ से सबको प्रणाम कर सूर्योदय से पहले ही धर्मपद मन्दिर को छूने वाले अशान्त सागर में कूद पड़ा और चिर शान्ति को प्राप्त हुआ। कितनी रातें बीत चुकी हैं। आज भी रात्रि के आखिरी पहर में कोणार्क के पास खड़े होने वाले यात्री को समुद्र की गर्जना, आकाश की तारावलियाँ और मन्दिर में खुदी हुई मूर्त्तियाँ धर्मपद के बलिदान की अमर कहानी बता रही हैं।

●●●

कर्जन वायली का काल–धींगरा मदनलाल

'तुमने इस बालक को कंकड़ क्यों मारा?' –हेडमास्टर ने मदन से पूछा।

'तो मैं क्या करूँ? मैं तो कंकड़ से निशाना लगा रहा था और इसी बीच यह बालक आ गया और उसको कंकड़ जा लगी।' धींगरा ने कहा।

'कंकड़ तुम फेंक रहे थे या मैं?'–गुस्से में आकर हेडमास्टर बोला।

'मैं तो निशाना लगा रहा था, मेरा ध्यान सिर्फ निशाने पर होने के कारण यह बीच में आया और इसे लग गई, गुरूजी! अब आप ही बताइये इसमें मेरा क्या दोष। गलती तो इसी ने की जो मेरे बीच में आया जिससे मेरा निशाना गलत हो गया और कंकड़ इसको लग गई।'

'एक तो चोरी, ऊपर से सीना जोरी! मैं एक भी बात नहीं मानने वाला। सजा के बतौर तुम्हें पाँच बेंत लगाये जायेंगे। क्या समझे।'

'सब कुछ समझ गया। बेंत लगाइये।'

इतना कह उसने अपनी कमीज उतार दी। हेडमास्टर दंग रह गया। उसे क्या पता था कि एक दिन यही बालक निशाना कंकड़ से नहीं, गोली से लगाएगा, वह भी एक अंग्रेज को।

प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु मदनलाल इंग्लैण्ड चले गये। एक बार सावरकर जी ने मदनलाल धींगरा की परीक्षा लेनी चाही।

उन्होंने उससे पूछा–'मदन, तुम क्या कर सकते हो देश के लिए?'

'वक्त आने दीजिये तब बताऊँगा कि मैं क्या कर सकता हूँ। अभी बताने से क्या लाभ?'

'मैं इससे डरने वाला नहीं हूँ, जब इस मार्ग पर पैर बढ़ा दिया है तो पीछे हटाने का कोई कारण नहीं।'

'दे सकते हो इसका प्रमाण!'

'कैसा प्रमाण चाहते हैं आप।'–मदनलाल ने पूछा।

दूसरे ही क्षण सावरकर जी ने एक तीखा हथियार उसके आर-पार घुसा दिया। खून की धारा बह चली, पर क्या मजाल कि उफ् भी मुँह से निकले। चेहरे पर अद्‌भुत मुस्कान थी। सावरकर स्तब्ध रह गये।

अचानक एक दिन मदनलाल सावरकर जी के पास पहुँचा और कहा–'सावरकर जी बताइये क्या अपने आपको राष्ट्रदेव की बलिवेदी पर अपने आपको अर्पण करने का समय आ गया है? मैं अपना सर्वस्व अर्पण करने आया हूँ।'

'मदन! जब बलिदान को प्रस्तुत व्यक्ति की आत्मा अनुभव करती है तो समझो, समय आ गया है।'–सावरकर जी ने बताया।

'सावरकर जी बोलिये! बोलिये! मैं तैयार हूँ।

सावरकर जी ने सारी पृष्ठभूमि उसे समझा दी।

योजना को कार्य रूप में परिणित करने का समय आया–1 जुलाई 1909 मदनलाल सायं 8 बजे की, कोट की जेबों में 1 रिवाल्वर, 2 पिस्तौलें, 3 चाकू लेकर लन्दन के जहाँगीर हाल में नेशनल इन्डियन ऐसोसियेशन की सभा में पहुँचा। 10 बजे कर्जन वायली अपनी पत्नी के साथ पहुँचा। एक घण्टे आमोद-प्रमोद चला। फिर कर्जन वायली सभा से मिलने लगा। धींगरा भी मिलने का उपक्रम करने लगा।

अचानक मौका देखकर उसने जेब से हाथ बाहर निकाला और सर कर्जन वायली के सीने में रिवाल्वर लगाकर पूरा खाली कर दिया। धाँय! धाँय! धाँय!! की आवाज हुई और वायली वहीं ढेर हो गया। इतने में एक पारसी कावस लाल काका नाम का व्यक्ति कर्जन की सहायता को आगे बढ़ा। धींगरा ने एक गोली में उसका भी काम तमाम कर दिया। इतने में आवाज हुई 'पकड़ो उसे मारो।' एक ने हथियार छीनने की चेष्टा की तो धींगरा ने हाथ की एक ही चोट में उसे धरती पर सुला दिया। लेकिन मदन शांत खड़ा था। अपनी पिस्तौल फेंकते हुए उसने कहा, 'जल्दबाजी क्या है? एक मिनट ठहरिए, मैं अपना चश्मा ठीक कर लूँ।' इतने में पुलिस ने गिरफ्तार करने की चेष्टा की। धींगरा ने हाथ फटकारते हुए कहा, 'कोट की क्रीज खत्म हो जायेगी मैं ऐसे ही चलने को तैयार हूँ।' डाक्टर ने नब्ज देखी वह बिल्कुल सामान्य थी। रात पुलिस थाने में भी मस्ती से सोये।

दूसरे दिन न्यायालय में ज्यों ही मदनलाल को हत्यारा कहा गया तो धींगरा चिल्ला उठा, 'मैं हत्यारा नहीं, देशभक्त हूँ। मैंने यह कार्य अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र कराने हेतु किया है।'

न्यायालय में वक्तव्य देते हुए धींगरा ने कहा–'जिस प्रकार जर्मनी इंग्लैण्ड पर शासन नहीं कर सकता उसी प्रकार इंग्लैण्ड को भारत पर शासन करने का कोई अधिकार नहीं है। भारत माँ को गुलाम रखने वालों की हत्या न्यायोचित है।'

आखिर जज ने लिख दिया–'मुत्युदण्ड।'

जब सावरकर जी जेल में उससे मिलने के लिए आये और उन्होंने पूछा–'क्यों! तुम्हारे पास किसी चीज की कमी तो नहीं है?'

धींगरा हँसकर बोला–'अंग्रेज सरकार की कृपा से सभी व्यवस्थाएँ ठीक हैं परन्तु टाई की गठान कैसी बँधी है यह देखने के लिए मेरे पास आयना (काँच) नहीं है।' कैसा अद्‌भुत युवक था वह।

मदनलाल से उसकी अन्तिम इच्छा पूछी गई तो उन्होंने एक ही बात कही कि मृत्यु के बाद मेरी जेब में मिला बयान अवश्य प्रकाशित करा दें।' 17 अगस्त 1909 को यह अमर शहीद पेंटानविले जेल में सूट पहने फाँसी के फंदे पर खुशी-खुशी झूल गया। लेकिन उसकी मृत्यु के एक दिन पूर्व लन्दन के मशहूर अखबार 'डेली न्यूज' का जो ओजस्वी वक्तव्य प्रकाशित हुआ वह आज भी समस्त भारतीयों को प्रेरणा दे रहा है। उस वक्तव्य में मदनलाल फरमाते हैं–

'उस दिन मैं अपने देश के देशभक्त युवकों को जिन्हें फाँसी और अन्य अमानुषिक सजाएं हो रही हैं उसका अति अल्प बदला लेने के लिए अंग्रेजी खून बहाने का प्रयत्न किया था।'

'इस कृत्य के लिए मैंने न किसी से पूछा था, न किसी से राय ली है। इनमें केवल कर्त्तव्य बुद्धि से ही सहायता ली और केवल अंतरात्मा की अनुमति ली।'

'तीखी संगीनों के जोर पर गुलामी में जकड़ा देश सदैव युद्धरत होता

है। जब खुला संघर्ष सम्भव नहीं तब मैंने गुरिल्ला ढंग अपनाया। जब हम बन्दूकें नहीं रख सकते तो मैंने पिस्तौल को अपनाया और हमला किया।'

'हिन्दू होने के नाते मैं महसूस करता हूँ कि मेरे राष्ट्र की गुलामी मेरे राष्ट्र का अपमान यह देवता का प्रत्यक्ष अपमान ही है ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। क्योंकि राष्ट्र की पूजा यही राम की पूजा है और राष्ट्र की सेवा ही कृष्ण की भक्ति है। मेरे जैसे धन, शरीर, बुद्धि सब दृष्टि से दीन-हीन लड़के के पास स्वयं के रक्त की श्रद्धांजलि के अतिरिक्त माता को अर्पण करने के लिए और दूसरा क्या है? मुझे इस पर गर्व है।'

'भारत के लोगों के लिए सिर्फ एक व सिर्फ एक पाठ सीखने की आवश्यकता है वह है–कैसे मरे, देश के लिए कैसे मरे। इस पाठ को सिखाने का एकमात्र रास्ता है अपने आप का बलिदान।'

'यह संघर्ष भारत और इंग्लैण्ड के बीच तब तक चलता रहेगा जब तक अंग्रेज एवं हिन्दुओं के बीच यह अप्राकृतिक अमानुषिक संबंध कायम रहेगा।'

'आत्मा अजर है, अमर है। इस कारण यदि प्रत्येक भारतवासी अपनी मौत के पहले दो-दो अंग्रेजों को मारेगा तो भारत माँ की आजादी एक दिन का खेल है।'

'जब तक अपना देश स्वतंत्र नहीं हो जाता तब तक भगवान श्रीकृष्ण का यह संदेश हमारी प्रेरणा रहेगा। –'

'......... यदि मारे गये तो स्वर्ग को प्राप्त करोगे, यदि सफल हो गए तो पृथ्वी का सुख भोगोगे।'

'ईश्वर से एक ही प्रार्थना है कि मानवता की सेवा और ईश्वर की सेवा और अर्चना के लिए'मेरी भारत माँ जब तक स्वतंत्र नहीं हो जाती तब तक मैं बार-बार इसी भारत में जन्म पाऊँ और मुझे ऐसे ही पवित्र कार्य में इसी तरह की मृत्यु प्राप्त हो।'

'वन्देमातरम्'................'वन्देमातरम्'

●●●

हिन्दी, खादी, गौ के काज–
अर्पित जमनालाल बजाज

लुकसर स्टेशन। ई० सन 1907।

'आज हम लोग इस डिब्बे में किसी भी हिन्दुस्तानी को बैठने नहीं देंगे।' तीन गोरे फौजी यात्रियों ने आपस में विचारा और राइफल सामने रख डटकर बैठ गये।

इतने में एक हिन्दुस्तानी वकील आया और डिब्बे में जगह देखकर चढ़ने लगा।

'ऐ! टुम यहाँ से चले जाओ वरना मार-मारकर भगा देंगे।' एक गोरे ने धमकाते हुए कहा।

वह वकील बेचारा डर गया और डिब्बे से उतरकर दरवाजे के सामने खड़ा हो कुछ सोचने लगा। थोड़ी देर बाद जमनालाल जी आए और डिब्बे को खाली देखकर उसके अन्दर जा बैठे।

'क्यों बे! टुम यहाँ कैसे आ गया? उतर जाओ वरना ठीक नहीं रहेगा।' गोरों ने जमनालाल जी को भी घुड़का।

'आखिर क्यों?'

'क्यों क्या होता है? यह सैकण्ड क्लास का डिब्बा हम लोगों के लिए है।'

उनके बातचीत करने के ढंग को देखकर जमनालाल जी को यह समझते देर नहीं लगी कि ये द्वितीय श्रेणी के यात्री नहीं हो सकते। जमनालाल जी नीचे उतर आए। तभी उस वकील ने कहा–'चलिए, साहब कहीं और जगह देखकर बैठ जाएँ। ये लोग बड़े बदमाश होते हैं।'

पर जमनालाल जी ऐसे हार मानने वाले नहीं थे। वे सीधे स्टेशन मास्टर के पास गये और उन तीनों गोरे फौजियों की शिकायत की। स्टेशन मास्टर भी अंग्रेज था, पर था वह जरा भला आदमी। वह जमनालाल जी के साथ आया।

'कृपया अपना टिकट दिखाएँ।' स्टेशन मास्टर ने आते ही उन गोरों से कहा।

टिकट थर्ड क्लास के ही थे पर वे तीनों सैकण्ड क्लास में ही बैठे थे। स्टेशन मास्टर ने उन्हें निकाल बाहर किया तो वे सर्वेन्ट क्लास में जा बैठे। जाते-जाते वे धमकाते भी गये-'गाड़ी चलने दो तो हम तुम लोगों की खबर लेंगे।'

उनकी धमकी सुनकर जमनालाल जी ने अपने नौकर से उनके सामने ही कहा-'जरा मोटा डंडा लाकर मेरे पास रखते जाओ।'

नौकर ने तुरंत एक मोटा डंडा लाकर गोरों के सामने ही जमनालाल जी के पास रख दिया। अब तो गोरों की भी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई।

गाड़ी चल पड़ी। जमनालाल जी तो आराम से सो गये परन्तु उस वकील का डर के मारे बुरा हाल था। जरा भी खटका होता तो वह भयभीत होकर दरवाजे की ओर झांकने लगता, रात भर नींद न आई। पर गोरे सारी रात में फिर कहीं दिखाई नहीं पड़े।

✠ ✠ ✠

'खेतान जी! आपके लड़के के विवाह में मैंने आने का वायदा किया है अतः समय पर सूचना अवश्य भिजवा दें।' जमनालाल जी ने कहा।

इधर खेतान जी के लड़के की शादी हो चुकी थी, वे जमनालाल जी को निमंत्रण देना भूल गये। उन्होंने कहा-'माफ कीजिये, जमनालाल जी! बच्चे की शादी तो हो गई पर मैं आपको निमन्त्रण देना भूल गया था।'

'कुछ दण्ड दीजिए तो क्षमा करूँ।'

'क्या?'

'अरे भाई! मारवाड़ी विद्यार्थी गृह के लिए दस हजार रुपये चन्दा चाहिये।'

'ऐसे तो नहीं दूँगा। दान लीजिये तो दूँ।'

'अच्छे काम के लिए दान लेना मैं पाप नहीं धर्म एवं कर्त्तव्य समझता हूँ।' जमनालाल जी ने उत्तर दिया।

'अच्छा, तो दान लीजिये, मैं अभी दे देता हूँ।'

जमनालाल जी ने पास ही बैठे पं० मटरूमल जी निर्मल से संकल्प पढ़ने को कहा और उन्होंने यह संकल्प पढ़ दिया कि 'जमनालाल जी द्वारा ये रुपये मारवाड़ी विद्यार्थी गृह के काम में लगाये जायें।'

जमनालाल जी ने दान ले लिया। इस पर समाज में बड़ी चर्चा हुई। यहाँ डाँटा—'तुमको दान नहीं लेना चाहिये था। दान तो ब्राह्मण लेते हैं। तुमने यह पाप किया है, अतः काशी जाकर प्रायश्चित करो।'

'मुझे तो इसमें कोई हानि दिखाई नहीं पड़ती। उनके रुपये उन्हीं के नाम से एक अच्छे काम में लगें—यह मेरी इच्छा थी। मैं तो एक निमित्त मात्र था।' जमनालाल जी ने बताया।

दबाव के बावजूद भी आपने कोई प्रायश्चित नहीं किया और उन दस हजार रुपयों को खेतान जी के नाम से संस्था में जमा करा दिया।

ये ही आगे चलकर समाजसेवी जमनालाल बजाज के नाम से सुप्रसिद्ध हुए एवं अपनी सारी कमाई गाँधी जी की योजनाओं की पूर्ति में विनियोग कर दी। हिन्दी, खादी एवं गोरक्षा के लिए इनका योगदान अविस्मरणीय रहेगा।

●●●

भारतीय असंतोष के जनक–लोकमान्य तिलक

'पिताजी ! यह पुस्तक मुझे दे दीजिये।' भाव–विभोर बाल ने अनुनय भरे शब्दों में उस समय कहा जब गंगाधर राव ने मेघदूत का पाठ रोका ही था।

'क्या करेगा इससे, बाल! यह तुम्हारे काम की नहीं है।'

'मैं पढ़ूँगा, मैं गा–गाकर पढ़ूँगा। मुझे अच्छा लगता है।'

गंगाधर राव हँस पड़े –'अरे! ये मेघदूत है। इतनी कठिन है........।'

'दिला दो न माँ!' बाल ने मचलते हुए कहा।

'अभी तू अपनी पढ़ाई–लिखाई देख, बेटा! बड़ा होने पर मेघदूत पढ़ना।' माँ ने समझाते हुए कहा।

'मुझे तो अभी चाहिये। अपनी पढ़ाई तो रोज करता ही रहता हूँ।' बाल उदास हो गया।

'अपनी सारी पढ़ाई याद है न तुम्हें!' पिता ने पूछा।

'हाँ, याद है।'

'मैं प्रश्न पूछूँ, बताओगे?'

'हाँ, पूछ लीजिये। चाहे जहाँ से पूछ लीजिये।' बाल ने गर्व से कहा।

'मेघदूत दे दीजिए न, पिताजी। मैं उसे भी याद करके सुना दूँगा। जब भी कहें सुना दूँगा। बाल ने धीरे से कहा।

'अच्छा बाल एक शर्त है। मैं तुम्हें गणित का एक प्रश्न देता हूँ। अगर तुम उसे ठीक–ठीक हल कर दोगे तो मैं मेघदूत दे दूँगा।'

'ठीक है, पिताजी।'

'अभी, इसी क्षण।'

'ठीक है। प्रश्न दीजिये।'

'देखो जितना तुम जानते हो उससे बाहर का नहीं है। हल कर सकोगे?' पिता ने एक जटिल प्रश्न बाल के हाथ में देते हुए कहा।

बाल प्रश्न को हल करने में लीन हो गया और थोड़ी देर में उसने प्रश्न हल करके पिता के सामने रख दिया।

गंगाधर राव तो देखकर दंग रह गए। इतने जटिल प्रश्न का हल एकदम ठीक था। वे मेघदूत बाल को देते हुए बोले–'शावाश, बेटे। लो यह मेघदूत इसे भी ठीक से पढ़ना।'

बाल उसी समय एकान्त में बैठकर मेघदूत पढ़ने में लीन हो गये।

✠ ✠ ✠

'बच्चों! 'नैषध काव्य' बड़ा कठिन विषय है अतः सव उसका भाषान्तर (कुन्जी) खरीद लें।' अध्यापक महाशय ने कहा।

'मैं नहीं खरीदूँगा।' बाल ने खड़े होकर कहा।

'क्यों?'

'किसी विषय का भाषान्तर खरीदना कोई अच्छी वात है?'

इस उत्तर को सुन अध्यापक महोदय सन्न रह गये, पर प्रतिशोध की भावना से उन्होंने बाल को दण्डित करने का उपाय सोचा और बोले–'तुमने अध्यापक के सामने बोलकर पाठशाला का अनुशासन भंग किया है। तुम्हें सजा दी जाएगी।'

'मैंने अनुशासन भंग नहीं किया है।' बाल ने तपाक से उत्तर दिया। परन्तु मामला तू-तू, मैं-मैं पर आ गया। आखिर मामला हेडमास्टर जेकब साहब के सामने पेश हुआ।

'क्यों? तुमने अनुशासन भंग किया है।'

'नहीं।'

'देखो, इस मामले का निर्णय तो यही है या तो छड़ी खाने के लिए हाथ आगे करो या घर चले जाओ।'

'मेरा इसमें कुछ भी दोष नहीं है।' कहकर बाल ने अपना बस्ता उठाया और घर चला आया। वे दूसरे दिन से गोखले के स्कूल में पढ़ने लगे। जेकब साहब की जगह कुटे के आने पर बाल पुनः पूना हाई स्कूल में आए।

इसी तरह एक दिन बाल अपने दोस्तों के साथ छात्रावास की छत पर बैठे गपशप कर रहे थे। एकाएक यह सवाल पैदा हुआ कि यहाँ से एकदम जाने का प्रसंग आए तो कौन क्या करेगा?

'मैं सीढ़ियों से दौड़ता हुआ निकल जाऊँगा। एक ने कहा।'

'मैं रस्सी लगाकर नीचे उतर जाऊँगा। दूसरे ने कहा।

सब कठिनाई बताकर अपने-अपने ढंग से उपाय बता रहे थे, लेकिन बाल ने अपनी धोती कसी और –'मैं ऐसा करूँगा। कहकर एकदम से छलांग लगा दी।

'अरे यह क्या!' कहते हुए बाकी साथी यह सोचकर कि कहीं बाल को चोट लगी होगी, जीने की तरफ दौड़े तो देखा कि बाल स्वयं ही ऊपर आ रहा है।

यही बाल अपने अद्‌भुत गुणों के कारण आगे चलकर 'भारतीय असंतोष का जनक' एवं 'लोकमान्य तिलक' कहलाया।

●●●

आसै घर दुर्गा नहीं होतो–सुन्नत होती सारां की

'ओ पठान! यह साँड़नी मेरा खेत चर रही है, हाँको इसे।' दुर्गा ने जान-बूझकर आँखें मूँदे सो रहे शाही हरकारे को पुकारते हुए कहा।

'अरे! यह क्या? सुनते नहीं हो क्या?' दुर्गा ने पुनः आवाज लगाई। पर वह पठान तो दुर्गा की बात अनसुनी करके लेटा रहा। साँड़नी को खेत चरते देख दुर्गा को गुस्सा आया और अपनी छोटी तलवार लेकर साँड़नी की तरफ लपका। क्षणभर में साँड़नी की गर्दन के दो टुकड़े जमीन पर तड़प रहे थे। अब हरकारे की आँखें भी लाल हुईं और उसने पुकारकर कहा–'क्यों बे छोकरे ! साँड़नी को क्यों मारा? यह शाही साँड़नी थी।'

'इससे क्या होता है? तुम और शाह आदमी ही तो हो। किसी का खेत चराने वाले तुम कौन होते हो।' दुर्गा ने निडरतापूर्वक कहा।

'खेत ही नहीं तुम्हारा घर भी खोदा जा सकता है। बादशाह की ताकत को तुम नहीं जानते।' हरकारे ने धमकाने वाली आवाज में कहा।

'मियाँ, चुपचाप अपना रास्ता नापो। नहीं तो ठीक नहीं होगा। खेत चराकर धौंस जमाते हो। यहाँ महाराज यशवन्त सिंह का राज्य है। तुम्हारी गर्मी-सर्दी यहाँ न चलेगी।' दुर्गा ने कड़कते हुए कहा।

'किस यशवन्तसिंह की बात करता है तू बेवकूफ?' वह तो बादशाह के टुकड़े पर पलता है। सब राजपूतों को देख चुका हूँ, बड़ी-बड़ी जागीरें मिट्टी में मिल गईं तो तुम्हारी क्या हस्ती है?' हरकारे ने कहा।

'बस-बस बहुत हो चुका। अब मुँह खोला तो पछताओगे, कहे देता हूँ। यह राजपूताना है।' दुर्गा ने ऐंठते हुए कहा।

'जा! जा! देख चुका हूँ राजपूताने को और अब ....।'

उसका वाक्य पूरा नहीं हो पाया था कि दुर्गा ने तलवार से उसकी गर्दन उड़ाते हुए कहा–'चींटी की मौत आती है तो उसके पंख निकल आते हैं। लगातार बकता जा रहा है बदमाश और यह भी नहीं सोचता कि मैं किसको कह रहा हूँ।' हरकारे की गर्मी सदा के लिए शान्त हो गई।

परन्तु उसके गाँव के मुंशी ने औरंगजेब को नमक-मिर्च लगाकर इसका वृतान्त सुनाया तो वह लाल हो उठा और यशवन्तसिंह को बुलाकर कहा–'आपके रहते मैं राजपूताने की तरफ से बेफिक्र था परन्तु आज जो हुआ वह अच्छा नहीं है। बेहतर होगा कि आप स्वयं इस मामले की जाँच जोधपुर जाकर करें और विद्रोहियों को दबा दें।'

'ऐसा ही करूँगा।' यशवन्तसिंह ने कहा और जोधपुर की ओर कूच कर गए।

जोधपुर का राजदरबार। सिपाहियों के साथ दुर्गा ने प्रवेश किया और महाराज को प्रणाम कर एक किनारे की ओर खड़ा हो गया। तभी शाही मुंशी ने खड़े होकर कहा–'महाराज, इस बदमाश के कारनामों से सब रिआया परेशान है और पाँच दिन पहले इसी ने शाही हरकारे को मारकर बादशाह के खिलाफ बगावत की है। इसके विरुद्ध जाँच हो।'

'युवक! तुम्हारा नाम क्या है?' महाराज ने दुर्गादास से पूछा।

'मैं आसकरण राठौड़ का बेटा दुर्गादास राठौड़ हूँ।'

'तुमने शाही हरकारा और उसकी साँड़नी को मारा?'

'हाँ महाराज ! अगर मैं उसे न मारता तो अन्याय होता।' एक ही साँस में दुर्गा ने कह डाला, 'अगर उसने सिर्फ मुझे ही गाली दी होती तो कोई बात नहीं थी परन्तु उसने आपको और सारी राजपूत जाति को गाली दी थी और साँड़नी को भी मेरे खेत में चरने को छोड़ दिया था।'

'तो तुम बादशाह से नहीं डरते हो। उनका आदर नहीं करते हो?'

'मुझे किसी का डर नहीं है। फिर मैं जानता हूँ कि बादशाह राजपूतों को और सारे हिन्दुओं को किस निगाह से देखता है। उससे क्या डर? मेरे धर्म पर या जाति पर चोट करता है उससे लड़ने में मैं तनिक नहीं डरता।'

'अगर मैं बादशाह की तरफ से तुम्हें गिरफ्तार करूँ तो?' महाराज ने कहा।

'महाराज! आपके हुक्म पर मैं अपना सिर दे सकता हूँ परन्तु बादशाह का हुक्म मुझे छू भी नहीं सकेगा।' दुर्गा ने कहा।

'पर मैं बादशाह की तरफ से तुम्हारी गिरफ्तारी का हुक्म दे रहा हूँ।' महाराज ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

'तो फिर आए कोई माई का लाल! देखूँ, कौन मुझे छूने की हिम्मत करता है।' दुर्गा पैंतरा बदलकर तलवार चमचमाते हुए दहाड़ उठा। भरे दरबार में सन्नाटा छा गया।

'शाबाश दुर्गा! मैं तुम्हारे साहस पर प्रसन्न हूँ। आज से तुम मेरे प्रधान अंगरक्षक हुए।' कहते हुए महाराज ने दुर्गा की पीठ ठोंकी।

'महाराज की जय हो। मैं तो आपका छोटा सा सेवक हूँ।' कहते हुए महाराज के पैरों पर तलवार रखकर दुर्गा ने प्रणाम किया। दरबार जय-जयकार से गूँज उठा।

यही बालक आगे चलकर स्वामीभक्त 'दुर्गादास राठौड़' हुआ जिसने अत्याचारी मुगलों के छक्के छुड़ा दिये।

आजाद ही रहे हैं – आजाद ही रहेंगे

'वन्देमातरम्'

'स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।'

'स्वदेशी अपनाओ, विदेशी हटाओ।'

ये नारे युवक लगा रहे थे। जो 1921 के असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हो गये थे। इन्हीं युवकों में शामिल हो गया 'आजाद चन्द्रशेखर'। विदेशी कपड़ों की होली जलाई जा रही थी। अचानक–

"पुलिस ! पुलिस ! भागो ! भागो !" सचमुच में पुलिस का एक दस्ता आ पहुँचा और एक पुलिस अफसर कड़ककर बोला–'बन्द करो यह तमाशा। भागो यहाँ से वरना अच्छा नहीं होगा।'

कुछ लोग भागने लगे........लेकिन इतने में ही एक युवक जिसका नाम था चन्द्रशेखर गरज उठा–"ठहरो ! .... हम नहीं हटेंगे। आजादी के लिए लड़ना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।'

'मैं फिर कहता हूँ आप सभी यह स्थान छोड़ दीजिये, वरना सभी की होली जला दी जायेगी।'

'हम लोगों की होली के पहले तुम्हारा जनाजा निकलेगा।' आजाद बोल उठा।

'जवानों ! मारो इन सबको'–अफसर दाँत किटकिटाते हुए बोला। पुलिस वाले निहत्थे युवकों पर टूट पड़े। किशोर आजाद कैसे चूकता, उसने एक कंकड़ उठाकर अफसर के माथे का निशाना बनाया। निशाना अचूक था, माथे पर लगते ही रक्त की धारा बह चली।

'पकड़ो ! भागने न पाये बदमाश।' पर पकड़ने के पहले ही वह किशोर नौ दो ग्यारह हो गया। माथे पर तिलक होने के कारण बनारस संस्कृत कॉलेज से उसे पकड़कर ले जाया गया।

पुलिस ने थाने ले जाकर उसे डराया-धमकाया और कहा–'क्षमा माँग लो, अभी बच्चे हो, तुम्हारे पढ़ने-लिखने का समय है।

'नहीं, मैं क्यों क्षमा माँगू। मैंने कौन सा अपराध किया है?

आखिर उसे ठंड के दिनों में बिना कम्बल आदि दिये हवालात में बन्द कर दिया। आधी रात अफसर इस ठंडी रात में युवक का हाल देखने गया। यह देखकर वह दंग रह गया कि किशोर दण्ड पेल रहा है तथा शरीर से पसीना चू रहा है।

दूसरे दिन मजिस्ट्रेट खरेघाट जैसे कठोर व्यक्ति की अदालत में उसे लाया गया–

'ऐ लड़के ! तुम्हारा नाम क्या है? मजिस्ट्रेट ने पूछा।

'आजाद!'

'पिता का नाम क्या है?'

'स्वतंत्र'–युवक अकड़कर बोला।

'तुम्हारा घर कहाँ है?' मजिस्ट्रेट ने झुंझलाहट के साथ पूछा।

'जेलखाना'–युवक निर्भय होकर बोला।

'अदालत इसे 15 बेंत की सजा देती है'–मजिस्ट्रेट ने तिलमिला कर गुस्से में निर्णय लिख दिया।

'बस! इतनी ही।' और युवक हँस पड़ा।

बनारस जेल। जेलर गंडासिंह की आज्ञा हुई 'मारो एक' और इसके साथ ही चन्द्रशेखर के नंगे बदन पर एक बेंत गिरी और वह युवक गरजकर बोला–'वन्देमातरम्'।

'दो' – जेलर ने कड़क कर कहा।

'भारतमाता की जय' मार के साथ उत्तर था।

'तीन'–विस्मित होकर जेलर बोला।

'महात्मा-गाँधी की जय' तीसरी मार का उत्तर था। इस प्रकार एक-एक करके 15 बेंत लगी। शरीर लहूलुहान हो गया। जेल की चारदीवारी से आवाज आने लगी–

'वन्देमातरम् ! भारत माता की जय !! महात्मा गाँधी की जय!!!

जेल से बाहर निकलने पर बाहर खड़ी भीड़ सहस्रों कंठों से पुकार उठी–

'चन्द्रशेखर आजाद की जय ! भारत माता की जय !!'

●●●

खून भगत का खौला
फेंका बम का गोला

'अरे ! यह तुम क्या कर रहे हो?' खेत में घूमते हुए किशनसिंह ने पूछा।

'पेड़ उगा रहा हूँ।' बालक भगत सिंह ने खेत में तिनके रोपते हुए कहा।

'किस चीज के पेड़?'

'बन्दूक का पेड़।'

'अरे! कोई बन्दूक का भी पेड़ होता है?' किशनसिंह ने पूछा।

'हाँ! हाँ! होता है पिताजी।' बालक भगतसिंह ने कहा।

किशनसिंह तो यह सुन अपने बच्चे को निहारते ही रहे और असली बात तो उस दिन मालूम हुई जब वे भगत सिंह को लेकर अपने दोस्त के पास लाहौर जा रहे थे।

'क्या नाम है तुम्हारा?' किशनसिंह के मित्र आनन्दकिशोर जी ने भगतसिंह से पूछा।

'भगतसिंह।'

'क्या करते हो?'

'बन्दूकें बेचता हूँ।'

'बन्दूकें ! ....' वे बालक भगतसिंह को ठगे से देखे जा रहे थे।

'हाँ, बन्दूकें।' भगतसिंह ने सरलता से कहा।

'पर क्यों?'

'अंग्रेजों को मारकर इस देश से बाहर निकालने के लिए।'

'और तुम्हारा धर्म क्या है?'

'देशभक्ति।'

आनन्द किशोर जी भगतसिंह की बातें सुन गद्‌गद् हो सरदार किशनसिंह से बोले–'अरे भाई! तुम बड़े भाग्यवान हो जो तुम्हारे घर में ऐसे देशभक्त ने जन्म लिया है। निश्चित रूप से एक दिन यह तुम्हारा नाम रोशन करेगा और अमर हो जायेगा।'

'दोस्तों! बड़े होने पर तुम सब क्या बनना चाहते हो? क्या करना चाहते हो?' भगतसिंह ने अपनी चौथी कक्षा के सहपाठियों से प्रश्न किया।

'मैं तो डाक्टर बनूँगा।' एक ने कहा।

'मैं एक बड़ा व्यवसायी बनूँगा।' दूसरे ने कहा।

'मैं एक सरकारी अफसर बनूँगा।' तीसरे ने कहा।

'मैं शादी करूँगा और ....।' चौथे ने कहा।

'शादी करना कोई बड़ा काम है। शादी तो कोई भी कर सकता है,' बीच में ही वाक्य काटता भगतसिंह बोल उठा, 'मैं हरगिज शादी नहीं करूँगा। मैं तो अंग्रेजों को भारत के बाहर खदेड़ने का काम करूँगा।'

सभी बालक चुप थे किन्तु भगतसिंह अपने आप में कुछ सोच रहा था।

* * *

13 अप्रैल 1919 का दिन। जलियाँवाला बाग की दुःखदायी घटना। भगतसिंह का हृदय तो इस घटना के सुनने के साथ ही रो उठा। स्कूल की छुट्टी होने पर दौड़ पड़ा उस घटनास्थल की ओर। किसी प्रकार पुलिस की आँख बचाकर वह घुस गया उस क्षेत्र में। काफी देर बाद जब

वह घर लौटा तो उसकी छोटी बहन ने पूछा–'वीराजी, आप इतने समय से कहाँ थे? माँ आपके लिए भोजन बनाकर कब से राह देख रही है। चलो, खा लो।'

'.....................'

'क्यों, क्या बात है वीराजी? तबीयत तो ठीक है न!' बहन ने घबराकर पूछा।

'बहन ! मेरे से खाने की बात मत करो।' खून से सनी मिट्‌टी की शीशी दिखलाते हुए भगत बोला, 'यह देखो!'

'क्या है यह वीराजी ?'

'बहन ! यह उन अपने निरपराध शहीद भाइयों और बहनों के पवित्र खून से सनी मिट्‌टी है जिन्हें कल अंग्रेजों ने जलियाँवाला बाग में गोलियों से भून डाला था।' कहता–कहता भगतसिंह पुनः विचारों में खोने लगा। फिर वह बोला–'चलो, इसे प्रणाम करो।'

बाद में शीशी पर पुष्प चढ़ाकर उन दोनों ने प्रणाम किया और कई दिनों तक यह क्रम चलता रहा।

यही बालक भगतसिंह आगे चलकर भारतीय इतिहास में 'शहीद भगतसिंह' के नाम से सुप्रसिद्ध हुआ।

●●●

कर्त्तव्य

एक करुण क्रन्दन, नारी की चीत्कार और क्षणभर बाद ही शान्ति।

इस चीत्कार ने अपने खेतों से लौटते हुए एक व्यक्ति को चौंका दिया। जिधर से क्रन्दन का स्वर फूटा था उस ओर दृष्टि डालने पर देखा कि एक अनपढ़ सी दिखने वाली हरिजन पासी महिला काले साँप के काटने के कारण चीखते-चीखते अचेत हो गई है।

पलभर को वह रुका, मुड़ा और साँप को भागते हुए देखकर सब कुछ समझ कर पास पहुँचकर उपचार के लिए जुट पड़ा। स्थिति स्पष्ट बदल चुकी थी। महिला के दाहिने पैर में साँप ने काटा था।

करुण क्रन्दन सुनकर उन्होंने उपचार की बात सोची। पलभर को धर्म आगे आया। अछूत महिला को कैसे छुएँ ? उसके प्राण की रक्षा कैसे की जाए? मानव-कर्त्तव्य प्रथम रखा जाये या धर्म? एक ओर एक महिला के प्राण बचाने की बात थी तो दूसरी ओर धर्म बचाने की। सदासद विवेकिनी बुद्धि ने तर्क करने में समय नष्ट नहीं किया और कर्त्तव्य की भावना को धर्म की रक्षा से बड़ा समझकर उस पासी महिला के प्राणों की रक्षा के लिए वह व्यक्ति उद्यत हो गया। सर्प-दंश से पीड़ित महिला का पैर पकड़कर उसके ऊपर के स्थान पर हाथ से कस कर पकड़ लिया जिससे ऊपर जहर न फैल सके। लेकिन आगे का उपचार कैसे हो? कब तक इसको पकड़े रखा जाये? अब बांधने के लिए अपना ही जनेऊ तोड़कर उस महिला के पैर में बांधा। काटे हुए स्थान पर धारदार हथियार से कुरेद कर काला खून निकाल दिया और उस महिला की जान बचाई।

तब तक गाँव के लोग भी उधर आ गये। धर्म-ध्वजा फहराने वालों ने विरोध किया–'ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर पवित्र जनेऊ को पासी महिला के पैर से छुआ कर इसने धर्म का सत्यानाश कर दिया।'

अन्य लोग चिल्लाने लगे–'यह विधर्मी है, यह धर्म का नाश करने वाला है, कुल कलंकी है, पापी है।'

परन्तु उन्हें एक निरीह महिला के प्राण बचाने का इतना बड़ा सन्तोष मिला था कि उनके आगे धर्म के बाह्याडम्बर की दीवार खिसकने लगी। वे उस महिला की प्राण-रक्षा में लगे रहे। अन्ततः प्राण बचा ही लिये।

धर्म में, संस्कृति में, मानव कर्त्तव्य पूरा करने में और परोपकार में उनकी रत्ती भर भी निष्ठा कम न हुई। ऐसे थे हमारे हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य साहित्यकार, प्रकाण्ड विद्वान, मानव धर्म का पालन करने वाले, परोपकारी श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी।

●●●

परख

नागार्जुन का नाम तुमने अवश्य सुना होगा। वह प्राचीन भारत के नामी रसायन शास्त्री थे।

वे अपनी प्रयोगशाला में रात-दिन काम किया करते थे। उन्होंने अनेक असाध्य रोगों की दवाएँ तैयार कर ली थीं। उनका नाम देश से भी बाहर दूर-दूर तक फैल चुका था।

एक बार नागार्जुन ने राजा से कहा-'काम बहुत है, संभल नहीं रहा। कोई सहायक चाहिये।'

राजा ने उत्तर दिया-'कल हम आपके पास दो नौजवानों को भेजेंगे, किसी को भी चुन लीजिएगा।'

अगले दिन सुबह-सुबह दो नौजवान आकर नागार्जुन के दरवाजे पर खड़े हो गये। नागार्जुन ने उन्हें आदर के साथ बिठाया और पूछा कि कौन कितना पढ़ा-लिखा है।

दोनों समान पढ़े-लिखे थे। अन्य योग्यताएँ भी एक जैसी थीं। नागार्जुन चक्कर में पड़ गये कि किसे रखें और किसे जाने दें।

आखिर उन्होंने दोनों को एक-एक पदार्थ देते हुए कहा-'यह क्या है, मैं नहीं बताऊँगा। इसे खुद पहचानो और इसका कोई भी एक रसायन अपनी इच्छानुसार बनाकर लाओ, फिर मैं सोचूँगा कि किसे अपना सहायक बनाऊँ।

'जो आज्ञा।'

'मैं परसों शाम तुम दोनों की राह देखूँगा।'

'अवश्य आचार्य जी!' कहकर दोनों ही युवक चलने वाले थे कि नागार्जुन ने फिर टोका–'अभी घर जाने से पहले पूरे राजमार्ग को पार करना।'

युवकों को आश्चर्य तो हुआ कि राजमार्ग को पार करने के लिए आचार्य क्यों कह रहे हैं, मगर उन्होंने बहस नहीं की। आचार्य के पांव छूकर वे विदा हो गये।

तीसरे दिन शाम होते ही दोनों आ पहुँचे। एक का चेहरा चमक रहा था, दूसरे का बुझा हुआ। नागार्जुन ने पहले उसी से पूछा–'तुम उदास क्यों हो, भाई?–

'आचार्य जी मैं आपका अपराधी हूँ,' युवक की नजरें झुक गईं, 'आपके दिये पदार्थों को मैंने पहचान तो तुरन्त लिया था, किन्तु उनका कोई रसायन भी तैयार नहीं कर सका।'

इस पर पहला युवक तपाक से बोल उठा–'आचार्य जी, मैंने रसायन तैयार कर लिया है।'

नागार्जुन ने उसके बनाये रसायन की जाँच की, गुण-दोष पूछे। युवक ने सभी उत्तर सही दिये, जबकि दूसरा युवक तो नजरें तक नहीं उठा पा रहा था। नागार्जुन ने फिर उससे पूछा–'तुम रसायन क्यों नहीं बना पाये?'

'आपकी आज्ञानुसार मैं राजमार्ग से गुजर रहा था,' युवक ने बताया, 'अचानक देखता क्या हूँ कि पेड़ के नीचे एक बीमार आदमी पड़ा है। कोई उसे पानी के लिए भी नहीं पूछ रहा है। मेरा दिल पसीज गया। मैं उसे उठाकर घर ले गया। वह इतना बीमार था कि मैं उसी की सेवा में उलझा रह गया, रसायन तैयार करने का समय ही नहीं मिला।'

'तुमने उचित किया,' नागार्जुन मुस्कुरा कर बोले–'मैं तुम्हीं को अपना सहायक नियुक्त करता हूँ।'

जब राजा और नागार्जुन की मुलाकात हुई तो राजा ने बड़े अचरज से पूछा–'यह आपने क्या किया, आचार्य जी? जो रसायन बनाकर लाया, उसे न रखा, जो नहीं लाया, उसे रख लिया।'

'हाँ, महाराज! नागार्जुन बोले–'जिसने रसायन नहीं बनाया उसने मनुष्य की सेवा की थी। दोनों ही नौजवान एक ही राजमार्ग से निकले थे, लेकिन एक सेवा करने के लिए रुक गया और दूसरा नहीं रुका। मुझे पहले से मालूम था कि राजमार्ग के पेड़ के नीचे एक बीमार आदमी पड़ा है। मैं खुद जाकर उसे अपने यहाँ लाने की सोच रहा था, तभी ये नौजवान आ गये और मैंने इनकी परख कर ली। यन्त्र की तरह रसायन बनाने वाला नौजवान मेरे काम का नहीं था। जिसने मानव की तरह मानव की सेवा की वही मेरे काम का था। जो सेवा नहीं कर सकता वह चिकित्सा कैसे करेगा?'

●●●

रहस्यमय नौकर

सच्ची कहानी है।

बंगाल का एक कॉलेज। कॉलेज का हॉस्टल। हॉस्टल में एक अमीर विद्यार्थी। यह हजरत आये तो थे कलाकार बनने, लेकिन थे बिलकुल फूहड़। हॉस्टल में उनका कमरा हमेशा गन्दा पड़ा रहता। कभी कोई चीज तरतीबदार न दिखाई पड़ती। किताबों की जगह पाजामा, पाजामे की जगह सुराही, सुराही की जगह फाउण्टेन पैन। ऐसी हालत थी उनकी।

यह अमीर, आलसी विद्यार्थी एक दोपहर जब सोकर उठा, तो दंग रह गया। देखता क्या है हर चीज तरतीबदार सजी हुई है। किताबों की जगह किताबें, पाजामें की जगह पाजामा। सुराही की जगह सुराही। फाउण्टेन पैन की जगह फाउण्टेन पैन।

यह चमत्कार कैसे हुआ? कमरे में झाड़ू भी लगी हुई है। विद्यार्थी आँखें झपकाने लगा।

दो-चार दिन बीते। फिर वही ढाक के तीन पात। विद्यार्थी महोदय ने सारे कमरे की तरतीब बिगाड़ दी। सब कुछ अस्त-व्यस्त और गन्दा कर दिया।

लेकिन पाँचवें दिन फिर वही चमत्कार । कोई आकर झाड़ू लगा गया। हर चीज तरतीब से सजा गया।

विद्यार्थी ने सोचा जरूर यह नौकर का काम है। चुपके से आकर सब निपटा जाता है। इनाम पाने की आशा रखता है।

हॉस्टल के नौकर को विद्यार्थी ने जब इनाम देना चाहा; नौकर घोर आश्चर्य से आँखें झपकाने लगा, किस बात का इनाम बाबू साहब?'

'क्यों?' विद्यार्थी बोला, 'जब हम सो रहे होते हैं, तब क्या तुम ही चुपके से आकर सब कुछ ठीक नहीं कर जाते?'

'नहीं तो ! मैंने तो ऐसा कभी नहीं किया।'

'फिर कौन करता है, हमारा काम?'

'मैं क्या जानूँ?' नौकर बोला और बिना इनाम लिए चला गया।

मगर कोई न कोई तो था ही जो कमरे की हर चीज को तरतीबवार सजा जाता था। कौन था वह? विद्यार्थी ने फ़ैसला किया कि वह इस सवाल का जवाब पाकर रहेगा।

दोपहर को वह अपने कमरे में ऐसे लेट गया, जैसे गहरी नींद में हो। असल में वह जाग रहा था और रहस्यमय नौकर का इंतजार कर रहा था।

थोड़ी देर में उड़काया हुआ दरवाजा धीरे से खुला और एक परछाईं भीतर आई। कमरे की बेतरतीब चीजों को उसने करीने से रखना शुरू किया।

विद्यार्थी उछलकर बैठ गया, 'कौन हो तुम?'

परछाईं विद्यार्थी की ओर घूमी। विद्यार्थी ने ज्यों ही उसे पहचाना, त्यों ही वह उस परछाईं के पैरों पर गिर पड़ा। वह व्यक्ति कोई और नहीं, बल्कि स्वयं कॉलेज के प्रधानाचार्य थे।

प्रधानाचार्य ने विद्यार्थी को कंधे से पकड़कर उठाया और कहा, "तुम यहाँ कला की शिक्षा लेने आए हो, मगर फूहड़ता से रहते हो। फूहड़ता में कला नहीं है। मैंने सोचा, तुम्हें कलाकार बना पाऊँ, चाहे न बना पाऊँ, कम से कम तुम्हारी फूहड़ता तो दूर कर दूँ।'

उस विद्यार्थी ने फूहड़ता हमेशा के लिए छोड़ दी।

उन प्रधानाचार्य का नाम आज भारत के कोने-कोने में जाना जाता है–कलागुरू नन्दलाल बसु।

●●●

चैतन्य की शक्ति

एक ब्राह्मण को घर आया जानकर शची देवी ने उन्हें सीधा (आटा, दाल, वगैरह) दिया। ब्राह्मण ने चौका लीप-पोत कर अपना भोजन बनाया। खाने से पहले वह आँखें बन्द करके भगवान विष्णु को भोग लगाने लगा, तभी बालक निमाई ने आकर उसकी थाली में खाना शुरू कर दिया। यह देखकर ब्राह्मण देवता चिल्ला उठे-'अरे! यह कौन बालक है?'

आवाज सुनते ही मिश्र जी (बालक के पिता) दौड़कर आये। उन्होंने निमाई को पकड़ा और उसे पीटना चाहते ही थे किन्तु ब्राह्मण ने उसे छुड़ा दिया। मिश्र जी ने बालक निमाई को रस्सी से बाँध दिया और ब्राह्मण से पुनः भोजन बनाने का आग्रह किया।

'जैसी इच्छा' कहते हुए ब्राह्मण देव ने पुनः भोजन बनाया। ज्यों ही भगवान को भोग लगाने के लिए आँखें मूँदी, वह घटना फिर घटी। बालक निमाई रस्सी खोलकर आ गए और थाली से भात खाने लगे।

अब तो पिता के गुस्से की सीमा न रही। वे वैसे ही उसकी शरारतों से परेशान थे। वे पुनः पीटने को हुए तभी ब्राह्मण ने अपनी कसम दिला कर रोक दिया। मिश्र जी अपने पुत्र के इस व्यवहार से लज्जित हो उठे, फिर भी उन्होंने आग्रह किया-'ब्राह्मणदेव! इस बार गलती नहीं होगी। आप भोजन बनाएँ।'

'आज भाग्य में भोजन नहीं है। मैं चना-चबेना खाकर सन्तोष कर लूँगा। आप दुःखी न हों।'

'नहीं, हमें इस बात से सन्तोष नहीं होगा। आप भोजन बनाइये। मैं निमाई को पकड़े रखता हूँ। निमाई के बड़े भाई ने कहा।

ब्राह्मणदेव मान गए और भोजन बनाकर ज्यों ही भोग लगाया कि साक्षात् विष्णु प्रकट होकर बोले–"तुम्हारे बुलाने से दो बार मैं बालक रूप में आया था पर तुम पहचान नहीं पाये। खैर! अब ध्यान रखना। कहकर चले गए।

ब्राह्मण ने भोजन किया और सो गये। निमाई को दूर से ही मन ही मन प्रणाम कर चले गये। परन्तु निमाई तो इतना शैतान था कि वह पड़ोसियों के घर भी खा लेता था। कोई-कोई तो कह भी देता–"निमाई ब्राह्मण होकर भी हर किसी का छुआ हुआ खा लेता है।"

निमाई हँसकर बोलता–"हम तो बाल गोपाल हैं। हमारे लिए ऊँच-नीच क्या। तू खिला हम तेरा भी खा लेंगे।"

●●●

बस! इतनी सी बात के लिए...

निमाई के ज्ञान की चर्चा काफी दूर तक फैल गई। उन्होंने 16 वर्ष की अवस्था में ही न्याय दर्शन पर पुस्तक लिख दी तो एक दिन उनके मित्र रघुनाथ जी ने उनसे पूछा–'सुना है तुम न्याय पर कोई पुस्तक लिख रहे हो?'

'अजी छोड़ो मैं तो मन बदलने के लिए लिख लेता हूँ,' निमाई ने बात चलते हुए कहा।

'फिर भी मैं तुम्हारे मुँह से सुनना चाहता हूँ,' रघुनाथ जी ने जोर देकर कहा।

'जैसी तुम्हारी इच्छा। चलो गंगा जी में नाव पर सैर भी करेंगे एवं पुस्तक भी सुना देंगे,' कहकर निमाई ने पुस्तक ली और गंगाघाट पर चले आए। उन्होंने नाव पर बैठकर गंगा की सैर करते हुए अपनी पुस्तक पढ़नी शुरू कर दी। थोड़ी देर इसको सुनकर रघुनाथ जी रोने लगे।

'क्यों, क्या हुआ? रो क्यों रहे हो? निमाई ने हैरानी से पूछा।

'निमाई, मेरी वर्षों की मेहनत बेकार हो गई। तुम्हारी इस पुस्तक के सामने मेरी पुस्तक कौन पढ़ेगा? अपनी जिस पुस्तक पर मुझे गुमान था वह तो इसके सामने कुछ भी नहीं है।' रघुनाथ ने ठण्डी आह भरते हुए कहा।

'बस इतनी सी बात के लिए परेशान थे? कहकर उन्होंने हँसते हुए झट से वह पुस्तक गंगाजी में फेंक दी।

'अरे! यह क्या किया तूने?' रघुनाथ ने निमाई की ओर देखते हुए पूछा।

'यह तो एक पुस्तक है। मित्र के लिए मैं प्राण भी दे सकता हूँ,' निमाई ने सरलता से कहा।

यही बालक निमाई अपने निर्मल प्रेम व अटूट भक्ति के कारण लोगों का हृदय जीतकर 'महाप्रभु चैतन्य' के नाम से विख्यात हुआ।

●●●

मीरा के प्रभु

"मीरा ! तुम जाओ और महल में जाकर महात्मा जी के लिए पूजा सामग्री शीघ्र ले आओ।" राव दूदा जी ने कहा।

"जो आज्ञा दादा।" मीरा ने कहा।

थोड़ी देर में मीरा पूजा सामग्री ले आई और बोली–"आइए महाराज जी! इस आसन पर बिराजिये। हम आपकी पूजा करते हैं।"

"नहीं बेटी! अभी नहीं, जरा ठहरो! हमें पहले अपने इष्टदेव की पूजा कर लेने दो," साधू ने कहा और अपनी झोली खोलकर ठाकुर जी की मूर्ति निकाली।

"महात्मा जी! आप अपने साथ ठाकुर भी रखते हैं?" मीरा ने मूर्ति को देखकर पूछा।

"हाँ बेटी भगवान की पूजा तो सबको करनी चाहिये।"

"हाँ तो महात्मा जी! आपके भगवान का नाम क्या है।"

"बेटी! इनका नाम अनेकरूपा है," महात्मा ने हँसते हुए कहा–"इन्हें कोई जनार्दन, कोई कृष्ण, कोई मदन-गोपाल कहते हैं। मगर मीरा हम तो इन्हें श्री गिरधरलाल कहते हैं।"

"श्री गिरधरलाल मीरा धीरे-धीरे कहते हुए सोचने लगी और थोड़ी देर बाद बोली–"बड़ा ही अच्छा नाम है महात्मा जी! आपके पास तो अनेक ठाकुर जी हैं। क्या आप मुझे ये गिरधरलाल जी की मूर्ति दे सकेंगे?"

"हम अपने गिरधरलाल जी को तुम्हें दे दें? क्या करोगी तुम?"

"मैं आपकी तरह ही नहलाऊँगी और चन्दन-फूल चढ़ाऊँगी।" मीरा ने सरल भाव से कहा।

"हाँ, महात्मन्! बच्ची की बड़ी इच्छा है। इसे आप यह मूर्ति दे दें और इसका जो भी मूल्य लेना है बता दें।" दादाजी ने कहा।

"असम्भव ! असम्भव !! हम त्यागी-विरागी, साधु ठहरे। भला रुपये पैसे के बदले गिरधरलाल जी को कैसे दे दें? यह कभी नहीं हो सकता।" साधु ने उत्तर दिया।

"क्षमा करें महात्मन! गलती हो गई मेरा मतलब रुपये पैसे से नहीं था, महाराज!" दूदा जी ने हाथ जोड़कर कहा।

"महात्मा जी! इसे आप मुझे दे देंगे न।" मीरा ने पुनः आग्रह किया-"आप चुप क्यों हैं? महात्मा जी, बोलो न। आप इसे मुझे दे दोगे न?" मीरा ने पुनः पूछा।

"ऊँ हूँ।" साधु ने सिर हिलाते हुए कहा।

"तो महात्मा जी! आप जब तक इसे मुझे न दे देंगे तब तक मैं न खाऊँगी, न पीऊँगी।" कहते हुए मीरा ने अपनी प्रतिज्ञा सुना दी।

महात्मा जी मीरा की बात को हँसी मजाक समझ कर टाल गए और दूदा जी का आतिथ्य स्वीकार कर चले गए। इधर मीरा ने खाना-पीना छोड़ दिया। राव दूदा जी ने प्यार से समझाया परन्तु मीरा का बाल हठ अडिग था।

"नहीं खाऊँगी। मैं तो वही मूर्ति लूँगी। कहते-कहते मीरा फिर रोने लगी। रात्रि को भी वह रोते-रोते कब सो गई, मालूम ही नहीं पड़ा।

अगले दिन सवेरे ही वे साधु महाराज पुनः पधारे और मीरा के हाथ में गिरधरलाल जी की मूर्ति को देते हुए कहा-"लो बेटी! इसको सम्भालकर ठीक से रखना।"

"यह क्या महाराज!" दूदा जी ने कहा।

"राव साहब! पिछली रात श्रीकृष्ण भगवान मेरे स्वप्न में आए और कहने लगे कि मेरी परम भक्त मीरा मेरे लिए रो रही है। अतः जाओ और यह मूर्ति उसे दे दो।" महात्मा जी ने कहा।

साधु महाराज ने मीरा को आशीर्वाद दिया और चले गये।

✠ ✠ ✠

"यह कौन है?" सजे हुए दूल्हे को घोड़े पर चढ़ा देख मीरा ने राव दूदाजी से पूछा।

"वह दूल्हा है बेटी।" दादाजी ने समझाया।

"मेरे भी दूल्हा आएगा न, दादाजी।"

"हाँ बेटी।"

"तो कौन है मेरा दूल्हा?" मीरा ने सहज भाव से पूछा–"दादा जी! कौन है मेरा दूल्हा?"

मीरा को हठ करते देख दूदा जी ने हँसी मजाक में टालते हुए कहा–"तेरा दूल्हा वही श्री गिरधरलाल जी है।"

बस, मीरा खुशी से नाच उठी और उन्हें ही अपना दूल्हा (पति) मानकर उनकी पूजा करने लगी एवं 'जाके सिर मोर मुकुट मेरा पति सोई।' कहकर आजीवन यही करती रही।

●●●

ना घर मेरा, ना घर तेरा...

गाँव के बाहर कच्ची मिट्टी के ढेर पर बच्चे मिट्टी के घरौंदे बना रहे थे। वे घर बनाते लेकिन ठीक न बनने के कारण ये घर तत्काल ढह जाते। आखिर एक बच्चा घर बनाने में सफल हो गया और बोला, "ले भाई, नानक! मेरा घर तो बन गया।"

'अच्छा! नानक मुस्कुराया।

'मेरा भी बन गया।' एक अन्य बालक बोल उठा। नानक ने मुस्कुराते हुए कहा—"कितनी देर रहेंगे ये मिट्टी के घर? यह मिट्टी का घर न तेरा है, न मेरा और न इसका। यह तो बस मिट्टी का ही है।" कहते-कहते नानक देव अपने ही ध्यान में खो गए।

एक बच्चे ने कन्धा पकड़ नानक को हिलाया। तब भी उनका ध्यान न टूटा तो सब डर गये। वे नानक के घर जाकर उनकी बहिन नानकी को साथ ले आए। नानकी ने देखा कि उसका भाई आँखें मूँदें बैठा है पर उसके होंठ धीरे-धीरे हिल रहे हैं। उसने कान लगाकर सुना तो सुनती रही। आवाज आ रही थी—'तूं ही तू है, तूं ही तू है।'

'वीर जी!' नानकी ने पुकारा।

'बहिन जी, आप यहाँ?' कहते हुए नानक ने आँखें खोली।

'घर चलो, वीर जी।'

और नानक उठकर उसके साथ घर की तरफ चल दिये, रास्ते में उन्होंने देखा कि एक नंगा बच्चा भीख मांग रहा है। उसके पास जाकर उन्होंने पूछा—'यह तुम क्या कर रहे हो?'

'पेट के लिए भीख माँग रहा हूँ।' भिखारी बच्चे ने पेट पर हाथ फेरते हुए उत्तर दिया।

'दुनिया वालों से क्यों माँगते हो? उससे माँगों जो सबका दाता है।' बालक नानक ने यह कहकर अपनी कमीज उतारकर उस नंगे भिखारी को दे दी।

'यह क्या किया, वीर जी? नानक ने पूछा।

'मैंने क्या किया? देने वाला तो कोई और है।'

वे यह कहते हुए चल पड़े। बहिन के साथ जब नंगे शरीर नानक घर पहुँचे तो उन्हें इस प्रकार देख माँ हैरान रह गयी। माँ ने डाँटते हुए पूछा–'यह क्या नानक! तुम्हारा कुर्ता कहाँ गया?'

'जिसका था उसने ले लिंया।' नानक ने सहज भाव से कहा।

नानकी ने सारी बात बताई तो माँ और गुस्से में हो गई और बोली–'दानी हो गया अभी से। देख नानक, उस दिन तुमने अपने बापू की नई चादर किसी को दे दी थी, फिर डयोढ़ी में पड़ा अनाज उठाकर आवारा जानवरों को खिला दिया। उस दिन पकी हुई रोटियाँ उठाकर न जाने किसको खिला दीं। कैसे हैं रे तुम्हारे ये लक्षण?'

'फिर क्या हुआ माँ?' नानकी बीच में ही बोल पड़ी–'क्या हुआ वीर जी ने ये सब दे दिया तो? घर में भगवान का दिया सब कुछ तो है।'

'मैंने जानबूझकर थोड़े दिया हैं माँ!' मुस्कुराकर नानक ने कहा–'जिसका माल था उसकी मर्जी ही ऐसी थी।'

'हूँ, मर्जी ही ऐसी थी,' माँ गुस्से से बोली–'खबरदार, अगर फिर कभी उठाकर किसी को कुछ दिया तो। लोगों के बच्चे तो घर बनाते हैं और तू उजाड़ने पर तुला है। अगर तेरे बापू को पता चल गया तो खैर न समझना।'

बालक नानक मौन रहे।

'तुम अपना पाठ क्यों नहीं याद करते नानक?' एक दिन पण्डित जी ने नानक को कक्षा में खड़ा करके पूछा।

'मैं तो वह पाठ याद कर रहा हूँ महाराज, जिसके बाद कोई पाठ ही नहीं रह जाता।' नानक देव ने कहा।

'क्या मतलब?' गुरूजी ने पूछा।

'तोते के समान रट लेने पर भी जो पाठ प्रभु का सच्चा ज्ञान नहीं कराते, उनको याद करने से क्या लाभ?'

पण्डित जी नानक का मुँह देखते रह गये। पर थोड़े दिनों बाद पण्डित जी ने नानक से कहा—'नानक ! मैंने तुम्हारे पिताजी को कह दिया है, कि तू एक अक्षर भी पढ़ता लिखता नहीं है।'

'आपने सच ही कहा है,' नानक ने कहा—'इस संसार में आज कल अक्षर (परमात्मा) को पढ़ता लिखता ही कौन है? यदि एक अक्षर का ज्ञान सभी को हो जाये तो फिर जन्म और मृत्यु में अन्तर ही क्या रह जाये।'

'नानक !' पण्डित जी सहसा चिल्ला उठे।

'हाँ पण्डित जी ! मैं तो अक्षर ही पढ़ रहा हूँ।' नानक ने पुनः कहा, 'इस अक्षर को पढ़ लेने से कुछ भी बाकी नहीं रह जाता।'

'लेकिन दुनिया में रहने के लिए कुछ और भी पढ़ना-लिखना आवश्यक होता है। उसके बिना संसार का काम नहीं चल सकता।' गुरू जी बोले।

'संसार का काम क्या आप और मैं चला रहे हैं?' नानक सहज भाव से बोल उठा।

पण्डित जी उत्तर न दे सके और बोले–'अच्छा नानक ! आज तुम मुझे कुछ और नहीं तो बारह खड़ी (वर्णमाला) ही लिखकर दिखला दो।'

'लिखने से क्या होगा?' नानक बोला।

'क्या होगा? पता तो चले कि तुम्हें कुछ आता जाता भी है या नहीं।' पण्डित जी अड़ गये और बोले–'आज तो तुम्हें लिखकर दिखाना ही होगा।'

'अच्छा ।' नानक कुछ देर तक मौन रहे। ध्यानमग्न हो गये। जब आँखें खुलीं तो उन्होंने कहा–'हे मन ! यदि लिखना ही है तो सत् का विचार लिख, उस ईश्वर का नाम लिख जो आधार है सब प्राणियों का। यदि ऐसा लिखना आ गया तो जहाँ भी लेखा जोखा माँगा गया, वही सत्य सिद्ध होगा।'

पण्डित जी चुप हो गये। उन्होंने सारा वृतान्त नानक के पिताजी को सुना दिया।

यही बालक नानक आगे चलकर सिक्ख सम्प्रदाय का प्रणेता गुरू नानक देव कहलाया।

●●●

जियो तो ऐसे जियो

सन् 1919 का भारतीय काँग्रेस अधिवेशन अमृतसर में हुआ था। वहाँ से नई प्रेरणा और नया आवेश लेकर छोटे-बड़े नेता अपने प्रांतों में गये और अंग्रेजों के विरोध में जनता को जाग्रत करने लगे।

4 सितम्बर 1920 को कोलकाता में राष्ट्रसभा की एक विशेष बैठक लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में हुई। इसमें महात्मा गाँधी ने प्रस्ताव रखा कि देशभर में सर्वत्र अंग्रेजी शासन से असहयोग करने के लिए अंग्रेजों की चलाई हुई हर बात का हमें बहिष्कार करना चाहिये। न कोई कार्यालय में जायेगा न न्यायालय में। विद्यार्थी विद्यालय छोड़ देंगे। हमें अंग्रेजों की शिक्षा-दीक्षा नहीं चाहिये।

उस सभा के बाद महात्मा गाँधी के देशभर के भ्रमण से लोगों में रुचि बढ़ती गई। उनके लेख निर्भय होकर लोग पढ़ने लगे।

असहयोग का अहिंसक शस्त्र अपना प्रभाव दिखाने लगा और देश का वायुमण्डल बदलने लगा।

दिसम्बर 1920 में नागपुर में होने वाले काँग्रेस सभा अधिवेशन में कोलकाता के चितरंजनदास अपने दल-बल से न्यायालय एवं विद्यालयों का बहिष्कार के विरोध में सम्मिलित होने चल पड़े। परन्तु महात्मा जी के व्यक्तित्व का प्रभाव तथा देश की बदली हुई परिस्थिति ने उनके विचार बदल डाले। चिरंजनदास के सम्पूर्ण बहिष्कार के प्रस्ताव का समर्थन करने के लिए मंच पर धाराप्रवाह भाषण ने सभा को स्तम्भित कर दिया। अंग्रेजों के एक-एक क्षेत्र के काले कारनामों को विस्तृत ब्यौरा बताते हुए वे

बार-बार कह रहे थे। इन पापों में अंशमात्र भी सहभागी होने से हम भी पापी होंगे अतः हमें बहिष्कार पर जोर देना चाहिये। अध्यापक, विद्यार्थी तथा वकील लोग अंग्रेजों की व्यवस्थाओं के प्रति असहयोग करें।

तब तक सभा में से किसी ने पूछा 'और बैरिस्टर लोग क्या करेंगे?'

चितरंजन दास ने तत्काल उत्तर दिया–'वे भी अपनी बैरिस्टरी छोड़ देंगे। मैं अपनी बैरिस्टरी इसी समय से छोड़ रहा हूँ। समझे ! यह चितरंजन जो भी बोलता है उसे करके भी दिखाता है।'

ये शब्द सुनते ही सब लोग अवाक् हो गये। उस जमाने में उनकी हर मास की आय पचास हजार रुपयों की थी। एक क्षण में चितरंजन दास ने वैभव को त्याग दिया। ऐश्वर्य को छोड़ दिया। उनकी यह घोषणा सुनकर श्रोताओं के शरीर पुलकित हो गए।

यह उदास भाव एवं विशाल अन्तःकरण देखंकर अनेकों आँखों से आँसू झरने लगे। 'आदर्श' मूर्त रूप में सामने खड़ा था।

●●●

गुरू पाणिनी

घने वृक्षों की छाया में एक आश्रम था जहाँ पर आचार्य अपने शिष्य को पाठ पढ़ा रहे थे। सभी शिष्य आचार्य के विषय में खोये हुए ध्यान से पढ़ रहे थे। किन्तु एक शिष्य गुरू की बात पर ध्यान न देकर लताओं से उलझा हुआ पुष्पों से खेल रहा था। गुरू ने सोचा थोड़ी देर अपने आप पढ़ाई में ध्यान देने लगेगा क्यों इसे डाँटा जाए किन्तु शिष्य ने ध्यान नहीं दिया तब गुरू जी ने नाराज होकर तुरन्त शिष्य को अपने पास बुलाया।

'अपना हाथ फैलाओ।'

शिष्य ने भयभीत होते हुए अपना हाथ गुरू के समक्ष फैला दिया। गुरू जी की दृष्टि जैसे ही नीम की हस्तरेखाओं पर गई और उन्होंने बच्चे को मारने की बजाय उससे बड़े ही सहानुभूतिपूर्ण शब्दों में कहा–'बेटे! इसमें तेरा कसूर नहीं कि तेरा पढ़ाई में दिल नहीं लगता। वरन् यह तेरे नसीब का ही दोष है तेरे भाग्य में विद्या है ही नहीं।'

इतना सुनते ही शिष्य ने गुरू से कहा–'गुरू जी ! विद्या की रेखा कौनसी है?'

गुरूजी के बताने के तुरन्त बाद ही शिष्य ने पास पड़े चाकू से अपना हाथ काटकर विद्या रेखा बना दी और गुरू जी से बड़े ही दृढ़ स्वरों में बोला–'गुरू जी ! देखना मैं एक दिन बहुत पढ़-लिखकर दिखाऊँगा और आज से आपको मुझसे कोई शिकायत न होगी।'

यह देखकर गुरू जी की आँखें डबडबा आईं तथा हृदय गदगद हो गया। उन्होंने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा–'तुम एक दिन बहुत बड़े विद्वान बनोगे।'

यही शिष्य बाद में वैयाकरणाचार्य गुरू पाणिनी नाम से विख्यात हुआ।

●●●

खोटा सिक्का

एक अत्यन्त साधारण बालक। आयु मुश्किल से दस वर्ष की रही होगी। गरीबी में पला हुआ। कुछ पैसे लेकर सब्जी लेने के लिए जाता है। सब्जी मार्केट कम से कम घर से एक कि० मी० की दूरी पर रही होगी। एक बुढ़िया से सब्जी खरीदकर वापिस घर आता है। घर लौटने पर पता लगा कि जो सिक्का सब्जी खरीदने के लिए मैं ले गया था वह खोटा था। घर से नंगे पांव दौड़ता है और सीधा बुढ़िया के पास पहुँचकर उसके पैसों में से अपना सिक्का ढूंढने लगता है। अपना खोटा सिक्का मिलते ही नाचना शुरू कर देता है, "मिल गया, मिल गया"। खोटे सिक्के के स्थान पर खरा सिक्का उस बुढ़िया को देकर उससे क्षमा माँगता है। बुढ़िया के अश्रुपूर्ण नेत्रों से दिये गये मूक आशीर्वाद ने उस बालक को कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया।

यही बालक जब सात वर्ष की अवस्था का था। एक बार अपनी मामी की गोद में बैठा हुआ था। रात्रि के ग्यारह बज रहे होंगे। घर की और महिलाएँ भी पास ही बैठी हुई थीं। घरेलू वातावरण था (बालक के माता-पिता की मृत्यु शैशवावस्था में हो चुकी थी। अचानक 10-12 डाकुओं के एक गिरोह ने घर पर आक्रमण कर दिया। एक डाकू ने बालक को मामी की गोद से खींचकर जमीन पर गिरा दिया और मामी की छाती पर पैर रखकर धमकाया कि घर के सभी आभूषण हमारे हवाले कर दो। नहीं तो बच्चे के प्राण ले लेंगे। इस पर बालक कराहता हुआ बोला, "हमने सुना था कि डाकू गरीबों की रक्षा के लिए अमीरों का धन लूटते हैं किन्तु तुम तो हम गरीबों को ही मार रहे हो।" डाकुओं का सरदार बालक की इस बात से इतना प्रभावित हुआ कि अपना गिरोह लेकर वापिस चला गया।

यही बालक बड़ा होकर प्रसिद्ध विचारक पं० दीनदयाल उपाध्याय के नाम से विख्यात हुआ।

शंकर आये, देश बचाये

'भिक्षां देहि माँ!' भिक्षाटन को निकले आश्रम के ब्रह्मचारियों में से एक पाँच वर्ष के बालक शंकर ने एक द्वार पर आवाज लगाई।

वह निर्धन ब्राह्मण परिवार था। गृह-लक्ष्मी ने सोचा-'घर में कुछ है ही नहीं, पर ब्रह्मचारी को खाली हाथ लौटाना तो महापाप है।' आखिर वह घर में रखे आँवलों से एक आँवला लेकर दरवाजे पर आयी।

'लो बटुवर।' कहते-कहते उसकी आँखें डबडबा आयीं।

'माँ, तुमको क्या दुःख है?' शंकर ने स्थिति को भांपते हुए पूछा।

कुछ नहीं बेटा! दुःख काहे का? आज यही आंवला है भिक्षा में।' गृह लक्ष्मी ने उत्तर दिया। उसकी आँखें भीग गईं। वह अपने आप को नहीं रोक पाई।

'तो क्या माँ, अपने लोगों से भी दुःख छिपाया जाता है?'

'नहीं बटुवर! मेरे पतिदेव बीमार हैं। केवल दिनभर निर्वाह योग्य भोजन भी मुश्किल से उपार्जन कर पाते हैं। इसलिए आज भिक्षा में देने के लिए केवल आंवला ही रहा, इसका मुझे दुःख था।' गृह-लक्ष्मी ने बताया।

'दुःखी मत हो, माँ जगदम्बा तुम पर कृपा करेंगी।' शंकर ने कहा।

परन्तु शंकर का मन दुःखी हो उठा। उसने मन ही मन यह निश्चय कर लिया कि वह इस समाज का उद्धार करेगा और वह अगले द्वार पर जो धनी परिवार था, जा खड़ा हुआ। योग्य पात्र को द्वार पर खड़ा देख वह धनी व्यक्ति 'भिक्षां देहि' की आवाज आने के पूर्व ही भिक्षा लेकर उपस्थित हो गया। शंकर ने भिक्षा लेने के लिए हाथ आगे बढ़ाने की बजाय पीछे खींच लिया और बोला, 'जो अपने समाज के लोगों को

अपना नहीं समझता, जिसके हृदय में अपने लोगों के लिए प्रेम नहीं, ममता नहीं, उसका अन्न खाकर क्या धर्म-वृत्ति उत्पन्न हो सकेगी?'

वह धनवान सेठ शंकर की बात समझ न सका और बोला-"मैं तो अपने को समाज का एक अकिंचन सेवक ही समझता हूँ, बटुवर।'

'जिसके बगल में इतना निर्धन परिवार हो वह स्वयं सुख और वैभव की गोद में खेलकर भी अपने को समाज सेवक कहे, अपने धर्म की दुहाई दे, यह कैसी विडम्बना है?' शंकर ने तनिक दुःख भरे शब्दों में कहा।

'क्षमा करें, बटुवर।' कहते हुए वह बालक शंकर के पांवों में गिर गया। उसको अपनी भूल का ज्ञान हो गया और कहते हैं कि उसने अपने धन से सोने के आँवले बनवाकर उस ब्राह्मण के घर में भर दिये। उसने यह भी निश्चय किया कि अब वह धन का समाज के लिए सदुपयोग करेगा।

समस्त वेदों में पारंगत होकर बालक शंकर आठ वर्ष की अवस्था में घर लौट आए। भारत को बौद्ध अनात्मवाद के अन्धकार से भ्रमित देखकर उनका मन बेचैन हो उठता था।

* * *

घर पर शंकर समाज के बारे में विचार कर तड़प उठता था। उसके मन में संन्यास की इच्छा दिन-प्रतिदिन प्रबल होती जाती थी, केवल माँ की अनुमति भर प्राप्त कर लेना चाहता था। इधर माँ उसका शीघ्र से शीघ्र विवाह कर देना चाहती थी। एक दिन वह माँ के साथ नदी स्नान को जा रहा था।

'माँ! तुम्हारी सदा ही इच्छा रही है कि मैं वैदिक धर्म का उद्धार करूँ, आज आज्ञा दो कि मैं संन्यास लेकर अपने जीवन के कार्य को प्रारम्भ करूँ।' कहते हुए शंकर ने अपने संन्यास ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की।

'बेटा! यह तुम क्या कहते हो? क्या अपनी बूढ़ी माँ को अकेले छोड़कर जाओगे। क्या कुछ पितृऋण नहीं है?'

'हे माँ! पितृऋण है और उसी को चुकाने के लिए तो संन्यास ग्रहण करना चाहता हूँ।'

'पर बता, मेरा संस्कार कौन करेगा? सब पितरों को पानी कौन देगा?' माँ ने पूछा।

'मैं करूँगा माँ! मैं करूँगा और मैं दूँगा अपने पितरों को पानी।'

'और तेरे बाद?'

'मेरे बाद सब हिन्दू समाज है माँ। यदि हिन्दू समाज ही नष्ट हो गया, हिन्दू धर्म नष्ट ही हो गया तो फिर तू ही बता माँ, कोई दो-हाथ, दो पैर वाला तेरे वंश में हुआ तो क्या तुझे वह पानी देगा? तेरा नाम लेगा?'

माँ चुप थीं और इस प्रकार मन में विचारते-विचारते वे नदी पर पहुँच गये, शंकर नदी में स्नान करने को उतरा। थोड़ी देर में वह एकदम चीख मारकर चिल्ला उठा—'ओ माँ! मगर ने मेरा पांव पकड़ लिया। अब तो मैं गया। तुम्हारे लिए तो मैं मर चुका। पर माँ अब भी तुम मुझे संन्यास की आज्ञा दे दो तो शायद भगवान मुझे देश और जाति के लिए ....जल्दी बोलो।'

माँ हाथ जोड़े चुपचाप भगवान से प्रार्थना कर रही थी। शंकर ने फिर कहा, 'माँ बोलो सोचने का समय नहीं है। एक क्षण भी यदि देर की तो ग्राह (मगर) मुझे अवश्य ही खा जाएगा और फिर तुम जीवनभर सोचती ही रहना।'

माँ के सामने दूसरा कोई मार्ग नहीं था। पुत्र के मरने से तो अच्छा ही है कि वह संन्यासी बनकर ही जीवित रहे। 'तुम्हारी जैसी इच्छा।' कहते हुए माँ ने शंकर को आपत्-संन्यास ग्रहण करने की आज्ञा दे दी परन्तु यह प्रतिज्ञा करवा ली कि उसके मरते समय वह पास आ जायेगा। ग्राह (मगर) ने पैर छोड़ दिया और शंकर नदी से संन्यासी बनकर निकले। यही बालक आगे चलकर 'जगद्गुरू शंकराचार्य' बना।

●●●

कुत्ते में भर देखे देव–
सिद्ध भक्त थे नामदेव

'बेंटा! आज के दिन तुम मन्दिर में जाकर भगवान को भोग चढ़ा आना।' किसी काम से दूसरे गाँव जाते समय दामाजी शेटी ने नामदेव से कहा।

'ठीक है, पिताजी।'

नामदेव थाली में नैवेद्य लेकर ठीक समय से मन्दिर में जा पहुँचा और भगवान् के सामने रखते हुए बोला–'लो भगवान्! आपके लिए आज मैं ही नैवेद्य लेकर आया हूँ, खाइये।'

वह सामने बैठ गया और प्रतीक्षा करने लगा कि भगवान् कब भोग लगाते हैं। काफी देर बाद भी जब वह नैवेद्य वैसे का वैसा ही रहा तो वह पुनः भगवान् से विनती करता हुआ बोला–'भगवान् ! तुम खाओ न! क्या मेरे से कोई गलती हो गई है?'

वह आँख मूंदकर खड़ा हो मन ही मन भगवान् की स्तुति करने लगा। किन्तु थोड़ी देर बाद उसने पुनः देखा तो भोग को वैसा का वैसा ही देखकर वह दुःखी मन से बोल उठा–'भगवान्! क्या मुझसे नाराज हो गए? तुम हर रोज भोग लगाते हो, फिर आज ही क्यों हिचकिचाते हो? अब जब तक तुम यह नैवेद्य नहीं खाओगे तब तक मैं यहीं रहूँगा। न खाना खाऊँगा, न पानी पीऊँगा।'

यह कहकर वह बड़ी देर तक वहीं खड़ा रहा। उसके पाँव दर्द करने लगे। आँखें मुँदनें लगीं। फिर भी वह टस से मस नहीं हुआ। आखिर उसकी यह भक्ति देखकर भगवान् विट्ठल का दिल पसीजा और वे साक्षात् प्रकट होकर बोले–'नामदेव।'

नामदेव ने अपने आपको संभाला और दौड़कर भगवान् के चरणों में गिर पड़ा–'प्रभु! मेरे से कोई गलती हो गई तो क्षमा करें। आप नाराज तो नहीं हैं।'

'नामदेव ! तुम्हारी भक्ति से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। लाओ नैवेद्य को यहाँ ले आओ।'

बालक नामदेव नैवेद्य उठा लाया और भगवान् ने बड़े प्रेम से उसे खाया। अन्त में नामदेव ने पुनः प्रणाम कर 'बाबा विट्ठलनाथ की जय!' बोलता हुआ खाली थाली लेकर वह घर लौट आया।

इधर बहुत देर हो जाने से उसकी माँ चिन्तित हो उठी और दरवाजे पर आकर नामदेव की राह देखती रही। जब नामदेव को खाली थाली लेकर आते देखा तो उसने आश्चर्य से पूछा–'बेटा! तुमने इतनी देर क्यों लगाई? और यह थाली खाली कैसे हो गई?'

बालक नामदेव ने सारा वृतान्त कह सुनाया। पर माँ को विश्वास नहीं हुआ। वह बोली, 'बेटा! सच्ची-सच्ची बात बताओ, मैं तुम्हें सजा नहीं दूँगी। यह बहानेबाजी नहीं चलेगी।'

मगर नामदेव फिर वही बात कहते हुए बोला–'माँ! मैं सच कह रहा हूँ कि भगवान विट्ठल ने ही वह सारा नैवेद्य खा लिया था।'

'ठीक है, आने दो तुम्हारे पिताजी को। तुम्हें झूठ बोलने की आदत हो गई है।' माँ ने डाँटते हुए कहा पर मन ही मन वह खुश थी। शाम को जब दामाजी शेटी घर लौटे तो उसने नामदेव की सारी घटना कह सुनाई। अब तो वे भी अचरज में पड़ गये और नामदेव को बुलाकर बोले–'नामदेव! कल मैं भी तुम्हारे साथ मन्दिर चलूँगा और देखता हूँ कि तुम सच बोलते हो या झूठ।'

'ठीक है, पिताजी।'

दूसरे दिन दामाजी शेटी नामदेव के साथ नैवेद्य लेकर मन्दिर गए और बाहर ही खड़े रहे। थोड़ी देर बाद जब वे खिड़की में से झांकने लगे तो वहाँ का दृश्य देखकर हैरान हो गये। भगवान विट्ठल सचमुच नैवेद्य खा रहे थे।

* * *

एक दिन नामदेव खाना खाने की तैयारी में था। इतने में एक कुत्ता वहाँ आया और उसकी थाली से रोटी उठाकर भागने लगा।

'अरे ऽ ऽ ऽ ऽ ! यह क्या कर रहे हो? यह तो सूखी रोटी है, तुम्हें खाने में तकलीफ होगी। लो, घी डाल देता हूँ।' कहते हुए नामदेव घी का कटोरा हाथ में लेकर उसके पीछे दौड़ने लगे।

अब तो कुत्ता भी डर के मारे जोर से भागने लगा। नामदेव कहे जा रहा था, 'अरे! थोड़ा रुक जाओ। तुम्हारे लिए घी लाया हूँ।'

आखिर उसने कुत्ते को पकड़ ही लिया और उसकी मुँह की रोटी में घी चुपड़कर उसके सामने रखते हुए बोला, 'लो अब खाओ! तुम्हें मजा भी आयेगा और तकलीफ भी नहीं होगी।'

नामदेव खुशी से फूल उठा और घर की ओर चल पड़ा। यही बालक आगे चलकर 'संत नामदेव' के नाम से विख्यात हुआ।

●●●

सत्य का नाम—सत्यकाम

'माँ, अब मैं पाँच वर्ष का हो गया हूँ। मैं ब्रह्मचर्य धारण कर गुरू के यहाँ विद्याध्ययन के लिए जाना चाहता हूँ। अतः मेरा कुल गोत्र तो बतला दो।' बालक सत्यकाम ने सरल भाव से पूछा।

माता जवाला उस समय आश्रम में अतिथियों के लिए पत्तलें बना रही थीं। उसके हाथ सहसा रुक गये। क्षणभर उसने अपने भोले पुत्र की ओर देखा। थोड़ा कम्पन भी हुआ उसके शरीर में। वह सम्हली और प्यार से सत्यकाम के सिर पर हाथ फेरते हुए बोली—'पुत्र मैं यौवनकाल में बहुत अतिथियों की सेवा में रही। मुझे नहीं मालूम कि तुम किस गौत्र में जन्मे हो?'

'गुरू जी पूछेंगे तो मैं क्या कहूँगा, माँ?' सत्यकाम ने पुनः पूछा।

'कहना, मेरा नाम है सत्यकाम और मेरी माता का नाम है जवाला। अतः मैं सत्यकाम मेरा गोत्र 'जावाल' यानि मैं सत्यकाम जावाल हूँ।' जवाला ने कहा।

सत्यकाम निकल पड़ा गुरू की खोज में। प्रातःकाल का समय। हरिद्रुमत गौतम का आश्रम। आचार्यपीठ पर आसीन गौतम ऋषि सामने बैठे कुलीन ब्राह्मण एवं क्षत्रिय बालकों को ब्रह्म के संबंध में समझा रहे थे। शान्त वातावरण था। तभी सत्यकाम पहुँचा और मुनि को साष्टांग प्रणाम करके हाथ जोड़कर एक ओर खड़ा हो गया।

'कहो वत्स, कैसे आये? ऋषि ने पूछा।

'मैं ब्रंह्मचर्य धारण करते हुए आप से शिक्षा लेना चाहता हूँ।' सत्यकाम ने विनयपूर्वक कहा।

'तुम्हारा कुल गोत्र क्या है वत्स?' ऋषि ने पुनः पूछा।

इसके साथ ही सारा शिष्य समुदाय सत्यकाम की ओर देखने लगा था। वे अपने नये सहपाठी के गोत्र से परिचित होना चाहते थे। इसलिए सभी के कान सत्यकाम की ओर लगे थे।

'भगवन्!' सत्यकाम ने सहज भाव से कहा, "मैंने माता से पूछा था। माँ ने कहा कि अगर पूछें तो कहना, मेरी माँ ने मुझे किससे प्राप्त किया है मालूम नहीं है, क्योंकि यौवनकाल में आश्रमों में सेवा में रही थी। माँ ने कहा कि तेरा नाम सत्यकाम और मेरा नाम जवाला, इसलिए तू अपने को सत्यकाम जावाल बताना..........'।

इतना सुनते ही आचार्य क्षणभर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। उनके ललाट पर कई रेखायें बनीं और बिगड़ीं। सारे शिष्य समुदाय में पहले तो फुसफुसाहट हुई फिर शांति छा गई। सभी साँस रोके गुरू की ओर देखने लगे। हवा थमती मालूम हुई। सारा आश्रम कुछ क्षण के लिए स्तब्ध हो गया था। सभी के मन में जिज्ञासा थी, क्योंकि आचार्य का निर्णय सत्यकाम की भाग्य परीक्षा थी।

अचानक ही ऋषि ने सिर उठाया। एक बार शिष्य समुदाय की ओर देखा और बाद में मौन खड़े सत्यकाम को। एक-एक क्षण भारी मालूम पड़ रहा था। सारे शिष्य आचार्य की ओर जिज्ञासु दृष्टि से एकटक देख रहे थे, तभी आवाज गूँजी-'सत्यकाम जावाल', आचार्य ने शांत वाणी से कहा, 'तुम्हारी माता ने सत्य कहा। तुमने भी सहज भाव से सत्य ही कहा। सत्य का आचरण ही ब्राह्मणतत्त्व होता है। तुम सत्य के चलते ब्राह्मण हो। जाओ, समिधा (लकड़ियाँ) ले लाओ। मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा। तुम गौतम के आश्रम में विद्या पाने के अधिकारी हो।'

सत्यकाम उत्साहपूर्वक समिधा लाने जंगल की ओर चला गया।

✠ ✠ ✠

एक समय वर्षा की कमी के कारण गायों को पूरा खाने को नहीं मिल रहा था। जिससे आश्रम की गायें कुछ तो दुर्बल हो गईं थीं और कुछ बीमार भी। एक दिन अकस्मात् ही ऋषि बोल उठे-"सत्यकाम ! इन 400 गायों को कहीं चराने ले जाओ और जब तक ये एक हजार न हो जायें, आश्रम में नहीं आना।

हठात् ऋषि की ये असम्भव आज्ञा सुनकर शिष्य समुदाय उनकी ओर याचना की दृष्टि से देखने लगा था परन्तु सत्यकाम ने इस उत्तरदायित्व को सहर्ष स्वीकार करते हुए कहा–'जो आज्ञा, गुरुदेव।'

वह गायों को लेकर निकल पड़ा तथा अच्छे स्थान की खोज में वह दूर-दूर तक घूमता रहा। वह रात-दिन इसी चिन्ता में डूबा रहता था। भगवान् का ध्यान करते समय भी यही प्रार्थना करता कि कहीं उसे ऐसी जगह मिल जाए कि वहाँ इतनी गायों को पर्याप्त खाने को मिल सके। आखिर एक दिन उसने वह जगह ढूँढ निकाली और वहीं बस गया।

वह रात-दिन गायों की सेवा करता। अगर कोई गाय बीमार हो जाती तो उसका मन दुःखी हो उठता था और भगवान् से प्रार्थना करता था कि वह इस गाय को स्वस्थ कर दे और इसके बदले उसे बीमार कर दे। उसकी इस तरह की कातर-प्रार्थनाओं से गाएँ सचमुच ही स्वस्थ हो जाती थीं। वर्षानुवर्ष यह क्रम चलता रहा। धीरे-धीरे उसने अपने आपको इस कार्य में इतना लीन कर दिया था कि उसको यह मालूम ही नहीं रहा कि वह गुरू की आज्ञा से यहाँ आया हुआ है और गायों की संख्या भी 1000 से ऊपर हो गई है। उसके लिए तो गायों की दुनिया ही संसार बन गया था। उसकी इस प्रकार लग्न और सेवानिष्ठा को देखकर देवताओं को भी प्रसन्न होना पड़ा। एक दिन वह अपनी प्रार्थना में लीन था कि उसे मनुष्य की आवाज सुनाई दी। पीछे मुड़कर देखा तो एक बैल दिखाई दिया।

'आप कौन हैं, देव?' सत्यकाम ने पूछा।

'सत्यकाम! मैं गायों का स्वामी हूँ। तुम्हारी भक्ति से मैं बहुत प्रसन्न हूँ और आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हें वेदों का ज्ञान सहज हो जाये। तुम्हारी गायों की संख्या एक हजार से भी ऊपर हो गई है। तुम अपने गुरुदेव के पास लौट जाओ। वे तुम्हें देखकर प्रसन्नचित्त होंगे।'

●●●

शुद्धाद्वैत दर्शनाचार्य–महाप्रभु बल्लभाचार्य

ओरछा नरेश भोजदेव का दरबार सजा हुआ था। भोजदेव पण्डितों से घिरे हुए थे। पास ही एक आसन पर विराजमान थे घट–सरस्वती। उनके सामने ही दूसरे आसन पर रखा हुआ था एक घड़ा। बड़ा सुन्दर घड़ा था। रेशमी चादर उसके ऊपर डाली हुई थी। सारे पंडित घड़े की ओर भयभीत दृष्टि से देख रहे थे। घट–सरस्वती गर्व और अभिमान से फूले नहीं समा रहे थे। वे भोज–पत्रों को उलट–पुलट रहे थे और कभी–कभी ठहाका मारकर हुंकार भी भर देते थे।

'आज कोई भी नहीं आया, महाराज!' घट सरस्वती ने राजा की ओर देखकर घमण्ड भरे स्वर में कहा।

'घट सरस्वती से कौन जीतेगा! सभी भय से काँप उठते हैं।' राजा ने कहा।

'इस घट में सरस्वती कैद है, राजन! घट सरस्वती ने घड़ा ठोंकते हुए कहा।

'और आपके हाथों में पण्डितों द्वारा लिखित विजय–पत्र के पन्ने।' कहते हुए राजा ने भी हाँ में हाँ मिलायी।

तभी कुछ व्यक्तियों के साथ एक ग्यारह वर्ष का ब्रह्मचारी बालक दरबार में उपस्थित हुआ। उस बालक के प्रवेश करते ही अचानक राजा के साथ सभी खड़े हो गए। बालक ने घट–सरस्वती की ओर देखा।

'आप कहाँ से पधारे ब्रह्मचारी?' राजा ने पूछा।

'मेरा नाम बल्लभ है,' बालक ने कहा–'मैं सारे देश में मायावाद का खण्डन और प्रेम लक्षण भक्ति का मंडन करने के लिए घूम रहा हूँ। आपके दरबार में भी एक घट–माया है। उससे मैं शास्त्रार्थ करना चाहता हूँ।'

घट-सरस्वती चौंके। उन्होंने भोज-पत्रों को एक बार देखा और फिर गरजे, 'बालक, अपनी सीमा में रह। ये भोज-पत्र विजय-पत्र हैं।'

'थोड़ी देर बाद ये भोज-पत्र मेरे पास होंगे और उसमें एक पन्ना आपके हस्ताक्षर का भी होगा।' बालक ने कहा, 'शास्त्रार्थ के लिए तैयार हो जायें।'

'हठ न कर, बालक!' घट-सरस्वती ने कहा।

'आप शास्त्रार्थ करें !' बल्लभ ने कहा–'राजन, आदेश दें।'

'मेरा घड़ा बोलेगा, बालक।' घट-सरस्वती ने कहा।

'मैं तैयार हूँ।' बालक ने कहा।

राजा के आदेश से बल्लभ ने प्रश्न किया–'घट-सरस्वती, ब्रह्म सत्य है तो उसकी सृष्टि माया कैसे हो सकती है?'

घट सरस्वती ने एक बार चारों ओर गर्व से देखा। फिर झटके से चादर हटा दी और घड़े से कहा–'बोल घड़ा।'

घड़ा चुप रहा। बार-बार घट सरस्वती घड़े को आदेश देते रहे और घड़ा जड़ का जड़ ही बना रहा। घट सरस्वती पसीने-पसीने हो गये।

'जड़ नहीं बोलेगा। आप बोलें, महाराज।' बल्लभ ने कहा।

'मैं पराजित हुआ।' ऐसा कहकर घट-सरस्वती ने भोज-पत्रों पर अपना हस्ताक्षर किया और बल्लभाचार्य को भेंट कर दिया।

उसी दिन आचार्य बल्लभ का ओरछा में कनकाभिषेक किया गया और उन्हें सर्वश्रेष्ठ विद्वान के रूप में मान्यता मिली।

●●●

दुःखी देश में जागी आश
प्रकटे समर्थ रामदास

'भैया! मुझे भी दीक्षा दो।' बालक नारायण ने अपने बड़े भाई श्रेष्ठ को दूसरों को दीक्षा-मंत्र देते हुए देखकर कहा।

परन्तु बड़े भाई श्रेष्ठ जानते थे कि इसका मन अभी खेलने-कूदने में है। कभी सेना बनाकर स्वयं उसका सरदार बनता तो कभी साधुओं का मठ बनाकर स्वयं उसकी पूजा करता। कभी-कभी तो अपने साथियों को इस हद तक पीट आता था कि वे घर पर आकर शिकायत कर जाते थे। बाल नारायण की ऐसी स्थिति देखकर श्रेष्ठ ने समझाया, 'नारायण! तुम निःसन्देह नारायण हो किन्तु तुम्हारी अवस्था अभी छोटी है और मन्त्रोपदेश के लिए जो गुण आवश्यक हैं, वे अभी तुझ में पूर्ण विकसित नहीं हैं। कुछ दिन और ठहरो।'

नारायण को इस उत्तर से सन्तुष्टि नहीं हुई और वे गाँव के बाहर एक मन्दिर में जाकर तपस्या करने लगे। वे कई दिनों तक लगातार साधना करते रहे और रोज यह प्रार्थना करते, 'हे भगवन्! आप ही मुझे सत्यज्ञान एवं सत्यमंत्र का उपदेश दें।'

एक दिन एक योगीराज के इन्हें दर्शन हुए और उन्होंने नारायण को उपदेश दिया—'नारायण! इस समय सारे भूमण्डल पर यवन छाए हुए हैं। अनीति और अधर्म बढ़ रहा है, इसलिए वैराग्य वृत्ति से कृष्णातीर पर रहकर उपासना और ज्ञान की वृद्धि करके इस देश का उद्धार करो। जाओ, देश सेवा ही तुम्हारे जीवन का सच्चा उद्देश्य हो।'

इस प्रकार के वचन सुनकर नारायण का हृदय जाग उठा। वे बोल पड़े—'प्रभु, मुझे शक्ति दो। मैं इसे अवश्य ही करूँगा।' और उन्होंने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह देश कार्य को ही जीवन का लक्ष्य बनायेंगे। अब वे इसके अनुरूप विद्याध्ययन भर करने लगे।

✠ ✠ ✠

'नारायण !' माँ ने कहा, 'तुम अब थोड़े बड़े हो गये हो। अतः तुम्हारे लिए अब बालचेष्टा करना शोभा नहीं देता। तुम विवाह का नाम सुनते ही उपद्रव मचाने लगते हो, यह कौन सी अच्छी बात है? तुमको ऐसा कदापि नहीं करना चाहिये।'

बाल नारायण माँ के उपदेश को चुपचाप सुनते रहे। इस बातचीत के पश्चात एक दिन पुनः विवाह की चर्चा हुई तो वे भाग कर नदी में कूद गये और डुबकी लगाकर अन्तर्ध्यान हो गये। उनके बड़े भाई श्रेष्ठ जी ने 'नारायण! नारायण।' नाम लेकर जोर-जोर से आवाज लगाना प्रारम्भ किया। भाई का शब्द सुनते ही नारायण जल से बाहर निकल आये और भाई के साथ घर चले आए।

पानी में कूद पड़ने के उपरान्त नारायण अस्वस्थ हो गए थे किन्तु अब धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगे। एक दिन माँ ने इन्हें एकान्त में बुलाकर पूछा–'नारायण! शास्त्रों में लिखा है कि पुत्र को माँ का कहना मानना चाहिये। अब तुम बताओ कि क्या मेरा तुझ पर कोई अधिकार नहीं है? क्या तुमको मेरे वचन मान्य नहीं हैं?'

'माँ! यह तुमने क्या कहा? मुझे तुम्हारे वचन मान्य न होंगे तो किसके होंगे। माँ से बड़ा देव कोई नहीं–ऐसा शास्त्रों में स्पष्ट कहा है।' नारायण ने सरल भाव से कहा।

बाल नारायण के इस उत्तर को सुनकर माँ बहुत प्रसन्न हुई और बोली, 'यदि ऐसा है तो विवाह की बात उठाने पर तू ऐसा पागलपन क्यों करता है? तुझे मेरी शपथ। अन्तरपट पकड़ने तक विवाह से इन्कार न करना.....यह मेरी आज्ञा है।'

माँ की कठिन आज्ञा सुनकर नारायण सोचने लगे किन्तु कुछ सोच विचार कर बोले, 'अच्छा माँ ! मैं तुम्हारी यह आज्ञा मानूँगा।'

बेचारी भोली माँ नारायण के दाँव-पेंच को समझ न सकी और यह जानकर कि लड़का विवाह के लिए राजी हो गया है, बहुत ही आनन्दित

हुई। उसने अपने इस आनन्द को नारायण के बड़े भाई को भी सुनाया तो माँ की बात सुनकर श्रेष्ठ हँसे और 'क्यों न हो' कहकर चुप हो गए। लेकिन इसके पश्चात नारायण विवाह की बात सुनकर क्रुद्ध न होते।

विवाह की तिथि निश्चित हो गई। बड़े भाई श्रेष्ठ नारायण की बारात लेकर 'आसन' गाँव पहुँचे। विवाह के सब विधान को नारायण आनन्द पूर्वक करते गए। श्रेष्ठ जी यह देखकर हँस रहे थे। तदन्तर अन्तरपट पकड़ने का अवसर आया। इस समय ब्राह्मणों ने मंगलाष्टक पढ़ा और सबने मिलकर एक स्वर से कहा–'सावधान!'

'सावधान' शब्द सुनकर नारायण ने मन में विचारा–'नारायण तू तो सदैव सावधान रहता है फिर भी ये लोग मुझे सावधान होने को सचेष्ट करते हैं तो कोई न कोई कारण है।' वे पण्डित जी से पूछ बैठे–'आपने यह सावधान क्यों कहा?'

पण्डित जी ने उत्तर दिया कि 'अब तुम गृहस्थ-धर्म में प्रवेश कर रहे हो इसलिए सावधान होने को कहा है।'

बस, नारायण का हृदय जाग उठा। उन्होंने सोचा–'माँ को दिया वचन जब पूरा हो गया तो अब भला, मैं यहाँ क्यों बैठा रहूँ? मुझे सचमुच सावधान होना चाहिए और योगीराज की आज्ञा का पालन करना चाहिये।' और वे विवाह-मण्डप से उठकर भागे और ऐसे भागे कि किसी के हाथ ही न लगे।

'दूल्हा भागा ! दूल्हा भागा !' चिल्लाते हुए बहुत से लोगों ने उनका पीछा किया परन्तु वे जो छू गये कि वापिस आए ही नहीं। यही बालक नारायण तपस्या करके 'समर्थ गुरू रामदास' के नाम से विख्यात हुआ।

●●●

घट-घट ईश्वर – कहे संत ज्ञानेश्वर

'ज्ञानोबा भैया! हम लोग आज परांठे बनाएँ।' छोटी बहन मुक्ता ने भिक्षा माँगकर लाते हुए ज्ञानोबा से कहा।

'जरूर। लेकिन अपने घर में उसके लिए बर्तन कहाँ है?' ज्ञानोबा ने कहा।

'तो तुम कुम्हार के यहाँ से ले आओ।' मुक्ता ने धीरे से कहा।

'अच्छा मैं अभी लाता हूँ।' कहकर ज्ञानोबा कुम्हार के घर गये। मगर विसोबा ने उनकी बातचीत पहले ही सुन ली थी इसलिए उसने ज्ञानोबा के पहुँचने के पहले ही कुम्हारों को चेतावनी दे दी थी कि 'अगर किसी ने उन भ्रष्ट लड़कों की किसी तरह की सहायता की तो उसे जाति से निकाल दिया जायेगा।'

बेचारे कुम्हार डर गये। उन्होंने ज्ञानोबा को कोई बर्तन नहीं दिया। अपने भाई को खाली हाथ लौटते देख मुक्ताबाई को बहुत दुःख हुआ। फिर भी उसने पूछा–'क्यों, क्या हुआ?'

ज्ञानोबा ने सारा हाल कह सुनाया तो वह एक लम्बी साँस लेकर बोली, 'जाने दो भैया! हमारे भाग्य में परांठे हैं ही नहीं।'

'नहीं बहन! ऐसा मत कहो। लो तुम मेरी पीठ पर परांठे बनाओ।' कहकर ज्ञानोबा औंधे झुक गये एवं प्राणायाम के बल से उन्होंने अपनी पीठ को चूल्हे के तवे की तरह गर्म किया। मुक्ताबाई ने परांठे बनाये। इधर विसोबा जो उनकी दुर्दशा देखने आया हुआ था, उसने यह सारा दृश्य देखा तो वह अवाक् रह गया। वह ज्ञानोबा के पास आकर माफी माँगने लगा। उसने जब इस चमत्कारी घटना को बाकी ब्राह्मणों को

सुनाया तो कई लोग उनके भक्त बन गये। पर जब तक ज्ञानोबा की शुद्धि नहीं हो जाती तब तक वे उनके साथ खान-पान का व्यवहार कैसे कर सकते हैं? एक दिन उन्होंने ज्ञानोबा से कहा–'ज्ञानोबा, आप लोग पैठण जाकर वहाँ के पण्डितों से शुद्धि करा आएँ तो हम आपके साथ संबंध रख सकेंगे।'

ज्ञानोबा अपने भाइयों एवं बहनों के साथ पैठण रवाना हो गए।

* * *

पैंठण की देहाती चौपाल। वहाँ के ब्राह्मणों ने ज्ञानोबा इत्यादि के उपनयन की स्वीकृति तो नहीं दी परन्तु शुद्धि का उपाय बताया कि 'वे चारों लोक-लज्जा का परित्याग करके कुत्ता, चाण्डाल एवं गाय समेत सबको भूमि पर लेटकर प्रणाम करें तथा ईश्वर की अनन्य भक्ति करें।'

ज्ञानोबा आदि ने इस निर्णय को मान लिया और ब्राह्मणों की यह मण्डली शुद्धि पर विचार कर रही थी कि ज्ञानोबा के बड़े भाई निवृत्ति ने सबको सम्बोधित करते हुए कहा–'मैं तो निवृत्त हूँ, प्रवृत्ति में मेरी तनिक भर आसक्ति नहीं है।'

'लोगों को भजन में लगाना कर्त्तव्य है।' ज्ञानोबा के छोटे भाई सोपान ने कहा।

'मैं तो सर्वथा मुक्त हूँ, सबके लिए मुक्ति का द्वार खोलती हूँ।' मुक्ताबाई ने कहा।

इतने में ज्ञानोबा ने कहा–'मैं तो समस्त शास्त्रों का ज्ञाता हूँ, हम सब एक ही ईश्वर के अंश हैं।'

इस पर लोग इन चारों की बातें सुन हँस पड़े। कई दुष्ट ब्राह्मणों ने इनको छेड़ा। एक भैंसे को देखकर उन्होंने कहा–'इस भैंसे का नाम ज्ञानदेव है, बेचारा दिन-रात ज्ञान का बोझा ढोता रहता है।'

'निःसन्देह यह मेरी ही आत्मा है। इसमें और मुझमें तनिक भी भेद नहीं है।' ज्ञानोबा ने तुरन्त कहा।

'तो क्या इस भैंसे को पीटने से तुम्हारे शरीर पर निशान दिखाई देंगे?' पण्डितों ने ताना देते हुए कहा।

'क्यों नहीं! जरूर दिखाई देंगे।' ज्ञानोबा ने सरलता से कहा।

'अच्छा अभी देखते हैं।' कहकर एक हट्टे-कट्टे पण्डित ने उस भैंसे को जोर-जोर से कोड़े लगाये और ज्ञानोबा के पास आकर बोला, देखें तुम्हारी पीठ।'

सचमुच में ज्ञानोबा की पीठ पर कोड़े के निशान साफ-साफ दिखाई दे रहे थे। यह चमत्कार देखकर तो सब हैरान हो गए, फिर भी एक मन्दबुद्धि पण्डित ने तुनककर कहा–'यह तो कोई जादू-टोना मालूम होता है। अगर तुममें सामर्थ्य है तो इस भैंसे के मुँह से वेद सुनाओ।'

'जैसी आपकी आज्ञा।' कहकर ज्ञानोबा ने भैंसे के सिर पर अपना हाथ रखा और बोला–'बेटा! सुनाओ तो इन पण्डितों को वेदों के मंत्र।'

और सचमुच भैंसा बोलने लगा। उसके मुँह से वेदों के मंत्र निकलने लगे, सब हैरान रह गये एवं उनके चरणों पर नत होकर भगवत् भक्ति का उपदेश सुनने लगे।

यही ज्ञानोबा आगे चलकर 'सन्त ज्ञानेश्वर' के नाम से विख्यात हुए।

●●●

गोद लिये हुलसी फिरे, तुलसी सो सुत होय

'कुछ खाने को मिलेगा माँ?' बालक ने एक घर के सामने खड़े होकर आवाज लगाई।

गृह स्वामिनी द्वार पर आई और एक बालक को खड़े देखकर पूछा–'क्या चाहिये, बेटे?'

'कुछ खाने को दोगी माँ? तीन दिन से मैंने कुछ नहीं खाया है।'

गृह स्वामिनी ने दासी को आवाज देकर कुछ भोजन सामग्री लाने का आदेश दिया। एक केले के पत्ते पर कुछ भोजन सामग्री लिए दासी बाहर आई किन्तु बालक की शक्ल देखते ही बोली–'इसे कुछ भी न दें मालकिन, यह लड़का बड़ा मनहूस है।'

'तू कैसे जानती है रे इसे?'

'इसे नहीं जानूँगी मालकिन। सौरों के आत्मानन्द दुबे का यह लड़का बड़ा ही अभागा है। जन्म लेते ही तो अपनी माँ को खा गया। स्वयं अपने लिए भी अशुभ योग का इंगित पाकर दुबेजी ने इसे गंगा में फेंक देने का निश्चय कर लिया था। यह तो उनकी दासी चुनिया ही थी जो इसे दूर गाँव में अपने रिश्ते की बुआ के यहाँ छोड़ आई थी। आत्माराम जी अधिक समय तक जीवित नहीं रह सके और चुनिया की उक्त बुआ भी, जो कि भिक्षा माँग कर इसे पाल रही थी, पिछले दिनों मर गई।'

'लेकिन इसमें इस बालक का क्या दोष है बिंदिया? यह तो बिलकुल निरीह है। इसे बिना भोजन के तड़प-तड़प कर मरने के लिए छोड़ दिया जाये, क्या यही न्याय होगा, इसके प्रति? बिंदिया, कर्मों के भोग से जीव की क्या गति होती है, यह कोई नहीं जान पाया है। इसके

माता-पिता अपने कर्म बंधनों के अनुसार मृत्यु को प्राप्त हुए किन्तु इतने बड़े दुर्भाग्य को प्राप्त कर यह बालक समाज के सामने हाथ फैलाकर जीने की भिक्षा चाहता है, तो क्या समाज का यही कर्त्तव्य है कि इसे मरने के लिए मजबूर कर दिया जाये? न जाने कौन सी सम्भावनाएँ छिपी होंगी, इस बच्चे में। ला मुझे दे भोजन, मैं इसे खिलाऊँगी।'

अचानक बाबा नरहरिदास वहाँ पहुँच जाते हैं। गृहस्वामिनी उनके चरण छूकर प्रणाम करती है। बालक ने भी जो कि इतनी देर खड़ा रहकर उस सद्गृहणी में जगन्माता के दर्शन कर रहा था, गृहस्वामिनी की देखा-देखी बाबा के चरण छूकर प्रणाम किया और घूमकर पुनः हाथ फैला दिये, उस अन्नपूर्णा के सामने। दासी से भोजन की पत्तल लेकर गृहस्वामिनी ने बालक की खुली हथेलियों पर रख दी। किन्तु इसी बीच बाबा नरहरिदास ने बालक की हस्तरेखाओं में किसी अदृष्ट के दर्शन कर लिए थे। बालक के भोजन कर लेने तक, अपने कार्य से निवृत्त हो चुके थे, बाबा। उन्होंने बच्चे को निकट बुलाकर पूछा—'बच्चा कौन हो तुम?'

'....................'

'बेटे ! क्या नाम है, तुम्हारा?'

'..................'

'कुछ पढ़ने-लिखने की इच्छा है, तुम्हारी?'

इस बार बालक ने गर्दन हिलाकर अपनी मौन सहमति दी। फिर आर्द्रकण्ठ से बोला—'बाबा! बहुत दुःखी हूँ मैं। इस संसार में मेरा कोई नहीं है।'

'बेटा! जिसका कोई नहीं होता उसका रक्षक स्वयं राम होता है। तू उसी का स्मरण किया कर। चल, आज से तू मेरे पास रह।'

'अच्छा बेटे! बोल राम।'

बालक भीं बोला–'राम'।

और इंसी शब्द से श्रीगणेश करते हुए बाबा नरहरिदास ने बालक को शिक्षा देना प्रारम्भ किया। प्रथम दिन ही बालक ने राम लिखना सीख लिया और बिना पढ़ाये ही गायत्री मंत्र का शुद्ध उच्चारण करके चमत्कृत कर दिया बाबा को। उसकी विलक्षण प्रतिभा से प्रसन्नमन बाबा ने उसका नामकरण किया–'रामबोला।'

रामबोला भी गद्‌गद् था, बाबा के निष्कपट स्नेह व्यवहार सं। पूछ बैठा–'बाबा! ये राम कौन थे?'

'बेटा! राम, राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र और अयोध्या के राजकुमार थे। किन्तु भगवान् नारायण के अलौकिक शक्तियों से युक्त वे एक अवतार पुरुष थे। बड़ी लम्बी कथा है यह, यथासमय तुम्हें सुनाऊँगा।'

'क्या वे दीन दुःखियों की सहायता करते थे?'

'हाँ पुत्र! उनका तां सम्पूर्ण जीवन चरित्र ही दीन-दुःखियों की संवा-भावना से ओत-प्रांत है। पर दुःख-कातरता उनके स्वभाव की प्रमुख विशेषता थी। उन्होंने जिस धर्म राज्य की स्थापना की थी उसमें कहीं भी दुःख-शोक आदि को स्थान नहीं था।'

बाबा नरहरिदास ने बालक रामबोला की प्राथमिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था की। जो कुछ उसे पढ़ाया जाता उसे तत्काल याद हो जाता। यथासमय उसका यज्ञोपवीत संस्कार भी कराया गया। एक दिन अकस्मात् उसे एक ग्रन्थ के पन्ने उलटते देख जिज्ञासावश बाबा ने पूछा–'यह क्या बाल्मीकि रामायण देख रहे हो?'

'हाँ बाबा! बाल्मीकि रामायण जी पढ़ने का प्रयत्न कर रहा था, किन्तु इसकी भाषा बहुत कठिन है।'

बालक की लगन देख एक दिन बाबा नरहरिदास उसे लेकर वाराणसी गये और वहाँ आचार्य शेषसनातन को उसे सौंपते हुए उन्होंने कहा–'यह बालक बड़ा ही कुशाग्रबुद्धि है और विलक्षण प्रतिभाशाली है, इसे आप अपना शिष्य बनाइये।'

आचार्य शेषसनातन ने रामबोला में विशेष रुचि लेनी प्रारम्भ की। उनके ग्रन्थागार को देखकर एक दिन सहज-भाव से रामबोला ने पूछा–'क्या ये सम्पूर्ण पुस्तकें पढ़ने में मैं समर्थ हो सकूँगा, आचार्य?'

'पुत्र! इतना ही क्यों, सम्पूर्ण विश्वज्ञान से धनी होओगे तुम!'

रामबोला ने पाणिनी के व्याकरण से आरम्भ कर वेद, पुराण आदि धर्मग्रन्थों तथा न्याय, दर्शन, ज्योतिष आदि सम्पूर्ण विषयों का पूर्ण मनोयोग से अध्ययन किया।

एक दिन आचार्य ने कहा–'पुत्र! आज तुम्हारी शिक्षा समाप्त हुई।'

'आचार्यवर! आपकी महती कृपा से मैं इस पृथ्वी पर मनुष्य की तरह जीने का गौरव पाने में समर्थ हुआ हूँ। आप आज्ञा करें, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' रामबोला ने कहा।

'जाओ वत्स! संसार के प्राणियों में व्याप्त अज्ञानांधकार को दूर कर उन्हें ज्ञान का प्रकाश दो और भगवान् राम की महिमा का घर-घर प्रचार करो, यही मेरी दक्षिणा होगी। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ रहेगा।'

यह बालक रामबोला आगे चलकर रामचरितमानस के रचयिता 'गोस्वामी तुलसीदास' के नाम से विख्यात हुए।

●●●

मीठे और मुलायम

मीठा माने क्या? मुलायम माने क्या?

फल तीन तरह के होते हैं। बाहर से कड़े, भीतर से मीठे, जैसे, बादाम। भीतर से कड़े, बाहर से मीठे, जैसे छुहारा। बाहर से भी मीठे, भीतर से भी मीठे, जैसे अंगूर। अंगूर का गुच्छा देखकर तबियत बाग-बाग हो जाती है।

अंगूर में दोनों बातें हैं—मीठा भी, मुलायम भी। तारीफ है उस आदमी की जो अंगूर की तरह मीठा भी हो और मुलायम भी।

बाहर से मीठा हुआ और भीतर से कड़ा रहा, भीतर अहंकार भरा रहा, भीतर स्वार्थ और लोभ भरा रहा, दम्भ और पाखण्ड भरा रहा, तो लानत है ऊपर की मिठास को।

मिठास तो वह है, जो बाहर भी हो, भीतर भी। आदमी वह है जो ऊपर से भी मीठा हो और भीतर से मुलायम हो। हर आदमी के साथ मीठा बोले। हर आदमी के साथ मीठा व्यवहार करे। हर आदमी के लिए मीठी बात सोचे। किसी का दुःख, किसी का भी दर्द उससे बर्दाश्त न हो। किसी को भी संकट में देखकर वह सेवा के लिए दौड़ पड़े। आदमी ही क्यों, हर प्राणी के लिए, हर पशु-पक्षी के लिए, हर कीड़े-मकोड़े के लिए उसके दिल में दर्द हो, मुहब्बत हो, प्रेम हो। ऐसा आदमी होता है 'मीठा'। ऐसा आदमी होता है 'मुलायम'।

कहा विष्णु को घटि गयो?

देवताओं में तीन बड़े देवता माने जाते हैं। एक हैं ब्रह्मा। इनका काम है सृष्टि को गढ़ना, बनाना। एक हैं विष्णु। इनका काम है सृष्टि को पालना। एक हैं महेश। इनका काम है सृष्टि को मिटाना। मिटाने में क्या लगता है? नाश करने में क्या लगता है? संहार करने में क्या लगता है? ताण्डव नृत्य किया, डमरू बजाया कि दुनिया खत्म।

बनाने का, गढ़ने का काम मुश्किल है। पर सबसे मुश्किल काम होता है पालने का। माँ बच्चों को पालती हैं। माँ-बाप तरह-तरह के कष्ट उठाते हैं, तरह-तरह की मुसीबतें झेलते हैं। खुद दुःख सहकर बच्चों को सुख पहुँचाते हैं।

बच्चों के दुनियाभर के नखरे उठाते हैं। उनकी तरह-तरह की बद्तमीजियों को सहन करते हैं। बड़ी मुश्किल से तब कहीं बच्चे पल पाते हैं। हाँ, तो विष्णु का काम बहुत कठिन है। कब कौन बच्चा कैसी गलती कर बैठेगा, उन्हें संभालना पड़ता है। बच्चा तो बच्चा ही ठहरा।

तुम मुझे उतने ही प्यारे हो, जितने पहले थे!

गाँधीजी तब अफ्रीका में थे, दक्षिण अफ्रीका में। वहाँ के हिन्दुस्तानियों के हक के लिए वे लड़ रहे थे। उनके लिए बने हुए काले कानून के खिलाफ उन्होंने सत्याग्रह चलाया था। 30 जनवरी सन् 1908 को जोहान्सबर्ग में मस्जिद के मैदान में एक सभा हुई रात के बारह बजे।

गाँधीजी ने कहा–'यहाँ की सरकार से हमारा समझौता हो गया है। सरकारी दफ्तर में जाकर सब लोग अपनी मर्जी से परवाना ले लें तो सरकार काला कानून रद्द कर देगी। इस काले कानून में सरकार ने हिन्दुस्तानियों पर वह बात लादी है कि हर हिन्दुस्तानी को अपने हाथ की दसों उँगलियों की छाप देकर परवाना लेना पड़ेगा।'

मीर आलम नाम का पठान सभा में उठकर खड़ा हो गया–'यह कैसा समझौता? जब परवाना लेने की बात कायम ही है, तो इसमें हमारी कौन सी जीत हुई?'

गाँधीजी ने कहा–'जीत यही है कि इसमें हर हिन्दुस्तानी को आजादी है। जो चाहे सो परवाना ले। जो न चाहे सो न ले।'

मीर आलम–'आप परवाना लेंगे?'

गाँधीजी–'मैं जरूर लूँगा। सबसे पहले जाकर दसों उँगुलियों की छाप देकर परवाना लूँगा'

मीर आलम–'सरकार दगा करेगी तो?'

गाँधीजी–'तो हम फिर सत्याग्रह करेंगे।'

मीर आलम–'आप ही तो पहले छाप देने के खिलाफ थे और आप ही आज छाप देने को कहते हैं। मैंने सुना है कि आपने स्मट्स से 15 हजार पौण्ड रिश्वत लेकर कौम की आबरू बेच दी है।'

गाँधीजी–'ऐसा कहना गलत है। पहले मुझे लगता था कि छाप न देने में कौम का भला है। अब लगता है छाप देने में कौम का भला है। हमें काला कानून रद्द कराना है।

मीर आलम–'हमने छाप न देने के लिए खुदा की कसम खाई है। जो आदमी सबसे पहले परवाना लेने जायेगा, वह मेरे हाथों मौत पायेगा।'

'मुझे खुशी होगी अपने भाई के हाथों मरने में!' गाँधी जी ने कहा।

कोई तीन महीने बाद की बात है। गाँधी जी अपने साथियों के साथ जा रहे थे परवाना लेने।

मीर आलम अपने दो-तीन पठान दोस्तों के साथ आकर खड़ा हो गया रास्ते में। बोला–'कहाँ जाते हो?'

गाँधीजी ने कहा–'जा रहा हूँ परवाना लेने भाई मीर आलम! दसों उँगलियों की छाप देकर परवाना लेने। तुम चाहो तो तुम भी चलो।'

'मीर आलम मेरी कसम याद है?'

'हाँ, मैं तैयार हूँ।'

तुरन्त गाँधीजी के सिर पर लाठी पड़ी। 'हे राम!' गाँधीजी गश खाकर गिर पड़े। पठान फिर भी मारते रहे। लाठियों, डंडों, लातों से।

साथियों ने बीच-बचाव किया, तब पठान भागे। राहगीरों ने उन्हें पकड़कर पुलिस में दे दिया।

बगल के मकान में लोग ले गये गाँधीजी को। उनकी मरहम पट्टी की गई। उनका होंठ फट गया था। दाँतों में चोट लगी थी। पसलियों में दर्द हो रहा था। पर होश आते ही उन्होंने पहला सवाल किया–'मीर आलम कहाँ है?'

साथी बोले–'आप आराम करें। मीर आलम और उसके साथी हवालात में हैं।'

गाँधीजी चौंक पड़े। बोले–'यह ठीक नहीं। उन्हें तुरन्त छुड़ाना चाहिये।'

गाँधीजी ने पुलिस अफसर को चिट्ठी लिख दी–'मीर आलम और उसके साथी बेकसूर हैं। उन्हें छोड़ दिया जाये।' वे छोड़ दिए गये, पर वहाँ के गोरों ने हल्ला मचाया तो पुलिस ने उन्हें फिर पकड़कर जेल में डाल दिया।

जेल में मीर आलम को अपनी करनी पर बड़ा पछतावा हुआ। वह अल्लाह से दुआ माँगने लगा–'गाँधीजी किसी तरह बच जायें। या खुदा, तू उन्हें बचा!' जब उसे पता चला कि गाँधीजी बच गये तो उसे बड़ी खुशी हुई।

* * *

सरकार मुकर गई। उसने काला कानून रद्द नहीं किया। गाँधीजी ने फिर लड़ाई छेड़ दी। 12 जुलाई सन् 1908 को फिर सभा हुई। तय हुआ था कि आज सभी परवानों की होली जलाई जाये।

गाँधीजी ने पूछा–'आप लोग खुशी से दे रहे हैं अपने परवाने जलाने को?'

'हाँ, खुशी से। इसके लिए जेल जाना पड़ेगा तो हम खुशी से जेल जायेंगे।'

मीर आलम भी जेल से छूट आया था। वह उठकर खड़ा हुआ।

बोला–'गाँधी भाई लो मेरा भी परवाना जला दो। मैं तुम्हारा गुनहगार हूँ। उस वक्त मैं खुदा को भूलकर शैतान बन गया था। माफ कर दो मुझे। मैं तुम्हें पहचान नहीं पाया था। सच्चे बहादुर हो तुम। मुझे भी अपनी फौज का सिपाही बना लो।'

गाँधीजी ने मीर आलम को प्यार से गले लगा लिया। वे बोले – 'मीर आलम तुम मुझे अभी भी उतने ही प्यारे हो जितने पहले थे।'

जब शेर और भेड़िये भी दुम हिलाते हैं

हालीवुड में एक सिनेमा बन रहा था–'दि कॉल आफ दी वाइल्ड।' सिनेमा था जंगल के जानवरों पर । उसके लिए भेड़ियों की जरूरत थी। लारी ट्रिम्बल बोला–'मैं ट्रेनिंग दूँगा भेड़ियों को।'

बीस भेड़िये बीस एकड़ के मैदान में छोड़ दिये गये। लारी मांस के टुकड़े लेकर उनसे दोस्ती करने निकला। निर्भय होकर वह उनके बीच घूमने लगा। थोड़े ही समय के भीतर भेड़िये उसके पास आ-आकर उसके हाथ पर रखे मांस के टुकड़े खाने लगे। भेड़िये उसके साथ रहते, उसके पास ही सोते। सच है–प्रेम की भाषा जानवर भी समझते हैं, फिर भले ही वे कितने ही खूंखार क्यों न हों।

मारने वाले को मिठाई और शरबत

हजरत अली नमाज पढ़ रहे थे कूफा शही की मस्जिद में। अचानक उन पर किसी ने तलवार का वार किया। उन्हें बड़ी चोट आई। खून के फव्वारे छूटने लगे। कुछ लोग तो उनकी सेवा में लगे। कुछ मारने वालों को पकड़ने दौड़े।

अली को प्यास लगी। लोगों ने उनके लिए शरबत बनाया। तब तक लोग पकड़कर ले आये उनके मारने वाले को। वह उन्हीं का नौकर था, जो उनसे झगड़कर भाग गया था। अली बोले–'तुम लोगों ने मेरे लिए जो शरबत बनाया है, वह पहले इसे पिलाओ। भागते-भागते थक गया है बेचारा। हाँफ रहा है बुरी तरह से। जरूर वह प्यासा होगा।'

उसे शरबत पिलाया गया। हजरत ने उसे माफ कर दिया।

* * *

स्वामी उग्रानन्द उन्नाव जिले में विचर रहे थे। एक शाम को गाँव के बाहर एक पेड़ के नीचे वे पड़े थे गुदड़ी बिछाकर। रात में कुछ चोर गाँव से बैल चुराकर भागे। किसानों ने स्वामी जी को गाँव से बाहर पड़ा देख उन्हीं को चोर मान लिया। खूब मरम्मत की उनकी, लाठियों से, मुक्कों से। हालत यह हो गई कि उनके मुँह से खून बहने लगा। सवेरे वे उन्हें पकड़कर ले गये थाने। थानेदार ने उन्हें देखा तो दौड़कर बाहर आया और गिर पड़ा उनके चरणों में। किसान तो हक्के-बक्के! थानेदार ने किसानों को पकड़कर जब उनकी मरम्मत करनी चाही, तो स्वामी जी बोले–'देख, तू मेरा प्रेमी है तो इन्हें कुछ दण्ड न दे। इन्हें मिठाई मँगाकर खिला।'

लाख कहा थानेदार ने, पर स्वामी जी नहीं माने। मिठाई खिलाकर ही उन्होंने मारने वालों को विदा किया।

दण्ड में दे दे ईख का खेत इसी को

समर्थ रामदास थे शिवाजी महाराज के गुरू। एक बार वे अपने चेलों के साथ शिवाजी के पास जा रहे थे। रास्ते में ईख का खेत पड़ा। चेलों की तबियत न मानी। वे ईख तोड़-तोड़कर चूसने लगे। इतने में आ गया खेत का मालिक। चेले भाग गये। समर्थ बैठे थे एक पेड़ के नीचे।

खेत वाले ने सोचा–'इसी गुसाईं की करतूत है यह! इसी ने कह दिया होगा चेलों से कि उजाड़ दो इसका खेत।' उसने बुरी तरह पिटाई की समर्थ की। वे चुपचाप सारी मार झेलते रहे।

शिवाजी महाराज ने जब समर्थ की पीठ पर साँटें उछरी देखीं, तो पता लगाया कि बात क्या है। ईखवाला जब सामने आया तो शिवाजी ने पूछा–'गुरुदेव, क्या दण्ड दिया जाये इसे?'

समर्थ बोले–'क्या दण्ड देगा शिवा? दण्ड में दे दे अपना ईख का खेत इसी को।'

मैं उस घायल को देखूँगा

'प्रिन्स ऑफ वेल्स'—पहले के एडवर्ड अष्टम। एक दिन वे विश्व-युद्ध में घायल लोगों को देखने गये। इंग्लैण्ड के एक प्राइवेट अस्पताल में ऐसे 36 घायल पड़े हुए थे। अधिकारियों ने प्रिंस को अस्पताल में घुमाया। दरवाजे पर जब वह पहुँचे तो उन्होंने कहा कि—'आप लोग 36 घायल बता रहे थे पर मैंने तो 29 ही देखे।'

अधिकारियों ने कहा —'हुजूर बाकी लोग बुरी तरह घायल हैं। इसीलिए हमने उन्हें आपके सामने पेश नहीं किया।'

प्रिंस ने जोर दिया तो वे उन लोगों से मिलाने ले चलें। प्रिंस ने उन सबकी चारपाई के पास जा-जाकर सबसे कुछ देर बातें की और सबका उत्साह बढ़ाया। अधिकारी जब प्रिंस को बाहर ले चलने लगे, तो प्रिंस ने फिर पूछा—'और वह साँतवा घायल? यहाँ तो सिर्फ छः ही हैं।'

अधिकारी गिड़गिड़ाये—'क्या करियेगा हुजूर उसे देखकर! उसकी हालत बहुत ज्यादा खराब है। वह आँख से अन्धा हो गया है, कान से बहरा! वह दृश्य बहुत भयंकर है। हुजूर की तबियत घबड़ा उठेगी।'

'नहीं-नहीं, मैं उस घायल को जरूर देखूँगा।'

अधिकारियों ने फिर टालने की कोशिश की—'वह न देख सकता है, न सुन सकता है। क्या करेंगे हुजूर पास जाकर?'

पर प्रिंस ने जिद पकड़ ली। लाचार, उन्हें वहाँ ले जाना पड़ा। माँस का एक लोथड़ा प्रिंस की आँखों के आगे था। उसकी भरी जवानी युद्ध की भेंट हो चुकी थी। प्रिंस ने अँधकार में पड़ी हुई उस लोथड़े को बड़े गौर से देखा और आहिस्ता से उसका हाथ चूम लिया। कितना पवित्र था वह चुम्बन?

●●●

साहसी और मेहनती

मुसीबतें क्या करेंगी

शब हो, हवा हो, धूप हो, तूफाँ हो, छेड़ छाड़।
जंगल के पेड़ कब इसे लाते हैं ध्यान में॥
गर्दिश से रोजगार के हिल जाये जिसका दिल।
इन्सान होके कम है दरख्तों से शान में॥

आँधी हो, तूफान हो, हवा हो, धूप हो, सर्दी हो, गर्मी हो, रात हो, दिन हो—जंगल के पेड़ों पर उनका कोई खास असर नहीं होता।

आदमी होकर अगर कोई इन सब बातों से डर जाये, उसकी हिम्मत पस्त हो जाये तो वह आदमी तो इन दरख्तों से भी गया बीता ठहरेगा?

इन्सान वह है जो मुसीबतों से कभी घबराता नहीं। इन्सान वह है जो किसी से कभी डरता नहीं। इन्सान वह है जो सही रास्ते पर जाने से कभी झिझकता नहीं। कहा है—लक्ष्मी आये या चली जाये, लोग प्रशंसा करें या निन्दा, मौत चाहे आज ही आ जाये या बरसों बाद आये, मर्द वह है, जो न्याय के रास्ते से कभी भी अपना पैर पीछे नहीं हटाता।

* * *

साहस किसके लिए?

माना, साहस अच्छी चीज है। हिम्मत बढ़िया गुण हैं पर सवाल है कि साहस किस काम के लिए करें? हिम्मत किस काम के लिए करें?

साहसी तो डाकू भी होते हैं। चोर भी होते हैं। बदमाश भी होते हैं। पर चोरों का साहस, उठाईगीरों का साहस, डाकुओं का साहस, बदमाशों का साहस, साहस नहीं है। वह तो साहस के नाम पर कलंक है।

साहस तो वह है, जो भले काम के लिए किया जाता है। साहस तो

वह है जो दूसरों को सुख पहुँचाने के लिए किया जाता है। साहस तो वह है जो अपने को ऊपर उठाने के लिए, दूसरों को ऊपर उठाने के लिए किया जाता है।

विनोबा का भूदान का आन्दोलन, ग्रामदान का आन्दोलन, प्रखण्डदान का आन्दोलन, जिलादान का आन्दोलन साहस का ही तो आन्दोलन है। अच्छे काम के लिए, अच्छी खोज के लिए, देश की सेवा के लिए, देश की रक्षा के लिए, संसार के हित के लिए जो साहस किया जाता है, वही साहस है। दूसरों को सताने के लिए, दूसरों को दुःख देने के लिए, दूसरों को गिराने के लिए, निजी स्वार्थ के लिए किया जाने वाला साहस, साहस नहीं है। सच्चा साहसी खुद ऊपर उठता है। दूसरों को ऊपर उठाता है।

आओ, हम सब ऐसे ही साहसी बनें।

* * *

इसी कुर्सी पर आकर बैठूँगा

'अबे लड़के उठ। आकर बैठ गया इंजीनियर साहब की कुर्सी पर।' एक लड़के को उठाते हुए एक चपरासी ने कहा।

लड़के को बड़ी चोट लगी। शारीरिक नहीं, मानसिक। हाई स्कूल पास करके वह गया था इन्जीनियर साहब के दफ्तर में काम करने वाले अपने गाँव के एक आदमी से मिलने। वे जब मिलने आये तो पूछा—'बेटा, कैसे आये?'

लड़का बोला—'आया तो था किसी छोटी-मोटी नौकरी की तलाश में, पर अब मेरा इरादा बदल गया।'

'क्या?'

'यही कि आज मैं जिस कुर्सी पर से अपमानित करके उठा दिया गया हूँ, उसी कुर्सी पर आकर बैठूँगा।'

और सचमुच एक दिन वह उसी कुर्सी पर आकर बैठा। अपने साहस की बदौलत। अपनी मेहनत की बदौलत। मजा यह कि जिस इन्जीनियर साहब की वह कुर्सी थी, उन्हीं को उसके नीचे काम करना पड़ा।

इस लड़के का नाम था गंगाराम। पंजाब का यह गंगाराम सारे देश में मशहूर हुआ। उसने खूब कष्ट उठाकर इन्जीनियरिंग पास की। अपने हुनर में अच्छी से अच्छी योग्यता प्राप्त की। उसकी बनायी कृतियों पर पंजाब को नाज है। उसने खूब नाम कमाया। खूब रुपया कमाया। उसे 'सर' की उपाधि मिली। इतना ही नहीं, पैसे का उसने खूब अच्छा उपयोग भी किया। विधवाओं, गरीबों, अनाथों के आँसू भी पोंछे।

उनके लिए उसने जगह-जगह सहायता के केन्द्र खोले। इनका नाम है साहस। इसका नाम है लगन। इसका नाम है मेहनत।

आओ, हम बनें—ऐसे ही साहसी और मेहनती।

✠ ✠ ✠

मेहनत पूजा राम की

एक था बाण बनाने वाला कारीगर। अपने काम में दक्ष और माहिर। उसके बगल से एक बारात गुजर गई। बड़े बाजे-गाजे के साथ। दत्तात्रेय महाराज ने उससे पूछा—'क्यों भाई, इधर से कोई बारात निकली है?'

कारीगर हैरान सा होकर बोला—'कैसी बारात? यहाँ से तो कोई बारात नहीं निकली।'

बारात तो वहाँ से निकली ही थी। दत्तात्रेय ने उसे प्रणाम करते हुए कहा—'गुरुदेव मैं जब ध्यान करूँ तो मेरा मन इसी तरह एकाग्र हो जाये, जैसे बाण बनाते समय तुम्हारा मन एकाग्र रहता है।' यह एकाग्रता ही मेहनत की जान है।

✠ ✠ ✠

हिमालय की चोटी पर

29 मई 1953 की बात है। शेरपा तेनसिंह ने हिमालय की चोटी पर सबसे पहले चढ़कर भारत का तिरंगा झण्डा फहरा दिया। नेपाल, ब्रिटेन और राष्ट्रसंघ के झण्डे भी उसने फहरा दिये। 15 मिनट तक तेनसिंह हिमालय की चोटी पर रहा। न्यूजीलैण्ड के निवासी ई०पी० हिलेरी भी उसके साथ थे। उन्होंने उसका फोटो लिया। पलभर में सारी दुनिया में यह खबर फैल गई कि कर्नल हंट के पर्वतारोही दल ने हिमालय की चोटी पर विजय प्राप्त कर ली है।

तेनसिंह, हिलारी और कर्नल हंट के पास सारी दुनिया से बधाइयों के तारों का ताँता लग गया। नेपाल के महाराजा ने तेनसिंह को 'नेपाल-तारा' की उपाधि दी और दस हजार रुपये का पुरस्कार। नेपाल की महारानी ने उसे मोती-जवाहरात से जड़ी पीतल की एक संदूकची भेंट की।

नेपाल महाराज के खास विमान से तेनसिंह कलकत्ता पहुँचा। दस हजार नागरिकों ने बड़ी धूमधाम से उसका स्वागत किया। 'स्टेटसमैन' ने उसे 12 हजार रु० का एक चैक भेंट किया। भारत सरकार ने उसे वीरता का एक विशेष तमगा दिया। सारे देश में उसका सम्मान किया गया। वह सपरिवार इंग्लैण्ड बुलाया गया। महारानी एलिजाबेथ ने उसे 'नाहर' की उपाधि दी। भारत सरकार ने डाक-टिकटों पर एवरेस्ट के साथ शेरपा तेनसिंह का चित्र छापकर उसका सम्मान किया।

कैसी शानदार है यह विजय। पर जितनी शानदार है उतनी ही मँहगी भी है। पहाड़ों पर चढ़ना दाल-भात का कौर नहीं है। जरा पांव फिसला नहीं कि प्राण गये। ठंडी हवा शरीर को ऐसे बेधती है, मानो तीर। जरा सा तेज झोंका लगा कि बीमार पड़े। पहाड़ों पर साँस लेने में भी कठिनाई होती है। चारों ओर बर्फ के बीच चलना पड़ता है। बर्फ उड़-उड़कर आँखों में भी गिरती है। हरदम पैर फिसलने का डर रहता। खास तरह के

कीलों वाले जूते पहनकर ऊपर चढ़ना होता है। आँखों पर बर्फ से बचाने के लिए चश्मा लगाना पड़ता है। रात को आक्सीजन से भरे, प्राणवायु से भरे झोले के भीतर सोना पड़ता है। बर्फ में हल्के तम्बू गाड़कर बर्फ की आँधियों से बचना पड़ता है। कुल्हाड़ी से बर्फ काट-काटकर ऊपर चढ़ना होता है।

और सामान? शक्तिशाली स्फूर्ति देने वाला भोजन। ठंड से बचाने वाले मजबूत भारी-भारी ऊनी कपड़े। पहनने के भी, ओढ़ने के भी, बिछाने के भी। कीलें, रस्सियाँ, कुल्हाड़ी, चश्मा, टोपी, आक्सीजन की थैली, तम्बू आदि पचासों चीजों की जरूरत पड़ती है। जीवन के लिए सभी जरूरी चीजें चाहिये। हलकी से हलकी चीजें भी रखते हैं तो भी बड़ा बोझ हो जाता है। और वहाँ तो बिना किसी बोझ के एक-एक कदम चढ़ना दूभर होता है। फिर हिमालय की साढ़े पाँच मील ऊँची चोटी पर इतना सारा सामान पीठ पर लादे हुए चढ़ना कितना मुश्किल होगा—इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। दुनिया की सबसे ऊँची चोटी है यह।

तेनसिंह को बचपन से शौक था पहाड़ों पर चढ़ने का। नौ-नौ बार उसने हिमालय की चोटी पर चढ़ने की कोशिश की। अन्त में सफलता उसके हाथ लगी। साहसी आदमी के लिए हिमालय पर चढ़ना भी कौन मुश्किल है। हिम्मत करे तो आदमी क्या नहीं कर सकता?

✠ ✠ ✠

फेंक दो बैसाखी, आओ हम चलें

'मैं चाहता हूँ हवाई सेना में भरती होना, मौसा।' डगलस बाडर नाम के सोलह-सत्रह साल के एक लड़के ने अपने मौसा से कहा।

मौसा—सीरिल बर्ज—ब्रिटेन के एयर चीफ मार्शल के सहायक अफसर थे।

'बेटा, मैं तेरे लिए कोशिश तो करूँगा भरसक। पर दो साल का कोर्स है। 150 पौण्ड सालाना खर्च लगेगा। जेसी–तेरी माँ–इतना खर्च कर सकेगी?

छुट्टी में डगलस स्कूल से घर गया तो माँ से पूछा। माँ ने सिर हिला दिया। बोली–'न तो मेरे पास तेरी पढ़ाई पर खर्च करने को इतने पैसे हैं, न मैं यह चाहती हूँ कि तू हवाई सेना में भरती हो।'

आज तो हवाई सेना में भरती होने वालों को काफी भत्ता मिलता है, पर सन 1928 में ऐसा नहीं था। उस समय पढ़ाई का खर्च घरवालों को ही देना पड़ता था। माँ ने उसे बताया–'बेटा, तू तो सेंट एडवर्ड में भी न पढ़ता होता, अगर तुझ पर श्री डिंगवाल की कृपा न होती। दो-तीन साल से वे ही तेरी फीस की कमी पूरी कर रहे हैं।'

वाल्टर डिंगवाल थे उसके इतिहास के अध्यापक।

बर्ज का पत्र आया–'करनवेल के रायल एयर फोर्स कॉलेज में भरती होने वालों के लिए 6 पुरस्कार रहते हैं। कई सौ लड़के बैठते हैं प्रतियोगिता में। परीक्षा का स्तर बहुत ऊँचा रहता है। तेरी हिम्मत हो तो बैठ।'

गणित के अध्यापक से डगलस ने कहा–'मैं चाहता हूँ हवाई सेना की परीक्षा में बैठना। आप मदद करेंगे श्रीमान?'

यार्क साहब बोले–'मैं जानता हूँ कि तू उसमें बैठ सकता है, लेकिन तुम जब तक भरपूर मेहनत करने को तैयार न हो तो मैं व्यर्थ समय बर्बाद करने को राजी नहीं।'

'करूँगा श्रीमान! मैं जमकर मेहनत करूँगा।' की उसने मेहनत। परीक्षा में उसे बहुत अच्छे नम्बर मिले। पाँचवाँ स्थान आया। उसे पुरस्कार मिल गया। यार्क खुश हुआ। डिंगवाल ने उसे एक मोटर बाइक खरीद दी।

जून 1930 में डगलस बाडर की परीक्षा हुई। पास हुआ वह शान से। अफसरी कमीशन मिल गया उसे। हैंडन के हवाई प्रदर्शन में उसने कमाल के करतब दिखाये।

14 दिसम्बर सन 1939 की बात है। किसी ने उकसा दिया डगलस को 'थांथा' कहकर। वह विमान लेकर उड़ा बुडले के हवाई अड्डे पर। और तभी घट गई एक दुर्घटना। विमान टूटकर नीचे गिरा और डगलस की दोनों टाँगे ले बैठा। किसी तरह उसे बाहर निकालकर रायल बर्कशायर अस्पताल पहुँचाया गया। हालत खराब थी। डाक्टरों को उससे पूरी हमदर्दी थी, फिर भी उसकी दोनों टाँगें काट देनी पड़ी। एक घुटने के ऊपर से, एक नीचे से।

15 जनवरी को वह बिस्तर पर पहली मर्तबा उठकर बैठ सका। हाथों के बल खिसककर वह घुमावदार कुर्सी पर जा बैठा। घूमा थोड़ी देर। फिर उसने बैसाखियों पर चलना सीखा। धीरे-धीरे वह अकेले चलने लगा। टाँगों का अभाव उसे बुरी तरह खटकता। हवाई सेना में फिर काम करना चाहा तो कहा गया-'जमीन पर काम मिल सकता है तुम्हें। आकाश में नहीं।'

'मैं दया पर निर्भर रहूँगा? एक टाँग वाले को काम मिल सकता है, मेरी तरह दोनों टाँगें खोनेवालों को कोई पूछता नहीं।'-यह सोच-सोचकर डगलस का मन विद्रोह कर उठा।

रात में दोनों टाँगों के सपने देखता। उठता तो जी कचोट उठता-ऐसी जिन्दगी से तो मौत भली!'

रास्ते में लोग उँगली उठाते। कुछ लोग उस पर दया दिखाते, उसे बड़ा अटपटा लगता।

पर डगलस बना था दूसरी धातु का। हारना और परिस्थितियों के आगे घुटने टेकना उसने सीखा ही नहीं। माँ एक दिन आ गई कार लेकर

एक पखवारे के लिए। अक्सर वह डगलस को घुमाने ले जाती तीसरे पहर। एक दिन वह माँ से बोला–'माँ' तू इधर आ, मैं बैठूँ तेरी जगह।'

माँ तो भौंचक्की रह गई। बोली–'तू कार चलायेगा, बेटा?'

'देखूँ तो!'

माँ ने धीरे से अपना पैर हटाया। डगलस ने एक्सेलेटर पर अपनी कटी टाँग की खूँटी दबा दी। कार हवा से बातें करने लगी।

दो घण्टे घूमकर दोनों लौटे। माँ बोली–'तेरे साथ कोई रहे तो तू कार मजे से चला लेगा।'

'मेरे पास बैसाखी को दबाने को कुछ होता तो अकेले भी चला सकता हूँ।'

'क्यों नहीं तू मेरे छाते का प्रयोग करता?'

'ठीक तो! – प्रयोग सफल रहा। छाते की मदद से वह कार चलाने लगा।

डगलस ने कार चलाने, घुमाने आदि का अच्छा अभ्यास कर लिया। नकली टाँगें बनकर तैयार हो गयीं। डगलस उन पर चलने का अभ्यास करने लगा। डिस्सोटर उसे चलना सिखाता था। बोला–'डगलस, तुम क्यों व्यर्थ कल्पना करते हो कि बैसाखियों के बिना तुम कभी चल सकोगे।'

डगलस का जी विद्रोह कर उठा–'तुझे बिना बैसाखियों के ही चलना है। नहीं चाहिये मुझे बैसाखी।'

डिस्सोटर को सहानुभूति थी उससे। वह हौंसला बढ़ाता रहा उसका–'छोटे-छोटे कदम लो धीरे-धीरे चलो।

डगलस जरा दूर चलता। फिर लड़खड़ाकर गिरता। बार-बार गिरता। पर उसने तो तय कर लिया था कि मुझे फेंकनी है बैसाखी। अभ्यास से

क्या नहीं होता? डगलस को भी धीरे-धीरे चलने में सफलता मिलने लगी। आकाश में उड़ने और विमान चलाने में भी उसने पहले जैसी कुशलता प्राप्त कर ली।

पैट्रीशिया नाम की लड़की डगलस को प्यार करती थी। पर जब उसकी दोनों टाँगें जाती रहीं तो उसने साफ लिख दिया कि अब तुमसे शादी की बात सोचने का कोई मतलब नहीं!............' डगलस को खला तो बहुत, पर लाचारी थी। एक दिन हवाई-सेना विभाग का पत्र मिला-'तुम्हें हवाई सेना में आकाश का काम नहीं दिया जा सकता। तन्दुरुस्ती के आधार पर तुम्हें 'रिटायर' होना होगा। उसके लिए पेंशन और अपंगता का भत्ता मिलेगा।'

थेलमा नाम की लड़की एक होटल में काम करती थी। दोनों का एक दूसरे की तरफ झुकाव हो रहा था। डगलस ने निराश होकर उससे कहा-'क्या करूँ? दुनिया में मैं किसी के काम का नहीं। न मेरे पास टाँगें हैं न नौकरी है। न पैसा है!........'

थेलमा बोली-'परवाह नहीं। मैं तो कुछ पैसे पैदा कर लूँगी।'

बहुत आश्वस्त-सा डगलस लौटा अपने डेरे पर-'कोई है तो मेरा साथ देने वाला।'

कुछ दिन बाद डगलस को अपंगता का भत्ता और पेंशन मिली। हवाई सेना का काम उसने छोड़ दिया। एशियाटिक पैट्रोल कम्पनी में उसे अच्छा काम मिल गया। थेलमा से शादी करके वह सुखी जीवन बिताने लगा। वह टेनिस खेलता, गोल्फ खेलता, स्कूश खेलता। हर तरह के विमान चलाता।

सन् 1939 में विश्व युद्ध छिड़ा। डगलस बाडर ने फिर दरवाजा खटखटाया हवाई सेना का।

'जमीन पर तुम्हें काम मिल सकता है।'

'पर, मुझे तो आकाश में काम चाहिये।' एक पुराने अफसर से डगलस ने प्रेमभरी जिद की। डगलस के पिछले रिकार्ड से खुश था वह। उसने लिख दिया–'यदि यह अफसर अपने काम में दक्ष पाया जाये तो डॉक्टर इसे पास कर दें और इसे काम दिया जाये।'

काम में दक्ष तो वह था ही, डॉक्टरों ने भी उसे पास कर दिया। डगलस की कामना पूरी हुई। नवम्बर 1939 में फिर वह हवाई सेना में काम करने लगा।

डगलस पूरे उत्साह से जुट गया युद्ध में। लगातार उन्नति करता गया वह। कोई एक साल के भीतर उसे चार पुरस्कार मिले–डी०एस०ओ०ऑफ वार, डी०एफ०सी०ऑफ वार। दुश्मनों के छक्के छुड़ाने में वह मशहूर हो गया। सन 1941 में जब वह विंगकमाण्डर था तो उत्तरी फ्रांस पर विमानों से ऐसे नियमित हमले करता कि 'बाडर की बस सर्विस चालू है' ऐसा लोग कहते।

एक बार डगलस का विमान दुर्घटना में फंस गया। वह युद्ध-बन्दी बना लिया गया। पर बन्दी-शिविरों से भी उसने 4 बार भागने की कोशिश की। गज़ब की हिम्मत है उसमें। अप्रैल 1945 में अमरीकन फर्स्ट आर्मी ने उसे मुक्त कराया। वह जापान से लड़ने को उत्सुक था।

15 सितम्बर 1945 को नार्थ वील्ड स्टेशन के ग्रुप कप्तान के रूप में उसने विमानों की विजय-यात्रा का संचालन किया। सन् 1946 में हवाई सेना से मुक्ति लेकर फिर वह शैल पैट्रोलियम कम्पनी में काम करने लगा।

वह घूमता है सारी दुनिया में। युद्ध में अपंग बने लोगों से मिलकर उन्हें प्रेरणा देता है।

●●●

नम्र और सेवा-परायण

सेवा क्यों? किसकी? कैसे?

पेड़ों पर फल लदते हैं और वे और नीचे झुक जाते हैं।

'विद्या ददाति विनयम्।'

जिसे विद्या आती है, उसमें विनय आ जाती है। इसलिए जिसे ऊपर उठना हो, उसे नम्र बनना चाहिये। जिसे अपना और संसार का कल्याण करना हो, उसे नम्र बनना चाहिये।

बुद्ध नम्र थे। ईसा नम्र थे। गाँधी नम्र थे। संसार का कोई महापुरुष ऐसा नहीं, जो नम्र न रहा हो। हाँ, यह नम्रता होनी चाहिये असली। हृदय की। दिखावटी नहीं, सच्ची। आओ, हम भी नम्र बनें। हम भी विनीत बनें। हम भी खाकसार बनें। हम भी सच्ची नम्रता अपनाएँ।

सवाल है कि सेवा की कैसे जाये?

हमारे पास जो भी साधन हो—रुपया हो, पैसा हो, धन हो, दौलत हो, विद्या हो बुद्धि हो, लेखनी हो, ज्ञान हो, अनुभव हो—जो भी कुछ हो, उसी से हम सेवा कर सकते हैं। जरूर कर सकते हैं।

कुछ नहीं तो शरीर तो है, वाणी तो है, चरित्र तो है—उसी से हम सेवा कर सकते हैं। हम अपने सद्व्यवहार से सेवा कर सकते हैं। जी में सेवा की लगन हो, तो साधनों का टोटा कभी नहीं रहता।

बापू ने एक बार सेवा के इच्छुक एक रोगी को लिखा था—'हमें चाहिये कि रोग होते हुए भी हम सेवा करें। मिल्टन ने अन्धेपन में अपनी कलम से सेवा की, ऐसे ही प्रसिद्ध सूरदास ने। जो स्वस्थ है, शरीर से, मन से, आत्मा से सेवा करें।'

आओ, हम भी सेवा परायण बनें। छोटे-मोटे जो भी साधन हमारे पास हों, उन्हें लेकर हम सेवा के रास्ते पर निकल पड़ें।

हाँ, सेवा के लिए हम कोई भेदभाव न करें। उसका कोई पुरस्कार भी न चाहें। निःस्वार्थ भाव से सेवा करें। हमारे सामने जो भी आ जाये, उसकी हम भरसक सेवा करें।

* * *

जब मालवीय जी नहीं माने

महामना मदनमोहन मालवीय तब छोटे थे। एक दिन उन्होंने देखा कि एक कुत्ता पीड़ा से छटपटा रहा है। उसके कान के पास घाव हो गया है। बेचैनी से वह इधर से उधर दौड़ रहा है।

मालवीय जी से उसका दर्द देखा नहीं गया। उसकी सेवा के लिए वह आतुर हो उठे। वे पहुँचे औषधालय में। बोले–'वैद्यजी महाराज, एक कुत्ते को कान के पास घाव है। उसके लिए दवा दे दीजिये।'

वैद्य जी ने कहा–'मदनमोहन क्यों पड़ता है इस चक्कर में? ऐसे कुत्ते अक्सर पागल हो जाते हैं और छूने पर काट लेते हैं?'

पर मालवीय जी नहीं माने। उन्होंने दवा ली। कपड़े पर उसे डुबोया। एक लम्बे बांस में उसे लपेटा और खोजने निकल पड़े उस कुत्ते को।

एक गली में वह कुत्ता मिल गया। मालवीय जी उसे दवा लगाने लगे। दवा तेज थी। लगती थी तो कुत्ता गुर्राता था, दाँत निकालता था। कभी-कभी झपटने को तैयार हो जाता था। पर मालवीय जी तब तक नहीं माने, जब तक दवा लगा नहीं ली।

दवा लगने से कुत्ते की पीड़ा कम हुई। वह सो गया। तब मालवीय जी वहाँ से उठे।

●●●

सच्चे और अच्छे

सच्चा कौन, अच्छा कौन?

सच्चा वह होता है, जो सदा सच बोलता है, सच पर चलता है। उसका आचार सच्चा होता है। उसका व्यवहार सच्चा होता है। उसका विचार सच्चा होता है। वह जैसा सोचता है, वैसा ही बोलता है। वह जैसा बोलता है, वैसा ही करता है। उसके मन में जो बात रहती है, वही बात उसके मुँह से, उसकी वाणी से निकलती है। उसी बात को वह असल में, आचरण में लाता है। उसी को वह व्यवहार में लाता है।

जो बात उसके मन में है, वही वचन में, वही कर्म में। उसका मन, उसका वचन, उसका कर्म एक रहता है। जिस आदमी के मन में है एक बात, वचन में है दूसरी बात, करता है तीसरी बात, वह सच्चा नहीं है। वह झूठा है, पाखण्डी है, धोखेबाज है। बुद्ध सच्चे थे, ईसा सच्चे थे। गाँधी सच्चे थे। टॉलस्टॉय सच्चे थे।

और अच्छा आदमी कौन है?

अच्छा वह, जो अच्छा काम करता है। किसी को दिखाने के लिए नहीं। किसी मतलब के लिए नहीं। किसी स्वार्थ के लिए नहीं। अच्छा वह जो सबसे अच्छा व्यवहार करता है। सबसे मीठा बोलता है। सबका भला चाहता है। अच्छा वह जो किसी को सताता नहीं। किसी को दबाता नहीं। किसी को धोखा नहीं देता। अच्छा वह जो किसी के साथ बेईमानी नहीं करता। किसी की बहू-बेटी नहीं ताकता। किसी की जमीन-जायदाद नहीं हड़पता।

अच्छा वह, जो दूसरों के भले के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार रहता है। अच्छा वह, जो दूसरों की गाली खाकर भी, दूसरों से अपमान पाकर भी अच्छा रास्ता नहीं छोड़ता। अच्छा वह जो दूसरों का दुःख दर्द देखकर रो पड़ता है। दूसरों की सेवा-सहायता के लिए दौड़ पड़ता है।

अच्छा वह जो नेक है, ईमानदार है, सीधा है, सरल है। रामकृष्ण अच्छे थे। जवाहर अच्छे थे। विनोबा अच्छे थे।

भैया बाघ, ले मुझे खा ले।

कर्नाटक में ही नहीं, सारे दक्षिण भारत का एक बड़ा त्यौहार है मकर संक्रान्ति। उत्तर भारत में यह त्यौहार मनाते हैं, पर उतनी धूम से नहीं। उस दिन स्नान, तर्पण, दान तो होता ही है, किसान अपने गाय बैलों को खूब सजाता है। उनकी पूजा कर जुलूस निकालता है। फिर एक जगह पाँत-पाँत में आग लगाई जाती है। गाय-बैल उसे लाँघते हैं। इससे मानते हैं उनका अनिष्ट दूर हो गया है। कन्नड़ में इस प्रथा का नाम है—किचु हायिसुबुदु (अग्निलंघन)।

गाय बैलों का जुलूस निकालते समय किसान एक लोकगीत गाते हैं। 'गोंविन कथे' : 'गौ की कहानी।'

कैसी अच्छी कहानी है यह।

अरुणाद्रि पहाड़ के नीचे कालिंग नाम का एक ग्वाला था। कितनी ही गौएँ पाल रखी थीं उसने। गंगा, गौरी, तुंगभद्रा, पुण्यकोटि। पहाड़ों के बीच एक बाघ रहता था अर्बुद। गौएँ उसकी आवाज से सहम जातीं। भाग जातीं। एक दिन पुण्यकोटि अपने बछड़े की तलाश में अर्बुद की तरफ चली गई। अर्बुद खूब खुश हुआ। चलो अच्छा आहार मिला। उसने गाय का रास्ता रोक लिया।

गाय ने गिड़गिड़ाकर कहा—'व्याघ्रराज, मैं अपने बछड़े को घर छोड़ आई हूँ। उसे दूध पिलाना है। मैं उसे दूध पिलाकर अभी आ जाऊँगी। तब तुम मुझे खा लेना।'

अर्बुद बोला—'मैं ऐसा बेवकूफ नहीं कि घर आया आहार छोड़ दूँ। छोड़ भी दूँ तो इसका क्या ठिकाना कि तुम लौट ही आओगी।'

गाय ने बाघ को वचन दिया कि मैं जरूर लौट आऊँगी।

घर पहुँचकर उसने बछड़े को खूब प्यार किया, दूध पिलाया। फिर दूसरी गायों को उसे सौंपकर कहा—'अब मैं जाती हूँ अपना वचन पूरा करने।'

बछड़ा रोने लगा। पुण्यकोटि बोली—'बेटा, मेरे लाल, मैं अपने वचन से भ्रष्ट नहीं हो सकती, यह तुम निश्चित जान लो।'

सत्यवे नम्म तायि-तन्दे सत्यवे नम्म बन्धु-बलगवु।
सत्यवाक्य के तप्पि नडेदरे अच्युता हरि मेच्चनु।।

'सत्य ही हमारा माँ-बाप है। सत्य ही हमारा भाई-बन्धु है। यदि हम सत्य से चूक जायें, तो अच्युत भगवान प्रसन्न नहीं होंगे।'

बछड़े को प्यार करके रोती हुए गाय चल पड़ी। नदी में नहाकर गुफा पर पहुँची। उसने बाघ को पुकारा-'भैया बाघराज, पधारो। तुम देर से भूखे हो। मुझे पाप लगेगा। आओ, जल्दी से आकर मुझे अपना कौर बना लो।'

व्याघ्र सोचने लगा ऐसी सत्यवती गौ को अगर मैं मारकर खाऊँगा तो क्या भगवान मुझ पर प्रसन्न होंगे? बोला-'तुम मेरी सगी बहन हो? तुम जैसी सत्यनिष्ठ को खाकर मैं क्या पाऊँगा? मैं तुम्हारे चरणों में पड़कर जान दे दूँगा। तुम्हारे दर्शन से मेरे पाप कट गए।'

पुण्यकोटि बोली-'ऐसा मत करो भाई! मुझे खाकर तुम अपनी क्षुधा शान्त कर लो। मेरा यह काम भगवान को अच्छा लगेगा।'

अर्बुद रो पड़ा-'हाय मैंने कितना पाप किया है।'

तभी उसके प्राण छूट गये। ब्रह्मा, विष्णु, महेश सब देवता उसके त्याग से गदगद हो गये। विष्णु ने गाय को प्यार से थपकी देकर उसके घर भेज दिया। कैसी सच्ची गाय। कैसा सच्चा बाघ। धन्य है ऐसी सत्यनिष्ठा। धन्य है ऐसा त्याग।

मुझे १०८ बाद गोदावरी नहाने को मिली

एकनाथ महाराज गोदावरी में स्नान करने जाते। रोज जाते। एक दिन जब वे नहाकर लौट रहे थे तो रास्ते में पड़ने वाले एक सराय में रहने वाले एक पठान ने उन पर कुल्ला कर दिया। एकनाथ महाराज फिर जाकर स्नान कर आये। नहाकर रोज वे उसी रास्ते से निकलते और वह रोज उन पर कुल्ला कर देता। वे लौटकर फिर नहा आते।

एक दिन उस पठान को सनक सी सवार हो गई। देखें, कब तक इस साधु को गुस्सा नहीं आता। पहली दफा वे नहाकर लौटे तो उसने उन पर कुल्ला कर दिया। दूसरी बार नहाकर लौटे तो उसने फिर उन पर कुल्ला कर दिया। दो बार, तीन बार, चार बार, दस बार, बीस बार, पच्चीस बार–होते होते संख्या जा पहुँची 108 पर। एकनाथ महाराज हर बार लौटकर गोदावरी में स्नान कर आते।

108 बार स्नान करके जब वे लौटे तो पठान उनके पैरों पर गिर पड़ा। बोला–'बाबा जी, माफ करें। आज मेरी बदमाशी की हद हो गई। मैं देखना चाहता था कि आपको कभी तो गुस्सा आयेगा। पर आपने दिखा दिया कि आदमी कितना अच्छा हो सकता है, कितना सहनशील! अपनी नालायकी के लिए मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ। आपने अपने उपकार से मुझे लाद दिया। आप खुदा के सच्चे बन्दे हैं। मुझे माफ कर दें।'

एक नाथ बोले–'भैया, उपकार तो तुम्हारा ही है, मुझ पर। तुम्हारी कृपा से आज मुझे 108 बार गोदावरी माता के स्नान का पुण्य मिला।'

शिवाजी, तू फरिश्ता है फरिश्ता

शिवाजी महाराज एक दिन रास्ता देख रहे थे अपने सेनापति का। वह आया तो उसके हाथ में कुरान शरीफ थी और बगल में थी एक डोली। बोला, छत्रपति! आज मुगल सेना दूर तक खदेड़ दी गई। बेचारा बहलोल भाग गया जान बचाकर। उसकी बीवी अपनी सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध है। उसी को पकड़ लाये हैं आपकी सेवा के लिए और यह है कुरान!'

छत्रपति ने कुरान शरीफ को लेकर चूमा। फिर डोली के पास आकर बहलोल की बेगम को बाहर आने को कहा। उसे देखकर शिवाजी बोले–'सचमुच तू बड़ी ही सुन्दर है। काश, मैं तेरे पेट से पैदा हुआ होता तो मैं भी कुछ सुन्दरता पा जाता।'

फिर दूसरे अधिकारी को बुलाकर कहा–'आप इस बेगम को और कुरान शरीफ को पूरे आदर और सम्मान के साथ बहलोल खाँ को सौंप आइये।'

उसके चले जाने पर शिवाजी अपने सेनापति पर बुरी तरह बिगड़ पड़े–'आप इतने दिन से मेरे साथ हैं और मुझे पहचान नहीं पाए। यह

कौनसी बहादुरी हैं कि दूसरों की बहू-बेटियों की इज्जत लूटी जाये? उनके धर्मग्रन्थों की होली जलाई जाये। ऐसा करना तो घोर कायरता है, नामर्दी है। वीरों को ऐसी चीजें कभी शोभा नहीं देती हैं।'

बहलोल खाँ ने जब बेगम को आदर से वापस आते देखा और कुरान शरीफ की इज्जत होती देखी तो वह पानी-पानी हो गया। उसने प्रार्थना की शिवाजी से मिलने की। नियत समय पर देखा शिवाजी मशाल लिए अँधेरे में बहलोल का इन्तजार कर रहे हैं। आते ही बहलोल 'फरिश्ता' कह कर लिपट गया शिवाजी से। बोला-'शिवाजी!' तू फरिश्ता है, फरिश्ता।'

फिर वह शिवाजी के पैरों पर गिरने लगा-'ऐ फरिश्ते, माफ कर दे मुझे। बेगुनाहों का खून है मेरे माथे पर। मुझे दुनिया में रहने का हक नहीं। सिर्फ तेरे कदम चूमने को रुका था।'

कटारी से उसने आत्महत्या करनी चाही। शिवाजी ने उसे पकड़कर गले लगा लिया और उसकी छूरी छीनकर दूर फेंक दी।

* * *

वकील भी सच्चे हो सकते हैं!

लोग कहते हैं कि वकील का पेशा ही झूठ का पेशा है।

'घोड़ा घास से यारी करेगा तो खाएगा क्या?' वकील झूठ नहीं बोलेगा तो कमायेगा क्या?

बात ऐसी नहीं है। वकील भी सच्चे हो सकते हैं, अच्छे हो सकते हैं। गाँधी जी, मोहनदास करमचन्द गाँधी ऐसे ही वकील थे। दादा मावलंकर, गणेश वासुदेव मावलंकर ऐसे वकील थे। जाजूजी, श्रीकृष्णदास जाजू ऐसे ही वकील थे।

ये लोग साफ कहकर सच्चे ही मुकदमे लेते। यदि बीच में कहीं पता चल जाता कि मुकदमा झूठा है तो वहीं उसे छोड़ देते। साथ ही इस बात की भी कोशिश करते कि लड़नेवाले पक्ष जहाँ तक हो लड़ें नहीं। आपस में मिल जायें। सच्चा और अच्छा ऐसा ही करता है।

गाँधीजी को अफ्रीका में एक मुकदमा मिला। लाखों की सम्पत्ति का मामला था। मुकदमा चलाने वाला पक्ष जीत गया। तभी गाँधीजी को पता चला कि इसमें हिसाब-किताब की कुछ गड़बड़ी है। उन्होंने कहा कि मैं इसे जाहिर कर दूँगा, फिर फैसला कुछ भी हो। उनका बड़ा वकील गुर्राया: 'तब मैं इसमें वकालत न करूँगा।'

'ठीक? आप मत करिये। मैं करूँगा।'—गाँधीजी ने कहा।

जज को गाँधीजी ने सारी बातें विस्तार से समझायीं। वह मान गया। फैसला पक्ष में दे दिया। सत्य की विजय हुई।

✠ ✠ ✠

दादा मावलंकर ने वकालत शुरू की थी, तभी बेदखली के कुछ मुकदमे उन्हें मिलने लगे।

एक डिप्टी कलेक्टर उनका मित्र था। वही सुनने वाला था उन बेदखली के मुकदमों को। मावलंकर ताड़ गये कि ये मुकदमें लेकर लोग इसीलिए मेरे पास आए हैं कि अफसर मेरा मित्र है। उन्होंने इन लोगों से पूछा 'इस अफसर से मेरी दोस्ती है इसलिए आप ये मुकदमें मेरे पास लाये हैं कि मैं आपके पक्ष में फैसला करा दूँगा।'

वे बोले: 'नहीं-नहीं ऐसी बात नहीं। हम तो आपका नाम और आपकी तारीफ सुनकर आये हैं।'

'ठीक है। तब आप घर जाइये और चैन से आराम करिये। यदि आपको जँचे तो कल मेरे पास आइये। शर्त यही है कि आपको वकील के नाते मेरी योग्यता पर भरोसा है, न की अफसर की दोस्ती का।'

दूसरे दिन 30 व्यक्तियों में से सिर्फ 1 आदमी अपने मुकदमें के कागज लेकर उनके पास आया।

मावलंकर चाहते तो तीसों मुवक्किलों को कहकर मुकदमे ले सकते थे। पर सत्य का कोई पुजारी ऐसा कर कैसे सकता है?

सुशील और सहनशील

सिर्फ ये नुपुर पहचानते हैं, और कुछ नहीं!

रावण जब सीता को हर ले गया तो वे रास्ते में रोती जाती थीं और एक-एक कर अपने गहने फेंकती जाती थीं। राम जब सीता को खोजने निकले तो उन्हें ये गहने मिले। लक्ष्मण राम के साथ थे। राम ने पूछा-'लक्ष्मण, तू पहचानता है इन गहनों को?'

लक्ष्मण ने उनमें से नूपुरों को पहचानते हुए कहा-'भैय्या मैं सिर्फ ये नूपुर पहचानता हूँ, और कुछ नहीं।'

नाहं जानामि केयूरे, नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि, नित्यं पादाभिवन्दनात्।।

'न तो मैं पहचानता हूँ केयूर को। न मैं पहचाता हूँ कुण्डलों को। मैं तो केवल नूपुरों को पहचानता हूँ। प्रतिदिन सीतामाता के चरणों की मैं वन्दना करता था, इसलिए इन नूपुरों को ही मैं पहचानता हूँ।'

ब्रह्मचारी किसी भी स्त्री को, किसी भी लड़की को माता के ही रूप में देखता है। माँ के चरणों से ऊपर उसकी दृष्टि ही नहीं जाती।

यही कारण था कि लक्ष्मण सीता के केवल नूपुरों को ही पहचान सके।

✠ ✠ ✠

ले, आज से मैं तेरा बेटा!

बड़े-बड़े नेत्र, चौड़ा ललाट, विशाल भुजाएँ, चौड़ी छाती। सुन्दर-सुगठित शरीर, ऐसे थे महाराज छत्रसाल।

प्रजा का हाल-चाल लेने के लिए अकसर वे अकेले घूमते रहते। एक दिन एक स्त्री उनके सामने आकर बोली-'मैं बड़ी दुखिया हूँ।'

'क्या कष्ट है तुम्हें देवी?'–महाराज ने पूछा।

'आप उस कष्ट को दूर कर सकते हैं। आप वचन दें तो मैं कहूँ।'

'सम्भव होगा तो जरूर तुम्हारा कष्ट दूर करूँगा।'

बहुत गिड़गिड़ाकर वह बोली–'मेरे कोई सन्तान नहीं है। पति इसमें असमर्थ है। मुझे आपके जैसा ही बेटा चाहिये।'

छत्रसाल स्तब्ध रह गये। कोई स्त्री उनसे ऐसी बात कहेगी, वे ऐसा सोच भी न सकते थे।

पलभर सोचने के बाद वे बोले–'तुझे बेटा ही चाहिये न? ले, आज से मैं तेरा बेटा !'

✠ ✠ ✠

मुझे इनकी माँ को निपूती नहीं बनाना है!

द्रौपदी के पाँचों पुत्रों की लाशें पड़ी थीं उसके आगे। माँ के सभी पुत्र मारे जायें–इससे बढ़कर उसके लिए और कौन दुःख हो सकता है?

अर्जुन अश्वत्थामा को पकड़ लाये। भीमसेन गरजे–'हमारे बेटों को मारनेवाले इस दुष्ट का सिर तत्काल उड़ा देना चाहिये।'

तभी दुःख से व्याकुल द्रौपदी सबके बीच आ खड़ी हुई। बोली–'मैं तो निपूती बनी ही, पर गुरु-पत्नी को मैं निपूती नहीं बनने दूँगी। बेटे के मरने का दुःख माँ ही महसूस कर सकती है। माना, इन्होंने हमारे बेटों को मार डाला, पर इन्हें मारने से इनकी माँ को कितना दुःख होगा, यह मैं समझ सकती हूँ। इसलिए इन्हें छोड़ दो।'

पुत्रों की हत्या करने वाले को भी जो क्षमा कर दे, उसकी सहनशीलता का भी कोई पार है? धन्य है द्रौपदी की यह शानदार क्षमा।

✠ ✠ ✠

तुम्हारी गाली मैं लेता ही नहीं

भारद्वाज एक ब्राह्मण था। भगवान बुद्ध की बातों का उस पर ऐसा असर हुआ कि वह उनका शिष्य बन गया।

भारद्वाज का एक रिश्तेदार पहुँचा बुद्ध के पास और लगा गालियाँ देने। गाली देने से गाली बढ़ती है। जवाब न मिले तो कोई कब तक बकता रहेगा?

बुद्ध भगवान चुपचाप सुनते रहे। फिर पूछा—'क्यों भाई, तुम्हारे घर कभी मेहमान आते हैं कि नहीं?'

'आते तो हैं।'

'तुम उनका स्वागत सत्कार करते हो कि नहीं।'

'मेहमानों का स्वागत कौन न करेगा?' 'मान लो कि तुमने अपने मेहमान को कोई चीज दी और उसने उसे नहीं लिया तो वह चीज कहाँ जायेगी?'

'जायेगी कहाँ?'—ब्राह्मण झुँझलाकर बोला—'मेरे पास ही रहेगी?'

बुद्ध भगवान बोले—'तो भद्र, तुम्हारी दी गाली मैं लेता ही नहीं। अब कहाँ जायेगी वह?'

ब्राह्मण शरमा गया। उसने अपनी अभद्रता के लिए बुद्ध भगवान से क्षमा माँगी।

* * *

जब रामदास ने पुतना की बत्ती बनाई

'जय जय रघुवीर समर्थ!' समर्थ रामदास ने एक दरवाजे पर आवाज लगाई।

गृहणी चौका पोत रही थी। वही पुतना उसने उन्हें दे मारा—'यह ले भिक्षा।'

समर्थ रामदास ने प्रेम से स्वीकार किया इस भिक्षा को। आशीर्वाद देकर चल दिये। वे नदी पर पहुँचे। पुतना को धोकर उन्होंने साफ किया। फिर उसकी बत्तियाँ बनाईं। उन बत्तियों को घी में भिगोकर समर्थ ने

भगवान् की आरती की। उन्होंने भगवान से प्रार्थना की–'हे प्रभु, जैसे इस बत्ती से अंधकार दूर हो रहा है, उस तरह आप पुतना देने वाली उस बाई के हृदय का अन्धकार दूर कर दें।

भक्त की प्रार्थना सफल होती है। पुतनी मारने वाली बाई के हृदय में भी प्रकाश फैला। उसने समर्थ के चरणों में गिरकर क्षमा माँगी। प्रभु ने उसका हृदय निर्मल बना दिया।

उमा सन्त की इहइ बड़ाई।
मन्द करत जो करइ भलाई।

* * *

देखना, बेचारा ब्राह्मण गिर न जाये!

सन्त एकनाथ एक दिन पूजा कर रहे थे। एक ब्राह्मण आकर उनकी गोद में बैठ गया। वे हँसकर बोले–'भैया, तुम्हारा प्रेम तो अद्‌भुत है। मुझे बड़ा आनन्द हुआ।'

दोपहर को भोजन के लिए थाल परोसे गये। घी परोसने के लिए एकनाथ की पत्नी गिरिजाबाई जैसे ही ब्राह्मण के पास आई कि वह उठकर जल्दी से उनकी पीठ पर सवार हो गया। एकनाथ ने अपनी पत्नी से कहा–'देखना, बेचारा ब्राह्मण गिर न जाये।'

वे मुस्कुराकर बोली–'नहीं–नहीं। वह गिरने न पायेगा। मुझे हरि–बेटे–को पीठ पर लादे रहने का अभ्यास है। इस बच्चे को मैं कैसे गिरने दूँगी?'

ब्राह्मण शरमाकर एकनाथ के चरणों पर गिर गया। बोला–महाराज, मैं बहकावे में आ गया था कि एकनाथ महाराज को गुस्सा दिला दो तो दो सौ रुपया इनाम दिया जायेगा। तभी मैंने आपके साथ ऐसा बुरा व्यवहार किया। धन्य है आपकी सहनशीलता।'

एकनाथ ने प्रेम से उसे उठाकर कहा–'जाने दो भैया, क्या रखा है इन बातों में? आओ, हम लोग भोजन शुरू करें।'

धर्मग्रन्थों की कथाएँ

राज्याभिषेक के आँसू

भगवान् राम की वनवास की अवधि का आज अन्तिम दिन था। अत्याचारी रावण का वध हो चुका था। लंका के सिंहासन पर विभीषण को बैठाकर देश को निष्कण्टक बना दिया गया था। अतः अब मर्यादापुरुषोत्तम राम का ध्यान अपनी जन्मभूमि अयोध्या की ओर गया। जहाँ के नर-नारी उत्सुकता भरे नेत्रों से उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। विभीषण, सुग्रीव, अंगद व हनुमान सहित प्रभु राम, माता जानकी व लक्ष्मण को लेकर पुष्पक विमान जैसे ही अयोध्या पहुँचा, गगनभेदी जय-जयकार से उसका स्वागत किया गया। सारा नगर दीपमालाओं से जगमगा रहा था, नगर में सैकड़ों स्थानों पर तोरण द्वार बनाये गये थे। अयोध्या नगरी खुशी में झूम उठी थी। उनके प्राणप्रिय राम जो आज पधारे थे।

स्वागत सत्कार, आनन्दोत्सवों में दिन पर दिन बीतते चले गये। देखते-देखते वह सुखद दिन भी आ पहुँचा जब प्रभु रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक होना था। नगरवासी तो आज फूले नहीं समा रहे थे। घर-घर मंगल वाद्य बज रहे थे। अयोध्या की राज्यसभा आज खचाखच भरी हुई थी। दूर-दूर से पधारे राजा-महाराजा अपने सिंहासनों पर सुशोभित थे। निर्धारित शुभ मुहूर्त में जनकसुता के साथ प्रभु राम ने पदार्पण किया। तुमुल जयनाद व पुष्पवर्षा से उनका स्वागत किया गया। वाद्यमंत्रों ने मंगल ध्वनि की। आगे बढ़कर महर्षि वशिष्ठ ने उन पर गंगाजल छिड़का व सिंहासन पर बैठाकर राज्याभिषेक किया। वेदमंत्रों के मंत्रोच्चार से राजमुकुट पहनाकर उन्हें धर्मदण्ड प्रदान किया गया। 'मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी की जय' के घोष से आकाश गूँज उठा।

राज्याभिषेक के उपरान्त उपस्थित नरेशों के द्वारा एक-एक करके सम्राट के श्रीचरणों में भेंट अर्पित की गई। अब उपहारों व दान की बारी थी। ऋषिगण, साधु, संन्यासी व ब्राह्मणों को मुक्त हस्त से विपुल दान दिया गया। प्रभु राम ने उपस्थित प्रत्येक राजा को अपने हाथों से सम्मान सूचक भेंट अर्पित की। भेंट

अर्पण का यह कार्यक्रम चल रहा था। सभाभवन में अपूर्व शान्ति फैली हुई थी। अनायास ही प्रसन्न वदन महारानी सीता की दृष्टि विभीषण पर जा पहुँची। देखते ही वह भौंचक्की सी रह गई। लंकाधिराज विभीषण के चेहरे पर विषाद की रेखाएँ, मुख पर उदासी, आँखों में आँसू...सब कुछ देखकर वह चंकित रह गईं। क्या कारण है? आनन्द के इस उत्सव में दुःख कैसा? माता जानकी भाव विह्वल हो उठीं। संकेत द्वारा उन्होंने प्रभु राम का ध्यान इस ओर आकर्षित भी किया। रामचन्द्रजी ने उधर देखा परन्तु मुस्कुराभर दिये। जनकसुता के लिए इतना पर्याप्त न था। उनकी आँखों में बेचैनी थी। कारण खोजने के लिए व्याकुल हो उठीं। अनायास उनकी दृष्टि सुग्रीव पर पड़ी। अरे! यह क्या? किष्किन्धा नरेश सुग्रीव तो रो रहे थे। अविरल अश्रुधार बह रही थी। माता जानकी इसे देख व्यग्र हो उठीं। उन्होंने पैर से कुरेद कर प्रभु रामचन्द्रजी का पुनः ध्यान आकर्षित किया परन्तु वे अभी भी अविचलित थे। उनके चेहरे पर अभी भी मुस्कान विराजमान थी। इस बीच महाराज विभीषण के सजल नेत्र अपना बाँध तोड़ चुके थे। अविरल अश्रुधार व सिसकियाँ देखकर भगवती सीता से न रहा गया। उन्होंने प्रभु राम को झकझोरते हुए कहा, 'इस मंगलमयी अवसर पर महाराज विभीषण व सुग्रीव रो रहे हैं। क्या कारण है?'

मुस्कान पूर्ववत् रखते हुए वे बोले, 'इतनी व्यग्रता है तो तुम ही खुद पूछ क्यों नहीं लेतीं?'

माता जानकी का धैर्य टूट चुका था। वे जगज्जननी जो ठहरीं। माँ की विह्वलता ने उन्हें बेचैन बना दिया था।

'लंकेश! राज्याभिषेक के इस पुनीत अवसर पर आपकी आँखों में आँसू, चेहरे पर विषाद की रेखायें, क्या कारण है? क्या आपकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध कोई बात हो गई है? क्या हमारे किसी सभासद् द्वारा मान-मर्यादा के विपरीत व्यवहार हो गया?' महारानी की वाणी राज्यसभा में गूँज उठी। भेंटोपहार का कार्यक्रम रुक गया। सर्वत्र निस्तब्धता छा गई। सभी की दृष्टि उन्हीं पर केन्द्रित थी। सभी अवाक् थे क्या गज़ब हो गया?

'और सुग्रीव तुम दुःखी क्यों हो?' कहते-कहते महारानी का गला रुँध गया। वातावरण गम्भीर बन चुका था। दोनों की सिसकियाँ मात्र ही अब सुनाई पड़ रही थीं।

'हे जगज्जननी ! हमें समझने की भूल न की जाये। आप जैसी माँ पाकर हम पुत्रों को कष्ट कैसा? प्रभु के राज्य में अपमान! यह अकल्पनीय बात है।' विभीषण बोल उठे।

'सच तो यह है कि अयोध्या ने जो मान-सम्मान, प्रतिष्ठा व स्नेह हमें प्रदान किया है वह अतुलनीय है, असीम है। चिरस्मरणीय है।' सुग्रीव ने निवेदन किया।

गुत्थी सुलझी न थी। जिज्ञासा शान्त न होने तक चैन कैसा?

'फिर नेत्रों से यह अश्रुधारा कैसी? चेहरे पर यह विषाद के भाव क्यों?' जनकसुता ने प्रश्न दुहराया।

'इसमें आपका दोष नहीं है माँ। यह तो हमारे कर्मों का फल है,' विभीषण ने उत्तर दिया। स्थिति स्पष्ट करते हुए बोल उठे, 'हम सचमुच बड़े अभागे व्यक्ति हैं। राज्याभिषेक के अवसर पर चाहिये तो यह था कि हम राघवेन्द्र के दर्शनों का रसपान करें परन्तु हम से भूल हो गई। भेंट, उपहार के इस कार्यक्रम में हमारी दृष्टि हटकर जा पहुँची लक्ष्मण जी की ओर। कैसे भाव-विभोर होकर वे प्रभु पर चँवर डुला रहे थे।'

'और मेरी दृष्टि जा टिकी थी कैकेयी नन्दन भरत पर। वे पंखा झलने में कैसे अपूर्व आनन्द का अनुभव कर रहे थे।' सुग्रीव हाथ जोड़े विनीत स्वर में बोल उठे।

'यह तो विषाद का कारण नहीं हो सकता।' महारानी सीता नें जिज्ञासा प्रकट करते हुए कहा।

'माँ! आप इसे न समझ सकेंगी। भरत व लक्ष्मण पर दृष्टि पड़ते ही हमारा ध्यान भंग हो गया। मैं भावधारा में बह उठा। मैं सोचने लगा, कैसे भाग्यशाली हैं मेरे प्रभु? प्राणों का मोह छोड़कर जिसने उनकी सेवा की, कैसा निष्कपट है उस लक्ष्मण का उनके प्रति प्रेम। आज चँवर डुलाने में मस्त है।' बात जारी रखते हुए लंकाधिराज बोल उठे।

'भरत! इन जैसा भाई पाकर कौन भाग्यशाली न होगा। राज्य पाकर भी राज्य त्याग किया, भाई की पादुका सिंहासन पर रखकर, तपस्वी वेश

पहिन राज्य का संचालन किया तथा चौदह वर्ष बाद भाई को सिंहासन पर बैठाकर आज उनकी सेवा करने में आनन्दविभोर है........मेरे मानस पटल पर यही विचार गूँज रहा था।' सुग्रीव कहे जा रहे थे।

'जगज्जननी जिस विचार ने हमें झकझोर डाला है वह यह था। कैसी भाग्यशाली है यह भरत भूमि, कैसा विलक्षण है इस देश का आदर्श? कैसी विभूतियों की जन्मदात्री है यह माँ? एक ओर हैं भरत और लक्ष्मण जो बड़े भाई के राज्याभिषेक के अवसर पर भावविभोर सेवा कर रहे हैं तथा दूसरी ओर एक अभागा मैं हूँ जो बड़े भाई का वध करवा कर राजा बना हूँ।' कहते-कहते विभीषण का गला रुँध गया।

'और ! मैं ! मुझसे अभागा कौन होगा माँ। मैंने तो राज्य पाने के लालच में अपने हाथों अपने बड़े भाई की हत्या की थी।' कहते-कहते सुग्रीव बिलख-बिलखकर रोने लगे।

राज्यसभा स्तब्ध थी, वातावरण गम्भीर था, दोनों नरेशों के नेत्रों से अश्रुधार निरंतर बही चली जा रही थी। लंकाधिराज कह रहे थे, 'माँ ! मन का विषाद का कारण मेरा यह दुर्भाग्य ही था। यह आँसू पश्चात्ताप के आँसू हैं। आज जो कुछ हमने अपनी आँखों से देखा है। राम-राज्य के इस प्रथम दर्शन में जो कुछ देखा है, भरत-भूमि का जो साक्षात्कार किया है यह अवर्णनीय है, अकल्पनीय है।'

'मेरी तो विनती यही है कि जन्म-जन्मान्तर तक इन्हीं आदर्शों की उपासना करता रहूँ। जन्म लूँ तो यहीं पर, पुनर्जन्म लूँ तो यहीं पर तथा भरत सा भाई बनकर इस जन्म के पाप धो डालूँ।' कहते-कहते किष्किंधा नरेश सुग्रीव का कंठ रुँध गया।

भ्रम के बादल छँट गये। जनकसुता ने आगे बढ़कर दोनों के आँसू पोंछे। दोनों ने उनका चरण-वन्दन किया। विषाद मिट गया। प्रसन्नता चेहरे पर दमक उठी। सन्तोष की आभा फूट पड़ी तथा भेंटोपहार का कार्यक्रम पुनः प्रारम्भ हो गया।

●●●

हृदय जीत लिया तो सफलता निश्चित है

[हम अपने जीवन में हजारों व्यक्तियों से मिलते हैं। उनसे हमें सैकड़ों काम पड़ते हैं। यह व्यक्ति अनेक प्रकार के होते हैं, छोटे, बड़े, वृद्ध, बालक, विद्वान आदि। सभी लोगों के साथ एक ही ढंग से बात नहीं की जाती हैं। कुछ को हम 'आप' कहकर पुकारते हैं और कुछ को 'तुम'। अपनों से बड़ों के प्रति आदर सहित बोलना हमारा कर्त्तव्य होता है। मीठा बोलना सदैव लाभदायक रहता है। कोई भी काम करने से पूर्व अपने से बड़ों का आशीर्वाद हमें अवश्य लेना चाहिये। उनका आशीर्वाद हमें बड़ी शक्ति देता है। उससे सफलता हमारे चरण चूमने लगती है।]

हजारों वर्ष पुरानी बात है। हमारे देश में एक बहुत बड़ा युद्ध हुआ था। वह महाभारत के नाम से प्रसिद्ध है। कुरुक्षेत्र का मैदान उसी के कारण प्रसिद्ध है। वहाँ की मिट्टी के कण-कण में हमारे पूर्वजों का रक्त समाया हुआ है। पाण्डवों व कौरवों की सेनायें उस दिन लड़ने के लिए तैयार खड़ी थीं। दोनों सेनाओं के करोड़ों सैनिक शस्त्रों से सज्जित थे। कौरवों के पक्ष में पितामह भीष्म, गुरू द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, महाराज शल्य सरीखे महारथी मौजूद थे। युद्ध का शंखनाद बजने ही वाला था। युद्ध के नगाड़े बजते ही भयंकर मार-काट मचने लगती। रक्त की नदियाँ बहने वाली थीं। इस युद्ध में भाई-भाई, चाचा-भतीजे, सगे-संबंधी लड़ने जा रहे थे। यह युद्ध पाप का पुण्य से, धर्म का अधर्म से, न्याय का अन्याय से युद्ध था।

इसी समय एक अजीब घटना घट गई। पाण्डवों के नेता महाराज युधिष्ठिर रथ से उतर पड़े। उन्होंने शस्त्र त्याग दिये। शरीर की रक्षा करने वाला कवच उतारकर रख दिया। नंगे पैर, हाथ जोड़े, अकस्मात कौरवों की सेना की ओर चल पड़े। वे उधर की ओर पैदल ही जा रहे थे जिधर पितामह भीष्म अपने रथ पर खड़े होकर अपनी सेना का संचालन

कर रहे थे। इस दृश्य को देखकर सभी भौंचक्के से रह गये। भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव सभी उधर को दौड़ पड़े। उनकी कुछ समझ में नहीं आ रहा है। शत्रु सेना में निहत्थे, नंगे पैर घुसना खतरे से खाली न था। तनिक सी चूक सर्वनाश कर सकती थी। सभी भाइयों ने महाराज को रोकना चाहा। उन्होंने इसका कारण जानना चाहा। फिर भी युधिष्ठिर चुप रहे। वे तो अपनी धुन में बढ़े चले जा रहे थे।

बिजली की भांति यह समाचार दोनों सेनाओं में फैल गया। सभी कौतूहल भरे ढंग से देखने लगे। सभी के मुख पर अलग-अलग बातें थीं। सभी चकित थे। सभी सन्देह में पड़ गये। क्या महाराज युधिष्ठिर डर गये हैं? क्या वह पितामह की शरण मे जा रहे हैं? क्या युद्ध टल जाएगा? कौरव सैनिक व्यंग्य कर रहे थे। दूसरी ओर पाण्डव चिन्तित हो उठे थे। क्या वे फिर जीती हुई बाजी हार जायेंगे? महाराज युधिष्ठिर क्या हार मान लेंगे? क्या उनका मोह मार्ग में आकर खड़ा हो जायेगा? क्या उन्हें फिर जंगल-जंगल भटकना पड़ेगा? फिर इसी अपमान में वे अन्याय के दिन देखने होंगे। सभी व्याकुल थे। यदि कोई निश्चिंत था तो केवल मधुसूदन भगवान् कृष्ण। वे अभी भी मुस्करा रहे थे। वे ताड़ गए थे कि बात क्या है? अर्जुन, भीम आदि सभी भाई श्रीकृष्ण सहित महाराज युधिष्ठिर की ओर चल पड़े।

सभी के व्यंग्य बाणों की चिन्ता न करते हुए युधिष्ठिर आगे बढ़े चले जा रहे थे। देखते-देखते वे कौरव कुल के पितामह भीष्म के पास जा पहुँचे। व्याकुल मन तथा श्रद्धापूर्वक महाराज युधिष्ठिर ने उनके चरण पकड़ लिये। वे बोले-'पितामह! आप हमारे पितामह हैं। आज दुर्भाग्य से ऐसा क्षण आ गया है हमें न्याय के लिए आप के साथ ही युद्ध करना पड़ेगा। आप तो अजेय ठहरे। अपने पुत्र को अपना आशीर्वाद प्रदान करें।'

महाराज युधिष्ठिर के शब्दों में विनम्रता थी साथ ही सत्य की दृढ़ता भी। उनकी श्रद्धा देखकर पितामह गद्‌गद् हो गए। युद्धभूमि में भी कर्त्तव्य

की यह पुकार? कैसा अद्भुत दृश्य था? भाव-विभोर पितामह बोल उठे–'वत्स ! तुम्हारे इस व्यवहार को देखकर मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि युद्ध में तुम्हारी विजय अवश्य होगी। मैं कौरवों की ओर से लड़ने के लिए विवश हूँ। मैंने उनका नमक खाया है। अत: इसे छोड़कर तुम जो चाहो कह सकते हो.......' पितामह को चुप होते देखकर युधिष्ठिर बोले–'पितामह! कौरवों के सेनापति के रूप में आप जैसे अजेय महारथी के रहते हुए हमारी विजय कैसे हो सकती है। फिर आपकी इच्छा के बिना तो मृत्यु भी आपके पास तक नहीं फटक सकती।'

भीष्म बोले–'कुन्तीनन्दन ! तुम्हारा कहना सही है। फिर भी तुम हिम्मत न हारो। मेरा आशीर्वाद व्यर्थ न जायेगा। तुम फिर कभी मिलना।'

पितामह का आशीर्वाद पाकर महाराज युधिष्ठिर गद्गद् हो गये। उन्हें प्रणाम करके वे पुन: चले पड़े।

अब महाराज युधिष्ठिर वयोवृद्ध आचार्य द्रोण के रथ की ओर गये। उनके चरणों में अपना सिर रखकर वे बोले–'पूज्य आचार्य जी ! आज मुझे आप जैसे पूज्य जनों से युद्ध करना पड़ेगा। कैसा अजीब प्रसंग आ गया है। शिष्य को अनुमति दें, अपना आशीर्वाद दें। ....' युधिष्ठिर की यह विनम्रताभरी बात सुनकर द्रोणाचार्य का गला भर आया। मन में सोचने लगे 'शिष्य हों तो ऐसा?........' सजल नेत्रों से वे बोले, 'पाण्डु पुत्र! तुम्हारा ये आचरण देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम युद्ध करो। तुम्हारी विजय अवश्य होगी। बताओ मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ? ....यह ध्यान रखना मैंने कौरवों का नमक खाया है। मैं आचार्य अवश्य हूँ परन्तु शासन का वेतनभोगी। अत: मुझे लड़ना उन्हीं की ओर से होगा। इसे मेरी दुर्बलता ही मान सकते हो। इसके अतिरिक्त तुम मुझे बताओ मैं तुम्हारे लिये क्या कर सकता हूँ?'

महाराज युधिष्ठिर बोले–'आचार्य श्रेष्ठ ! आपका आशीर्वाद ही मेरे लिए वरदान है। मैं क्या माँगूं। आप ही योग्य परामर्श दें।'

युधिष्ठिर की मधुर वाणी आश्चर्यजनक थी। देखते-देखते द्रोणाचार्य ने उन्हें बतला दिया कि वे स्वयं कैसे पराजित किये जा सकते हैं।'

द्रोणाचार्य से अनुमति लेकर व प्रणाम करके महाराज युधिष्ठिर अपने गुरू कृपाचार्य के पास गये। उनके चरणों में प्रणाम करके वे बोले–'आचार्य! आज मुझे अपने पूजनीय जनों से युद्ध करना पड़ेगा। कोई पाप न लगे अत: आपकी अनुमति चाहिये। बिना बड़ों का आशीर्वाद पाये कोई काम नहीं करना चाहिये। इसीलिए आपका आशीर्वाद पाने के लिए उपस्थित हूँ।'

युद्धभूमि में भी इस शिष्टाचार को निभाया जा सकता है उसकी तो साधारण व्यक्ति कल्पना भी नहीं कर सकता था। कृपाचार्य प्रसन्न होकर बोले, 'राजन्! मुझे दु:ख है कि राजा द्वारा पालित व पोषित होने के कारण मुझे दुर्योधन की ओर युद्ध करना पड़ेगा। यह मेरी कायरता ही है परन्तु मैं विवश हूँ। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ रहेगा। विजय तुम्हारी ही होगी। तुम युद्ध करो। जहाँ धर्म है, न्याय है, सत्य है, विजय भी उधर ही होती है। मैं प्रतिदिन भगवान से तुम्हारी विजय की कामना किया करूँगा।'

महाराज युधिष्ठिर को और क्या चाहिये था, अब वे अपने मामा महाराज शल्य की ओर चल पड़े।

मद्र देश के महाराजा शल्य पाण्डवों के मामा थे। वे कुरुक्षेत्र में उन्हीं की सहायता के लिए आये थे। वे असाधारण पराक्रमी थे। रथ चलाने की कला में तो उनके समान कौरवों में कोई भी न था। दुर्योधन की एक चाल के कारण वे कौरवों की ओर से लड़ने के लिए वचन हार चुके थे। युधिष्ठिर ने उनको प्रणाम किया और कहा–'मामाजी

मुझे आज आपके विरुद्ध युद्ध करना पड़ेगा। पाप न लगे इसीलिए आपसे अनुमति माँगने आया हूँ। आप आशीर्वाद दें।' भाव-विभोर होकर शल्य बोले, 'युधिष्ठिर ! तुम्हारे व्यवहार ने आज मुझे जीत लिया है। तुम डटकर युद्ध करो। मैं विवश हूँ कि तुम्हारी ओर से नहीं लड़ सकता हूँ। फिर भी विश्वास रखो मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। विजय तुम्हारी ही होगी।' युधिष्ठिर ने महाराज शल्य का ध्यान एक पुरानी घटना की ओर आकर्षित किया। शल्य हँसते हुए बोले–'कुन्तीपुत्र! तुम निश्चिन्त होकर युद्ध करो। अर्जुन जब कर्ण के साथ युद्ध करेगा तो मैं कर्ण का उत्साह भंग अवश्य करुँगा।'

सभी पूज्य जनों से आशीर्वाद पाकर महाराज युधिष्ठिर अपनी सेना की ओर लौट पड़े। उनके चेहरे पर सन्तोष व प्रसन्नता झलक रही थी। कर्ण युद्धभूमि में ही नहीं थे। वे तो भीष्म से नाराज होकर हट गये थे। पाण्डवों के सन्देह दूर हो चुके थे। फिर भी भीमसेन से न रहा गया। उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा ! 'मधुसूदन! युद्धभूमि में भी इसकी क्या आवश्यकता थी? क्या हमारे ऊपर अन्याय होते समय यह भी चुप नहीं रहे थे?'

श्रीकृष्ण मुस्कुराते हुए बोले–'भीमसेन! विनम्रता ही व्यक्ति की शोभा होती है। अच्छे आचरण से व्यक्ति अपने विरोधियों का भी हृदय जीत लेता है। तुम्हारे भाई महाराज युधिष्ठिर ने इस आचरण से महाभारत का युद्ध आधा तो अभी जीत लिया है। उनकी मधुर वाणी के कारण उन्हें विजय का आशीर्वाद उन सभी लोगों से मिल गया है जो कौरव सेना में सेनापति बन सकते हैं। युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व ही शत्रु पक्ष के सेनापतियों से अपनी विजय का आशीर्वाद पा लेना क्या कम बड़ी बात है। व्यक्ति का हृदय जीत लिया तो सफलता निश्चित है।'

●●●

क्या हम भगवान् को भगा तो नहीं रहे हैं?

लगभग पाँच हजार वर्ष पुरानी बात है। महाभारत का प्रसिद्ध युद्ध समाप्त हो चुका था। कौरवों और पाण्डवों की सेनाओं का सर्वनाश हो चुका था। कौरवों के सभी भाई मारे गये थे। पाण्डवों के सभी पुत्र युद्धभूमि में समाप्त हो गये थे। महाराज युधिष्ठिर फिर से हस्तिनापुर के राजा बन चुके थे। अब शान्ति का काल था। अतः एक दिन भगवान् कृष्ण ने द्वारका लौट जाने की इच्छा प्रकट की। धर्मराज युधिष्ठिर की अनुमति लेकर एक दिन वे चल पड़े। अर्जुन, भीम आदि सभी भाइयों ने नगर के बाहर तक जाकर उनको विदा किया। द्रोपदी का तो गला ही भर आया। जब तक श्रीकृष्ण का रथ आँखों से ओझल नहीं हो गया पाण्डव खड़े-खड़े उन्हें देखते ही रहे।

चलते-चलते श्रीकृष्ण राजस्थान के मारवाड़ नामक क्षेत्र में जा पहुँचे। चारों ओर रेत ही रेत दिख पड़ रही थी। हरे-भरे पौधों व पानी का तो कहीं दर्शन भी होना कठिन था। भयंकर गर्मी थी। सिर पर सूर्य भगवान् आग उगल रहे थे। गर्मी व प्यास से लोगों का बुरा हाल था। वहीं पर भगवान श्रीकृष्ण को उत्तंक मुनि के दर्शन हो गये। भक्तिपूर्वक उन्होंने उनका सत्कार किया। उत्तंक मुनि उन दिनों के एक सिद्ध पुरुष थे। सुख-दुःख, राग द्वेष, माया-मोह से वे ऊपर उठे हुए व्यक्ति थे। त्यागी, विरागी बने वे भगवान की तपस्या में लीन रहते थे। दुनिया की बातों से उन्हें कोई मतलब न था। इसीलिये उन्होंने श्रीकृष्ण से हस्तिनापुर में कौरव पाण्डवों की कुशल क्षेम जाननी चाही। उन्होंने पूछा, 'कौरव व पाण्डव आनन्द से हैं? आपने उनमें आपस में मित्रता करवा दी?'

'मुनिवर ! मैंने इस काम के लिए स्वयं जाकर अनेक ढंग से प्रयत्न किया था। सन्धि करवाने के लिए कौरवों को खूब समझाया परन्तु

दुर्योधन व उसके भाइयों ने एक न सुनी। भीष्म पितामह तथा विदुर जैसे लोगों की भी बात नहीं मानी गई। इसलिए कुरुक्षेत्र के मैदान में डटकर युद्ध हुआ। करोड़ों लोग मारे गये। कौरव नष्ट हो गये। धर्मराज युधिष्ठिर अब राजा बन गये हैं। मैं उन्हीं से विदा लेकर आ रहा हूँ।' श्रीकृष्ण ने कहा।

युद्ध, विनाश सुनकर मुनि भौंचक्के रह गये। भगवान श्रीकृष्ण के रहते हुए भी यह सब हो गया? यह विचार मन में आते ही उत्तंक मुनि को क्रोध आ गया। क्रोध तो स्वयं ही एक राक्षस की तरह से बुरी चीज है। उससे बुद्धि नष्ट हो जाती है। क्रोध में मनुष्य उचित, अनुचित भूल जाता है। वह अपनी शक्ति का भी अनुमान नहीं लगा पाता है। इसीलिए उनको लगा कि श्रीकृष्ण भगवान वास्तव में दोषी हैं। वे बुद्धिमान भी थे। शक्तिशाली भी थे। दोनों के पूज्य भी थे। वे चाहते तो युद्ध टल सकता था। इसीलिये क्रोध में भरकर उत्तंक मुनि ने उनको शाप देना चाहा। क्रोध तो क्षणिक होता है। उसके शान्त होने पर व्यक्ति को अपनी भूल समझ में आ जाती है। यही उनके साथ हुआ। श्रीकृष्ण की महिमा उनकी समझ में आ गई। वे हाथ जोड़कर उनकी विनती करने लगे। प्रसन्न होकर भगवान् ने कहा—'मुनिवर! मैं आपकी भक्ति पर बड़ा प्रसन्न हूँ। आप मुझसे कोई भी वर माँग सकते हैं।'

साधू-संन्यासी को चाहिये ही क्या, वह संसार के सब सुख वैभव से दूर रहता है। इसीलिये उत्तंक मुनि बोले, 'भगवान्! आपके दर्शन हो गये। मुझे सब कुछ मिल गया। अब मुझे क्या चाहिये? फिर भी देना है तो एक कृपा कर दीजिये। यह रेगिस्तान है। पानी का मुझे बड़ा कष्ट है। दूर-दूर तक कहीं पानी नहीं मिलता। जब मुझे आवश्यकता पड़े तब पानी मिल जाया करे। इतनी कृपा कर दीजिये।'

'अच्छा! ऐसा ही होगा। जब-जब आप मेरा स्मरण करेंगे, आपको पानी मिल जाया करेगा।' भगवान् ऐसा कहकर चल दिये। उत्तंक मुनि

उन्हें देर तक निंहारते ही रहे। आज वे प्रसन्न थे। उनका एक बड़ा कष्ट दूर हो गया था। जाने-अनजाने में उनसे फिर एक भूल हो गई थी। इस ओर उनका ध्यान तक न गया था। साधु-सन्त तो सदैव दूसरों के हित की बात सोचा करते हैं। अपने स्वार्थ का विचार तो उन्हें करना भी नहीं चाहिये। इसीलिये तो धार्मिक पुरुष सन्त कहलाते हैं। परन्तु ! उत्तंक मुनि ने केवल अपनी प्यास बुझाने की चिन्ता की थी। ऐसा ही तो वरदान उन्हें मिला था।

व्यक्ति कितना भी बड़ा क्यों न हो जाये फिर भी पूर्ण नहीं होता है। उससे भी भूलें हो सकती हैं। वह आदर्श से डिग सकता है। इसीलिये उसे बार-बार अपनी परीक्षा लेते रहना चाहिये। श्रेष्ठ पुरुषों की परीक्षा भगवान् अनेक ढंग से लेते रहते हैं। इस जीवन में क्षण-क्षण पर हमारी परीक्षा होती है। सचमुच हम उसे जान भी नहीं पाते हैं। इसीलिये हम गलत मार्ग पर भटक जाते हैं। एक दिन उत्तंक मुनि के साथ भी ऐसा ही हो गया। ठीक दोपहरी का समय था। भयंकर गर्मी पड़ रही थी। प्यास के मारे उनका बुरा हाल था। अतः उन्होंने भगवान का स्मरण किया। उन्हें पानी की आवश्यकता अनुभव हो रही थी। अकस्मात् उनके सामने एक चाण्डाल प्रगट हो गया। उसका रंग-रूप काला-कलूटा व भयंकर था। उसके कपड़े गन्दे थे। कुत्तों ने उसे चारों ओर से घेर रखा था। शरीर से बदबू आ रही थी। चाण्डाल ने हँसते हुए कहा कि-'उत्तंक तुम्हें प्यास लगी होगी। पानी चाहिये? मुझसे ले लो। तुम्हें देखकर मुझे दया आ रही है।'

उत्तंक मुनि का प्यास के मारे तो बुरा हाल था। फिर भी चाण्डाल को देखकर मन में घृणा हो रही थी। ब्राह्मण होकर चाण्डाल के हाथ से पानी लूँ? छिः छिः छिः । यह मुझसे न हो सकेगा। कहाँ मैं एक श्रेष्ठ मुनि, सिद्ध तपस्वी और कहाँ घिनौना चाण्डाल? भेद-भाव की इस दृष्टि ने उन्हें पानी नहीं लेने दिया। अहंकार ने उन्हें अन्धा बना दिया था। 'मैं

एक श्रेष्ठ व्यक्ति हूँ।' यह भी तो एक प्रकार का घमण्ड ही है। देखते-देखते चाण्डाल गायब हो गया। उत्तंक मुनि क्रोध में भरे हुए थे। मन ही मन वे भगवान् को कोस रहे थे। क्या भगवान ने भी उनके साथ धोखा किया है? ऐसे कुविचार मन में आ रहे थे।'

अकस्मात उन्हें ध्यान आया कि चाण्डाल चला कहाँ गया है। वह तो दूर-दूर तक नहीं दिखलाई पड़ रहा था। क्या बात हो गई? यहाँ तो मीलों तक छिपने के लिए कोई स्थान भी नहीं है। कहीं गायब तो नहीं हो गया है? यह कोई ईश्वरीय माया तो नहीं थी? भगवान ने कहीं मेरी परीक्षा तो नहीं ली थी? उत्तंक मुनि सोचते जा रहे थे। अन्तिम बात मन में आते ही क्रोध गायब हो गया। उन्हें अब लज्जा आ रही थी। फिर भी वे मन ही मन खीझ रहे थे। अकस्मात् भगवान उनके सामने पुनः प्रगट हो गये। शंख, चक्र, गदा, पद्म उनके हाथ में शोभा दे रहे थे। उत्तंक मुनि से रहा न गया। वे बोल उठे भगवन्! तुम्हारा ये कैसा न्याय है? चाण्डाल के हाथों, वह भी चमड़े के बर्तन से पानी लेना क्या मेरे लिए उचित था? मैं उसे कैसे ले सकता था।'

मुस्कराते हुए भगवान् बोले, 'महर्षि। आप शायद भूल गये थे कि संसार की प्रत्येक वस्तु में मैं ही रहता हूँ। ब्राह्मण व चाण्डाल में क्या अन्तर है? क्या दोनों मनुष्य नहीं हैं? क्या मैंने उन्हें नहीं बनाया है? व्यक्ति-व्यक्ति में भेद करना क्या अच्छी बात है? बिना बात केवल रंग-रूप देखकर किसी से घृणा करना क्या अच्छा है? फिर आप तो सन्त ठहरे। आपके मन में यह भेद-भाव कैसा? सच बात तो यह है कि मेरा आग्रह मानकर स्वयं भगवान् इन्द्र आपको पानी के स्थान पर अमृत पिलाने आये थे। पहले वे आनाकानी कर रहे थे। जब मैंने आपके त्याग-तपस्या व भक्ति की प्रशंसा की तो वे एक शर्त पर मान गये। शर्त थी परीक्षा लेने की। आपने पानी स्वीकार न करके उन्हें भगा दिया। अब मैं क्या कर सकता हूँ?'

भगवान् की बात सुनकर उत्तंक मुनि को अपनी भूल समझ में आ गई। उनका अहंकार गायब हो गया। लज्जित होकर वे सिर नीचा किये अपनी भूल पर पश्चात्ताप कर रहे थे।

मनुष्य कितनी ही बड़ी भूल कर बैठे परन्तु पश्चात्ताप करने पर मन साफ हो जाता है। फिर कभी भूल न दोहराने का निश्चय कर लेने पर व्यक्ति उन्नति करने लगता है। यही स्थिति उत्तंक मुनि की थी। उसे भाँपकर भगवान ने कहा, 'अच्छा, वह बात तो बीत गई। अब आपकी प्यास बुझाने के लिए मैं क्या कर सकता हूँ?'

'भगवन्! मुझे प्यास लगने पर आपका स्मरण करते ही यदि वर्षा होने लगे तो मेरी भी प्यास बुझ जायेगी साथ ही दूसरों का भी कल्याण हो जायेगा।'

मुनि के शब्द-शब्द में सभी का हित टपक रहा था। अज्ञान का पर्दा हट चुका था। जगतपिता के चेहरे पर मुस्कान फैल रही थी।

'अच्छा ऐसा ही होगा' कहकर वे अर्न्तध्यान हो गये। आज भी राजस्थान में जब-जब बादल घिर आते हैं व वर्षा होने लगती है तो लोग उन बादलों को 'उत्तंक मेघ' कहकर पुकारते हैं।

सच बात है भगवान अनेक रूप रखकर हमारे सामने प्रगट होते हैं। अगर हमारे मन में ऊँच-नीच, छोटे-बड़े का भाव रहा तो हम उनका दर्शन न कर पायेंगे। जाने कब भगवान चाण्डाल का रूप धरकर हमें अमृत पिलाने आ जायें। हम स्वार्थ भरी दृष्टि से केवल अपनी प्यास बुझाना चाहेंगे तो उसे कभी अच्छा नहीं माना जायेगा। भेद-भाव मिटाकर सभी के हित को ध्यान में रखकर सोचने व काम करने से ही भगवान् प्रसन्न होते हैं।

●●●

विनय व शील ही हमारी शोभा है

प्राचीन काल की बात है। उन दिनों वृत्रासुर नामक राक्षस ने चारों ओर हाहाकार मचा रखा था। सभी लोगों पर वह अत्याचार ढा रहा था। घमण्ड में वह चूर था। इसका कारण यह था कि उसे एक वरदान मिल गया था। उसके कारण उसको मार पाना कठिन था। इसलिए देवताओं के राजा इन्द्र ने एक चाल खेली। उन्होंने एक दिन सायंकाल धोखे से वृत्रासुर को मार डाला। धोखा करना अच्छा नहीं होता है। बड़े से बड़े व्यक्ति को भी इससे बचना चाहिये। इसकी सजा किसी न किसी दिन भुगतनी पड़ती है। इसलिए देवराज इन्द्र को कुछ समय के लिए अपना राज्य छोड़कर कहीं छिपकर अपना जीवन बिताना पड़ गया।

देवराज इन्द्र के न होने पर देवलोक का राजा कौन बने? सिंहासन खाली नहीं रहना चाहिये। सरकार के बिना तो देश में चारों ओर गड़बड़ी मच जाती है। सभी देवतागण आपस में मिलकर एक विचार करने लगे। उन्होंने ऋषि मुनियों से भी राय ली। उन दिनों भारतवर्ष में एक बड़े प्रतापी राजा राज्य करते थे। उनका नाम सम्राट नहुष था। वे धार्मिक व श्रेष्ठ व्यक्ति थे। सभी देवता व ऋषि मुनि उनके नाम पर सहमत हो गये। देखते-देखते महाराज नहुष देवलोक के राजा बन गए। अब तो उनके ठाठ ही निराले थे। उनकी शक्ति, सम्मान अब बहुत ही बढ़ गया था।

शक्ति व आदर पाकर किसमें घमण्ड नहीं आ जाता है। इसीलिए तो ऐसे समय व्यक्ति को बहुत सावधान रहना चाहिये। उसे तो उस ठाठ-बाट को भगवान की कृपा ही मानना चाहिये। महाराज नहुष ने ऐसा नहीं किया। इस ठाठ-बाट व वैभव में वे अपना कर्त्तव्य भूल गये। राजकाज छोड़कर वे भोग-विलास में फँस गये। घूमना, सैर-सपाटा व मनोरंजन में ही उनका समय बीतने लगा। धीरे-धीरे उनकी आदतें खराब हो गईं। राज्य का प्रबन्ध बिगड़ने लगा। धीरे-धीरे चारों ओर असन्तोष

फैलने लगा। राजा नहुष अब ऐसे काम भी करने लगे जो किसी भी अच्छे व्यक्ति को शोभा नहीं देते थे। एक दिन देवराज इन्द्र की पत्नी शची देवी को देखकर वे उनके रूप पर मोहित हो गये। उनको अपनी पत्नी बनाने के लिए वे व्याकुल हो उठे। इसके लिए वे कुछ भी करने को तैयार थे। पाप ने उनको अन्धा कर दिया था।

भारत की नारियाँ बड़ी पवित्र व बुद्धिमान होती हैं। ऐसे अवसरों पर युक्ति से काम निकालना वे जानती हैं। देवरानी शची ने भी ऐसी ही एक युक्ति खोज निकाली। उन्होंने राजा नहुष के सामने एक बेढंगी शर्त रख दी। शर्त यह थी कि यदि वे श्रेष्ठ ऋषियों के द्वारा अपनी पालकी उठवाकर व उस पर सवार होकर उन्हें लेने आयेंगे तो वे उन्हें पति के रूप में स्वीकार कर लेंगी। प्रेम में अन्धे बने नहुष ने यह शर्त मान ली। दूसरे दिन ही पालकी पर सवार होकर वे शची देवी के राजमहल की ओर चल पड़े। सीधे-सरल ऋषिगणों को उनकी बात माननी पड़ी। सभी को यह अन्याय अवश्य लग रहा था। फिर भी सभी चुप थे। मन ही मन सभी कुढ़ रहे थे। परन्तु राजा के पाप का घड़ा अभी नहीं भरा था। सभी को विश्वास हो गया था कि अब राजा नहुष का विनाश निकट है।

व्यक्ति पाप की ओर तेजी से बढ़ता है, यह उसका स्वभाव है। इसीलिए कहा जाता है सोच-विचार कर पग रखना चाहिये। राजा नहुष की सवारी चली जा रही थी। सात श्रेष्ठ ऋषि-मुनि उसे अपने कन्धों पर उठाये हुए थे। बूढ़े ऋषियों के शरीर में दम ही कितना था। इसलिए उनकी चाल धीमी थी। उधर राजा नहुष देवी शची से मिलने के लिए व्याकुल थे। वे चाहते थे कि पालकी ढोने वाले जल्दी चलें। स्टेशन की ओर जाते समय रेलगाड़ी पकड़ने के लिए हम तो तांगे वाले को जल्दी चलने के लिए कहते हैं। यही बात रिक्शा चालकों से होती है। राजा नहुष भी अपने को रोक नहीं पाये। वे बोलने लगे 'सर्प, सर्प.........' संस्कृत में सर्प का अर्थ 'जल्दी शीघ्रता' भी होता है। ऋषिगण पहले ही बुरी तरह थक चुके थे। वे बेचारे और जल्दी क्या करते?

ताँगे को जल्दी ले जाने के लिए क्या करते हैं? हमने देखा होगा कि ताँगे वाला घोड़ों को चाबुक मारकर उन्हें दौड़ने के लिए कहता है। नासमझ लोग इसी तरह रिक्शा चालकों को भी डाँटते-फटकारते हैं। यहाँ तो पालकी उठाने का काम पूज्य ऋषिगण कर रहे थे। उनकी चाल तेज न होने पर सम्राट नहुष को क्रोध आ गया। वे ऊँच-नीच का भाव भूल गये। क्रोध में व उतावलेपन में वे अन्धे हो गये। देखते-देखते उन्होंने पालकी उठा रहे ऋषि अगस्त्य मुनि के माथे पर लात दे मारी। पाप ने उनकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी थी। ऋषि-मुनियों का अपमान? उससे बड़ा अनर्थ हो ही क्या सकता था? उससे राजा नहुष की सारी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल गई। ऋषियों ने उन्हें तत्काल शाप देते हुए कहा–'राजन्! आपके पाप का घड़ा भर गया है। त्यागी, तपस्वियों व सज्जनों का अपमान करना अधर्म है। अतः अब तुम्हारी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जायेगी। तुम राजसिंहासन से हटा दिये जाओगे। देवलोक से तुम्हें संसार में फेंक दिया जायेगा। तुम्हें अगले जन्म में सर्प बनकर रहना होगा। 'सर्प, सर्प' कहने की यही सजा सबसे उपयुक्त होगी।'

देखते-देखते राजा नहुष को सिंहासन से उतारकर भूमि पर फेंक दिया गया। देवराज इन्द्र पुनः देवलोक के राजा बन गये। घमण्डी नहुष को उनके पाप की सजा मिल गई। मनुष्य चाहे कितना ही त्यागी हो, तपस्वी हो या विद्वान हो उसे पूज्यजनों का आदर करना ही चाहिये। उसका शील व विनय ही उसकी शोभा है। घमण्ड उसे पतन की ओर ले जाता है। इसमें उसका विनाश छिपा रहता है।

●●●

आज आपने मृत्यु पर विजय पाई है

हजारों वर्ष पुरानी बात है। उन दिनों हमारे देश में धर्मराज युधिष्ठिर का राज्य था। भीम, अर्जुन, नकुल व सहदेव उनके भाई थे। महारानी द्रौपदी उनकी पत्नी थीं। यह पाँचों भाई पाण्डव कहलाते थे क्योंकि इनके पिता का नाम पाण्डु था। महाराज युधिष्ठिर बड़े धर्मात्मा थे। हृदय से वे बड़े दयालु थे। उनका स्वभाव मधुर था। प्रजा का पालन वे पिता की तरह करते थे। निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी उनके पास पहुँच सकता था।

एक दिन की बात थी। महाराज युधिष्ठिर के दरबार में एक निर्धन व्यक्ति आकर सहायता की याचना करने लगा। उसकी दशा अच्छी न थी। सचमुच उसे सहायता की आवश्यकता थी। उस दिन दरबार में महाराज को बहुत काम था। अनेक आवश्यक विषयों पर मंत्रियों के साथ बातचीत करनी थी। सारा वातावरण गम्भीर था। अतः महाराज ने उसे दूसरे दिन आने को कह दिया। दूसरे दिन उसकी बात पूरी तरह से सुन ली जायेगी। उसकी सहायता भी कर दी जायेगी। यह भरोसा उसे दिला दिया गया था। निर्धन व्यक्ति उदास हो गया। कर भी बेचारा क्या सकता था। उसे तो उनकी आशा भी न थी। विवश होकर ही तो वह यहाँ आया था। धर्मराज के पास से उसे निराश होना पड़ रहा था। एक दिन की देरी भी उसके लिए अच्छी न थी परन्तु अब कोई चारा शेष न था। निराश होकर वह लौट पड़ा। उसका चेहरा उदास था। उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा रहा था।

पास खड़े, महाराज युधिष्ठिर के छोटे भाई भीम यह दृश्य देख रहे थे। गरीब आदमी की उदासी उनसे देखी न गई। उनका हृदय पसीज गया। बड़े भाई की तनिक सी भूल उस निर्धन व्यक्ति के लिए घातक सिद्ध होगी। उससे पाण्डवों का यश मिट्टी में मिल जायेगा। अपने से बड़े को कैसे समझायें? यह धर्मसंकट था। तत्काल उन्हें एक उपाय सूझ गया। वे झट से बाहर निकल गये। वहाँ एक विशाल घण्टा टंगा था। उसे बजाने की जंजीर नीचे लटक रही थी। यह घण्टा प्रसन्नता के विशेष अवसरों पर ही बजाया जाता था। जंजीर पकड़कर भीम जोर-जोर से घण्टा बजाने लग गये। चारों ओर हलचल मच गई। अकस्मात् क्या हो गया? महाराज युधिष्ठिर भी चौंक गये। सही बात पता करने के लिए कर्मचारी दौड़ पड़े। भीम को तुरन्त बुलाया। भीम हाथ जोड़े, सिर झुकाये उनके सामने खड़े थे।

युधिष्ठिर बोले, 'भीम ! इस समय घण्टा बजाने की क्या आवश्यकता पड़ गई थी? क्या तुम्हें पता है कि यह घण्टा विशेष अवसरों पर ही बजाया जाता है?'

'हाँ! महाराज मुझे यह बात ज्ञात है। आज ऐसा ही अवसर उपस्थित हो गया है।' भीम ने विनम्र स्वर में उत्तर दिया।

महाराज भीम का यह उत्तर पाकर चौंक उठे। वे बोले, 'आज कौन सी विजय प्राप्त की है, हम लोगों ने भीम?'

'महाराज! आज आपने मृत्यु पर विजय प्राप्त की है। साक्षात् यमराज भी आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकते हैं। अतः आज का दिन आनन्द का दिन है।' भीम ने विनम्र स्वर में निवेदन किया।

भीम की बात सुनकर महाराज युधिष्ठिर आश्चर्य में पड़ गये। उन्हें भीम की बात एक पहेली जैसी लगी। उनकी कुछ भी समझ में नहीं आया। वे बोले, 'भीम! पहेली न बुझाओ। क्या बात हो गई है? साफ-साफ कहो।'

उपयुक्त अवसर देखकर भीम बोले, 'महाराज! अभी-अभी आपने एक याचक से कल आकर मुँहमाँगी सहायता प्राप्त करने का वचन दिया है। आपका वचन कभी खाली नहीं जाता है। आप बात के बड़े धनी हैं, धर्मराज जो ठहरे। स्पष्ट है कि कल तक मृत्यु भी आपको अपना ग्रास न बना सकेगी। साक्षात् यमराज भी आपका कुछ न बिगाड़ सकेंगे। आपने चौबीस घण्टों के लिए मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली है। कितनी बड़ी विजय है यह? आज तक कौन सा मनुष्य इसे प्राप्त कर सका है? बस उसी की सूचना, मैं घण्टा बजाकर, प्रजा को दे रहा था। आज तो विजय का उत्सव मनाने का दिन है। महाराज! क्या मुझसे कोई भूल हो गई है? अपराध क्षमा हो इस सेवक का।'

छोटे भाई भीम की बात सुनकर महाराज युधिष्ठिर लज्जित हो गये। उन्हें अपनी भूल समझ में आ गई। प्रजा की सहायता करने में राजा का आलस्य अच्छा न था। भाई की बुद्धिमानी पर उन्हें मुस्कराहट आ गई। उस निर्धन याचक को तत्काल वापिस बुलाया गया। उसकी झोली धन से भर दी गई। वह गद्‌गद् हो उठा। भीम की ओर वह कृतज्ञता भरी दृष्टि से देख रहा था। दरबारीगण भीम की चतुराई पर गद्‌गद् थे। सेवक ने राजा को आज राह दिखलाई थी।

●●●

बाप्पा रावल

बात है साढ़े बारह सौ बरस पहले की। राजस्थान के बल्लभी राज्य में एक राजा राज करता था। उसका नाम था शिलादित्य किन्तु उसने उपाधि ग्रहण की थी 'अपराजित' की। नाम का तो वह था अपराजित, पर शत्रुओं के हाथों बुरी तरह पराजित हो गया। वह तो था अपने झूठे अहंकार के मद में चूर। मैं तो हूँ 'अपरांजित'। कौन है, मुझे पराजित करने वाला? मोरी कुल मानसिंह ने उसके पहाड़ी (चित्तौड़) राज्य में, उसके घर में ही उसे जा दबोचा। वह निकला, अपराजित से भी शक्तिशाली।

शिलादित्य युद्ध में लड़ते-लड़ते मारा गया। राज परिवार के सब सदस्य स्त्री-पुरुष सभी की हत्या कर दी गयी। उसमें बची थीं केवल रानी पुष्पावती। यह भी इसलिए कि वल्लभी पर आक्रमण के क्षणों में वह थी अपने मायके में। वह परमार वंश के चन्द्रावती राज्य की राजकुमारी थीं। चन्द्रावती के महल से हटकर कुछ ही दूरी पर, एक पहाड़ी पर, उसके कुल की देवी माँ अम्बिका भवानी का मंदिर था। रानी उस समय गर्भावस्था में थीं। देवी से पुत्र की मंगलकामना हेतु वह मंदिर गई हुई थीं। देवी प्रतिमा के सामने नेत्रों को बंद किये रानी ध्यान मग्न बैठी थीं। वह माँ भवानी से मन ही मन पुत्र के शुभ की प्रार्थना कर रही थीं। उसे एक क्षण को लगा कि मंदिर का सारा प्रांगण प्रकाश से भर उठा है। जैसे देवी उसके सामने प्रकट हुई हैं।

वे मानों उससे कह रही हैं, 'पुष्पावती! तेरे गर्भ में पल रहा है एक चक्रवर्ती सम्राट। आपदा में साहस न खोना......सावधान! चल भाग जल्दी यहाँ से उसकी रक्षा कर।'

रानी के कानों में सहसा टन्......टन्......टन्......घंटे की आवाज पड़ी। आँखें खुल गईं। किसी ने मंदिर में लटक रहे घंटे को बजाया था। देखा, तो सामने खड़ा है उसका अति स्वामिभक्त सेवक। सारा शरीर लहूलुहान। खून से लथपथ कदाचित् किसी भीषण युद्ध से बचकर आया था।

'महारानी जी! महाराज सहित सभी मारे गये। बल्लभी पर शत्रुओं ने अपना अधिकार कर लिया है। अब तो जन्म लेने वाले राजकुमार, इस

वंश के एकमात्र दीपक को भी मानसिंह मौत के घाट उतार देना चाहता है। रानी माँ! शीघ्रता करें! वह दुष्ट इधर को ही भागता चला आ रहा है। चन्द्रावती की रियासत उसके सामने क्षणभर भी न टिक सकेगी। प्राण देकर भी हमें रक्षा करनी है, सीसोदिया वंश के इस बेल की।'

इस दुखद समाचार को सुनकर रानी हक्की-बक्की सी रह गई।

सहसा देवी के शब्द स्मरण हो आए। 'सावधान! भाग जा! उसकी रक्षा कर। आपदा में भी धैर्य व साहस न खोना।'

पुष्पावती को अपनी चिन्ता न थी। उसे यदि चिन्ता थी तो गर्भ में पलने वाले शिशु की। बेचारी असहाय करती भी क्या? उसे कोई अन्य उपाय न सूझा। सेवक को साथ लेकर शिशु की रक्षा हेतु वह अपने मायके से भाग निकली। भूखी, प्यासी दर-दर भटकती किसी प्रकार से मलिया के पर्वतीय आंचल की एक गुफा में जा छिपी।

यहाँ पर उसने जन्म दिया एक सुन्दर बालक को। गुहा में उत्पन्न होने के कारण माँ ने उसका नाम रखा 'गुहिल'। आगे चलकर उसके वंशज इसी नाम से गहलोत कहलाये। वहाँ भी दुर्दिनों ने उसका साथ न छोड़ा। अधिक सुरक्षा हेतु शिशु को मंदिर के किले में ले जाया गया। किन्तु वहाँ से भी रानी को भागना पड़ा। रानी नवजात शिशु को लेकर पराशर के जंगलों में स्थान बदल-बदल कर छिपती रहीं। अन्ततः वह नागदा पहुँचीं। वह स्थान (अरावली पर्वत की घाटी में) उदयपुर से दस मील की दूरी पर स्थित था।

नागदा के वीरनगर में एक ब्राह्मणी रहती थी। उसका नाम था कमलावती। वह मंदिर के पुजारी की लड़की थी। पुजारी का नाम था, वशिष्ठ राबल। राजस्थान में पुजारी को राबल कहते हैं। माँ और शिशु की दीन-हीन दशा देखकर, कमला को उन पर दया आ गई। डूबते को तिनके का सहारा ही भला। माँ और शिशु को बशिष्ठ राबल के यहाँ मिला आश्रय। राबल के घर के सारे काम-काज रानी करती। यहीं पर गुहिल एक ब्राह्मण बालक के रूप में पलने लगा।

पुरोहित के यहाँ एक बहुत बड़ी गौशाला थी। वहाँ अनेकों गायें पली हुई थीं। गुहिल सात-आठ वर्ष का हो चला था। कुछ समझ भी उसमें

आने लगी थी। अन्दर का क्षत्रिय रक्त अपना रंग दिखाने लगा। ब्राह्मण बालकों से भिन्न, छात्र गुण उसमें दिखने लगा। उनकी तुलना में वह अधिक साहसी था। दूसरों से तो खेल-खेलना यह उसका सहज स्वभाव था। उसका पुरोहिताई, पोथी-पत्रा में मन न लगता। वह भील बालकों के साथ जंगली सुअर तथा अन्य हिंसक जंगली पशुओं के शिकार करता घूमता, ईंट के एक ढेले से उड़ते पक्षी को भी मार गिराता। बड़ा अचूक था उसका निशाना। भील बालक उसे प्यार से बाप्पा कहने लगे।

बाप्पा नित्य गऊओं को हांककर वन में ले जाने लगा। दिन भर जंगलों में वह घूमता और पशुओं को चराता। सांयकाल उनके साथ वह वापस लौटता। रानी उसकी पोटली में ज्वार की रोटी, प्याज और नमक बाँध देती। जब भूख लगती, वह पेट की आग को बुझा लेता।

न जाने क्यों? रानी का पक्का विश्वास हो चला था कि उसका बेटा एक दिन अवश्य ही महान राजा बनेगा। पुत्र को साहसी, वीर और अच्छे गुणों की खान बनाने की ओर माँ का सदा पूरा-पूरा ध्यान रहता। वह साहस और शौर्य से भरी कहानियाँ उसे नित्य सुनाती।

वह बाप्पा को समझाती, बेटे! तुम एक वीर राजा के पुत्र हो। क्या कोई भी सिंह दूसरों के टुकड़ों पर पलता है? वह तो अपने ही बल के बूते पर स्वयं ही जंगल का राजा बन जाता है। इसीलिए तो उसे बनराज कहते हैं। माँ की बात धीरे-धीरे उसके मन में घर करने लगी, उसमें अपने खोये हुए राज्य को वापस लेने की ललक पेंग मारने लगी।

जिस बीहड़ वन में वह गायों को चराता, वहीं पर था भांडले का एक तालाब। वह अपने पशुओं को वहाँ नित्य पानी पिलाता। विश्राम के क्षणों में शीतल वृक्षों की छाया में बैठकर स्वयं भी रोटी खाता। वह 15-16 बरस का हो गया था। उसने भीलों और चरवाहे बालकों की एक अच्छी-खासी एक टोली भी तैयार कर ली थी। सभी उसको अपना स्वाभाविक नेता मानने लगे थे। वह स्वयं तलवार, भाला, धनुष, बाण आदि अस्त्रों-शस्त्रों को चलाना सीखता और अपने मित्रों को भी

सिखाता। ऐसे ही दिन पर दिन बीतते चले गये। अब उसने किशोरावस्था की आयु पार कर तरुणाई में कदम रखा।

वह ईडर के भील राज्य में आ गया था। भील सरदार का नाम था मंडालिका। कहते हैं कि यहीं पर जंगल में उसे गुरू गोरखनाथ के दर्शन हुए। उन्होंने उसे एक दुधारी तलवार भेंट में दी। यह धारदार तलवार दोनों ओर से वार करती थी। साथ ही कभी न खाली होने वाला एक अक्षय तरकस और धनुष बाण भी दिया।

गुरू ने कहा, पुत्र यह तुम्हारे पिछले जन्मों के सुकर्मों का परिणाम है। तुम्हारे भाग्य में था, वह मिल गया। किन्तु लक्ष्मी और राजसत्ता सदैव किसी के पास नहीं रहती। भाग्य से भी बड़ा होता है, कर्म। सुकर्म ही व्यक्ति को महान बनाता है। कर्महीन नर पावत नाहीं। तुम तो सोचते बहुत ऊँचे की हो, पर वत्स! केवल सोचने मात्र से कुछ नहीं बनता। लक्ष्य तक पहुँचने के लिए कठोर परिश्रम और साधना करनी होती है। बीज भी तभी फलता है जब उसमें कर्म रूपी खाद और पानी पड़ता है। व्यर्थ समय न बिताओ। कर्म करो कर्म!' गुरू अर्न्तध्यान हो गये।

बाप्पा बड़ा ही चकित था कि गुरू गोरखनाथ ने उसके मन की बात को कैसे जान लिया? भाग्य सदा पुरुषार्थ का अनुसरण करता है। बाप्पा ने अपने सुकर्म, शौर्य और पराक्रम से इसे सिद्ध कर दिखाया। स्वाभिमानी महाराणाओं के शिशोदिया वंश का वह बना संस्थापक–रावल और भीलों के उपकार को भी वह कभी नहीं भूला। उनकी स्मृति में अपने नाम के आगे उसने रावल की उपाधि जोड़ी। यही बालक मेवाड़ का जग–प्रसिद्ध 'बाप्पा रावल' कहलाया। आज भी गर्व राणा अपने को रावल के नाम से संबोधित करते हैं।

एकलिंग पुरी से उत्तर की ओर एक मील की दूरी पर स्थित है बाप्पा रावल की समाधि। वहाँ पर है एक छोटा सा मंदिर 'बाप्पा रावल' के नाम से प्रसिद्ध यह रमणीय स्थान भारत के इतिहास में अमर हो गया।

●●●

मत समझो की हिन्दुस्थान की तलवार सोई है

सारे बुन्देलखण्ड में हिन्दुओं का वर्चस्व प्रस्थापित हुए कई वर्ष व्यतीत हो चुके थे। मुगलों की दासता से उसको मुक्ति मिल गई थी। हिन्दवी स्वराज्य का एक-छत्र राज्य था। छत्रसाल ने अब विशेष रूप से शासन व्यवस्था को अधिक चुस्त और प्रभावी बनाने की ओर ध्यान केन्द्रित किया था। यद्यपि उनको निरन्तर विजय मिलती रही थी पर जन-धन की हानि भी कम नहीं हुई थी। कुछ काल के लिए वे युद्ध से बचना चाहते थे। क्योंकि व्यवस्थाएँ तो शान्ति काल में ही खड़ी होती हैं। मुगल सत्ता का अस्तित्व ही दाँव पर लग गया था।

औरंगजेब ने छत्रसाल के सामने घुटने टेक दिये थे। उसने उनकी स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार कर लिया था। दक्षिण में मराठों और पंजाब में सिक्खों ने तो उसकी नाक में और भी दम कर दिया था। बीजापुर और गोलकुंडा की मुस्लिम रियासतों ने भी उसके विरुद्ध बगावत का झंडा बुलन्द कर दिया था। बुन्देलखण्ड में मुसलमानों के अत्याचार बंद हो गये थे। अब उनसे छेड़छाड़ करने की मुगलों की हिम्मत नहीं होती। औरंगजेब के व्यवहार में भी नरमी और मित्रता का रुख झलकता दीखने लगा था। छत्रसाल से स्थाई संधि कर लेने को वह लालायित दीखा।

कभी-कभी धुरंधर राजनीतिज्ञ भी अपने ही चाल में आखेट बन जाते हैं। गच्चा खा जाते हैं। आखिर इस बार छत्रसाल भी मात खा ही गये। वे सोचने लगे थे कि पराजयों ने औरंगजेब को सबक सिखा दिया है। सचमुच में उसके हृदय का परिवर्तन हो गया है।

कुत्ते की दुम कभी सीधी नहीं होती। वह अपने सहज स्वभाव को नहीं छोड़ता। शक्ति को देखकर ही वह दबता है। छत्रसाल जैसा चतुर, दूरदर्शी योद्धा भी मुसलमानों की इस स्वाभाविक मानसिकता व प्रवृत्ति को समझने में भूल कर बैठा। औरंगजेब किसी प्रकार से छत्रसाल को

बुन्देलखण्ड से दूर ले जाना चाहता था। इसमें ही उसका लाभ था। उनके वहाँ रहते हुए बुन्देलखण्ड में घुसपैठ करना उसे असम्भव लगने लगा था। उसने संधि का प्रस्ताव किया। उसकी पहल केवल नाटक मात्र थी। पूरी कुटिलता से भरा हुआ पग था।

............और एक दिन। औरंगजेब का उनको संदेश मिला, "महाराज छत्रसाल। बुन्देलाधिपति! मैंने बुन्देलखण्ड में आपके आधिपत्य को दिल से स्वीकार कर लिया है। रोज-रोज की लड़ाई में दोनों की हानि होती है। अब बखेड़ा खत्म करो। अपनी में आप और मैं अपनी में सीमित रहूँ। मैं आपसे सुलह चाहता हूँ। आपकी सभी शर्तें मुझे स्वीकार हैं। बीजापुर और गोलकुंडा को दबाने में आप मेरी मदद करें। गुजारिश है।"

छत्रसाल को लगा कि मुगलों की सहायता से ही सही, दक्षिण के दोनों शक्तिशाली मुसलमान शासकों को लगे हाथों निपटा लिया जाये। अत: औरंगजेब की प्रार्थना को स्वीकार कर वे उन शत्रुओं से निपटने को दक्षिण की ओर प्रस्थान कर गये। वे बुन्देलखण्ड से लगभग एक सहस्त्र मील दूर पहुँच गये थे।

उन दिनों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पैदल, पालकी, घोड़ों अथवा रथों पर ही आया-जाया जा सकता था। मार्ग भी वनैले हिंसक पशुओं से भरे और घने वनों से आच्छादित तथा ऊबड़-खाबड़ थे। पग-पग पर खतरों का सामना करना पड़ता था। आज के समान द्रुतगामी साधन तो उपलब्ध थे नहीं। संपर्क सूत्रों को भी जोड़ना कठिन हो जाता था। फिर परायों के राज्य में तो और भी . . . .। छत्रसाल को बुंदेला धरती के समाचार उपलब्ध नहीं हो पा रहे थे। वे तो यही समझ रहे थे कि वहाँ सब कुछ ठीक ठाक चल रहा है। अपने पीछे वे सारी व्यवस्थाएँ बना कर आये थे।

औरंगजेब की असली मंशा थी कि उनकी अनुपस्थिति का लाभ उठाया जाये। अंधे के हाथ में जैसे बटेर ही आ गई थी। बिल्ली के भाग्य से छींका नहीं टूटा था। उसने संधि को ताक पर रख दिया। बुन्देलखण्ड

पर चढ़ाई कर दी। मुगल फौजदार शमशेर खाँ अपनी सेना लेकर गढ़ कोटा पर चढ़ दौड़ा। उसने उसको घेर लिया। गढ़ कोटा, दमोह, धामौनी आदि सारे क्षेत्र बुन्देलों के हाथों में थे। वे सब अनाक्रमण की संधि के भ्रम में थे। अच्छी प्रकार से तैयार न थे। हमलावरों की संख्या अधिक थी। फिर भी बुन्देलों ने अपनी पूरी शक्ति से उनका प्रतिकार किया। अन्त में उनको किला छोड़ देने को बाध्य ही होना पड़ा।

इससे मुसलमान सैनिकों का उत्साह और भी बढ़ गया। अब वे कहाँ थमने वाले थे? उन्होंने कई ग्रामों को अपने अधिकार क्षेत्रों में ले लिया। वे छतरपुर की ओर बढ़े। इसको छत्रसाल ने बसाया था। उनके बचपन के नाम छत्ता पर ही किले का नामकरण हुआ था। नेतृत्व विहीन बुन्देले डटकर लड़े लेकिन पराजित हो गये। हिन्दवी स्वराज्य का कुछ भूभाग पुनः मुगलों के हाथों में चला गया।

ईश्वर की कृपा ही कहें। दक्षिण में छत्रसाल को मुगलों के आक्रमण का विस्तार से समाचार मिल गया। गढ़ कोटा और छत्तरपुर उनके कब्जे में चले गये हैं, इसकी भी उनको जानकारी मिल गई थी। उनको समझने में देर न लगी कि यह सब औरंगजेब के षड्यंत्र का ही परिणाम है। यह मुगल सरदारों की कार्यवाही मात्र नहीं है। इसमें बादशाह की अवश्य मिलीभगत है। वह इन आक्रमणों से अपनी अनभिज्ञता ही प्रकट कर रहा था।

छत्रसाल ने अपनी चाल चली। उन्होंने यह प्रचार करवा दिया कि वे रामेश्वरम् धाम की ओर प्रस्थान कर गये हैं. . . .किन्तु चक्कर काटकर वे अपनी सेना के साथ तीव्र गति से बुन्देलखण्ड की ओर चल पड़े थे। मुगल यही सोचते रहे कि वे दक्षिण में ही हैं। लेकिन मुगलों के काल के रूप में वे उमड़ते-घुमड़ते उनके ऊपर झपट्टा मारने को तेजी से आगे बढ़ते ही जा रहे थे। मुगलों को इसकी खबर न थी।

एक ओर मुगल सरदार था शेर अफगन! उसने बुन्देलों के प्रमुख सैन्य केन्द्र मऊ सहानियाँ पर धावा बोल दिया था। वह इस केन्द्र को सदा

सर्वदा के लिए नष्ट कर डालना चाहता था। बुन्देलों की कमर तोड़ देना, उसका प्रमुख उद्देश्य था। उसने अपने सैनिकों के मन में यह बात बिठा दी थी कि "छत्रसाल यहाँ पर नहीं है। बस यही अवसर है। अल्लाह के बंदों। मऊ पर हल्ला बोल दो, तुमको जन्नत का शबाब मिलेगा।"

उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने छत्रसाल को अपनी सेना के साथ उसकी अगवानी करते पाया। उनको देखते ही उसके हाथ-पैर फूल गये। शत्रु सैनिकों के हौंसले पस्त हो गये। उसका इस्लाम का नशा काफूर हो गया। उसके सैनिकों में बहुत असंतोष व्याप्त हो गया था। "शेर अफगन ने उनके साथ धोखा किया है। वह यहाँ पर हम सबको फिजूल मरवा देना चाहता है।" उसके सैनिकों ने विद्रोह कर दिया वे उसका साथ छोड़कर भाग निकले। भागती हुई सेना की जैसी दुर्गति होनी चाहिए वैसी ही उनकी भी हुई। शेर अफगन पकड़ा गया। छत्रसाल ने उसको बंदी बना लिया था।

एक दूसरा फौजदार और था, कुलीन खाँ वह पन्ना पर आक्रमण करने की ताक में था। शेर अफगन के बंदी बनाये जाने का उसको समाचार मिला था। वह उसकी सहायता को दौड़ा। उसका पन्ना तक पहुँचना तो दूर रहा, छत्रसाल ने उसको मार्ग में धर-दबोचा था। उसकी सेना में शोर मचा।

"छत्ता. . . .आया. . . . बुन्देला. . . . आया. . . .आया. . . ." यह आवाज एक छोर से दूसरे छोर तक गूँज गई। उसकी सेना की भी साँप-छछूंदर ऐसी गति बन गई थी। वह न तो पीछे लौट सकती थी और न ही आगे। आगे तो मौत बने खड़े थे छत्रसाल. . . . और पीछे आ डटी थी गढ़कोटा और छतरपुर की उनकी बुन्देला सेना। इन किलों के किलेदार मुगल हाकिमों की सुरक्षा सेना पर टूट पड़े थे। इन दोनों दुर्गों को उन्होंने पुनः मुगलों के चंगुल से मुक्त करा लिया था। दोनों सेनाओं के बीच में पिसकर रह गई थीं कुलीन खां की शाही सेना। भाग्य का मारा! बेचारा सरदार कुलीन खां भी घेरकर पकड़ लिया गया। शेर अफगन और कुलीन खां बंदीगृह की हवा खा रहे थे।

आगे बढ़कर इसी दौर में छत्रसाल ने कालिंजर, विदिशा और उज्जैन तक सभी क्षेत्रों से मुगल सत्ता को उध्वस्त कर डाला था। सभी विजित प्रदेशों तथा अन्यों पर भगवा झण्डा फहरा उठा था। बहुत अनुनय-विनय के पश्चात् ही छत्रसाल ने विपुल धन और चौथ वसूल करने के पश्चात ही उनको छोड़ा था।

यद्यपि शेर अफगन ने आगे कभी आक्रमण न करने की कुरान की कसमें खाईं थीं किन्तु पकड़े जाने का अपमान उसके हृदय को बिंधे डाल रहा था। उसने एक बार पुनः सिर उठाने का प्रयत्न किया था। इस बार छत्रसाल ने उसको सीधे यमलोक पठा दिया। वे इतने सहृदय थे कि उसके शव को उसके पुत्र के हाथों में सौंप दिया था।

छत्रसाल ने मुगल बादशाह के पास इस आशय का संदेशा भेजा था कि, "औरंगजेब! अपनी हरकतों से बाज आओ। मैं अब बुन्देलखण्ड में आ गया हूँ। यह समझने की भूल मत करो कि हिन्दुस्थान की तलवार सोई है। अपनी सेना और सिपहसालारों को व्यर्थ में मत मरवाओ। समझ लो! अब यदि कोई गुस्ताखी करेगा तो वह जिन्दा वापस न जा सकेगा। अब तुम्हारे दिन भी बीत गये हैं।"

छत्रसाल को इस समय 'शठे शाठ्यं समाचंरेत' की नीति अपनानी पड़ी थी। औरंगजेब ने अपना अन्तिम प्रयास किया। उसने अपने अति पराक्रमी सेनापति पुरदिल खां को एक विशाल सेना के साथ भेजा। छत्रसाल की तलवार ने कभी हार का मुख ही न देखा था। उन्होंने क्रोधावेश में पुरदिल खां के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इसके पश्चात तो मुगल बादशाह की बुन्देलों के विरुद्ध खड्ग उठाने की कभी हिम्मत न हुई। दक्षिण में ही अंत में 1707 में औरंगजेब अपने मन की आस मन में लिए ही औरंगाबाद में दफन हो गया।

●●●

जौहर का तालाब

बुन्देलखण्ड की गाथाओं को लिखते समय उसके एक गौरवशाली पृष्ठ का उल्लेख किये बिना मुझसे न रहा गया। मध्यप्रदेश में बेतवा के सुरम्य तट पर एक सुरम्य नगर है, चन्देरी का। इसको यदि मंदिरों का नगर कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। मीलों लम्बे-चौड़े क्षेत्र में यह फैला हुआ था। उसका अपना एक सुन्दर किला भी था। उसके तीन ओर पर्वतों कीशृंखलाएँ थीं। चौथी ओर हरहराती बेतवा सदा बहती रहती। स्वयं में एक सुदृढ़ दीवार के समान वह उसकी रक्षा करती रहती।

जहाँ-तहाँ पर्वत सकरा था, उसने एक दर्रे का रूप धारण कर लिया था। उसको भीमकाय पाषणखण्डों से भरा गया था। अभेद्य दीवार के समान वह खड़ी की गई थी। उसका बाहरी परकोटा इतना मजबूत था कि किसी भी शत्रु का उसमें प्रवेश कर पाना सरल न था। किले के चारों ओर एक अन्दरूनी परकोटा भी था। उसी में नगर की बस्ती बसी हुई थी। पर्वत की एक ऊँची टेकड़ी पर राजा मेदिनी राय का महल था। किले तथा नगर के रक्षार्थ चौबीसों घंटे सैनिक सदैव सन्नद्ध रहते।

1527 का वह वर्ष था। दिल्ली के हिन्दू सम्राट महाराणा सांगा विदेशी आक्रान्ता बाबर से पराजित हो चुके थे। चंदेरी राज, राणा संग्राम सिंह के अनन्य मित्र और भक्त थे। दोनों ने मिलकर उस आततायी से स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई लड़ी थी। दोनों मित्रों ने हारी हुई बाजी को विजय में पलट देने का उपक्रम भी किया था। मेदिनी राय और चंदेरी हिन्दू प्रतिरोध का प्रमुख केन्द्र बन गये थे।

. . . व्यक्ति सोचता कुछ. . . .पर विधाता करता कुछ और ही है। राणा संग्राम सिंह की बीच में ही मृत्यु हो गई। बाबर के मार्ग में अब सबसे बड़े बाधक बचे थे, मेदिनीराय, चन्देरी का हिन्दू शक्ति केन्द्र। विजय की प्रसन्नता में बाबर ने अपना समय व्यर्थ में नहीं गंवाया। एक वर्ष भी नहीं बीता था कि वह विशाल सेना ले चन्देरी की ओर बढ़ चला। अति शीघ्र ही चन्देरी के किले के समीप तक मुगल सेना जा पहुँची थी।

पर्वतों की शृंखला! उसकी नैसर्गिक छटा! पर्वतीय प्राचीर को देखकर वह दंग रह गया। वह सुरसा के समान उसका रास्ता रोके खड़ी थी। उससे ही सटा हुआ एक छोटा सा दुर्ग था। बाबर के आक्रमण को रोकने के लिए दुर्गपाल मैदान में आ डटा था। कई दिनों तक युद्ध चलता रहा। कई बार मुगलों को पीछे धकेल दिया गया। उस छोटे से नायक ने बाबर के दांत खट्टे कर दिये थे। उसके सामने बाबर की बर्बरता न चल सकी। शत्रु को लेने के देने पड़ गए थे।

मेदिनीराय को पराजित करना वह जितना आसान समझता था वैसा न निकला। चन्देरी की सीमा तक टकरा कर ही उसको इसका अहसास हुआ। उसका भ्रम टूट गया था। उसको जीतना तो दूर रहा, वह उसके दर्शन तक न कर सका। उसको ऐसे ही लड़ते-लड़ते तीन माह बीत गये थे। उसकी सेना में निराशा फैलने लगी थी।

अब उसने अपना मायावी जाल फेंका। भोला-भाला सीधा-साधा दुर्गपति यहीं पर मात खा गया। वह उसके मोहक फंदे में फंस गया। उसकी चाल को न समझ सका था। बाबर ने संधि का प्रस्ताव किया था। वापस लौट जाने का नाटक रचा। वास्तव में उसको कुछ समय चाहिये था। पर्वत को तोड़कर चन्देरी में घुसने का मार्ग बनाने को। उसने दुर्गपाल महिपत को वार्ता के मोह जाल में फंसाये रखा। इस बीच बाबर ने पर्वतों की प्राचीर को बड़ी गहराई से देखा और उसका अध्ययन किया। एक स्थान पर उसको कमजोरी दिखाई दी।

वहां पर पर्वत संकरा और पतला था। वहीं से पर्वत को तोड़कर मार्ग बनाना सम्भव था। यह कार्य था बड़ा ही कष्ट साध्य और कठिन। यही भारत में उसके प्रवेश का द्वार खोलने वाला था। उसकी सफलता और असफलता इसी पर निर्भर करती थी। उसने साहस नहीं छोड़ा था। बाबर ने चुपके से अपने कुछ सैनिकों का चयन किया। इस टुकड़ी को उधर भेज दिया। दिखावे के तौर पर वह डेरा डाले पड़ा . . . . .था पर पर्वत को तोड़ने में संलग्न था। सारा कार्य इतनी सावधानी से किया जा रहा था कि दुर्गपाल महिपत को उसका जरा सा भी आभास न हो सका।

गढ़ी के सामने बाबर स्वयं ही डेरा डाले पड़ा था। महिपत वार्ता के चक्कर में ही उलझकर रह गया था। अंत में शत्रु के प्रयत्न फलित हुए। मार्ग को अवरुद्ध करने वाली चट्टान बिखर गई। दीवार में छेद हो गया। प्रवेश का मार्ग खुल गया। किलेदार को जब इसका पता चला तो वह बौखला गया। अतिक्रोधित हुआ। किन्तु उसका जो दुष्परिणाम होना था वह तो होकर ही रहा।

"बाबर बड़ा ही धोखेबाज है। धूर्त कहीं का।" वह दांत पीसता, बड़बड़ाता हुआ अपनी सेना ले उस पर टूट पड़ा।

मुस्लिम की मानसिकता को वह नहीं समझ सका था। अपने ही समान उसको भी वचन का पक्का समझ रहा था। बाबर से वह इतनी वीरता से लड़ा कि उसकी आधी से अधिक सेना को मार गिराया। वह भी मुगलों से लड़ता हुआ वीर की भांति शहीद हो गया। इसके बाद भी वीरतापूर्वक बुन्देले लड़ते रहे थे। चन्देरी के दुर्ग में मुगल प्रवेश न पा सके। देश के शत्रुओं और देशभक्तों के रक्त से वहाँ की धरा रंग गई थी। मेदिनी राय भी किले से बाहर निकल कर उससे जूझ रहा था। कालान्तर में उसकी ख्याति "खूनी दरवाजे" के नाम से प्रचलित हो गई।

मुगलों को सहायता लगातार बाहर से मिलती रही थी। उधर का रास्ता खुला था। बार-बार मुगल अन्दर प्रवेश करने का प्रयत्न करते और मार गिराये जाते। दो माह तक खूनी दरवाजे पर यह आँख मिचौनी का खेल चलता रहा था। मेदिनी राय ने तो देव सेनापति कार्तिकेय को भी मात कर दिया था। किले की रक्षा के लिए माताएं बहनें तक काली मैया का रूप धारण कर नंगी तलवारें लिये मैदान में आ डटी थीं।

सशस्त्र रमणियों को अटल निश्चय था कि वे जीते जी शत्रु के हाथों में नहीं पड़ेंगी। विजय का नहीं पर मृत्यु का वरण तो कर ही सकती थीं। वे मरने और मारने पर उतारू थीं। हिन्दुस्थानी अबला भी कैसे अतिबला बन जाती है? भारतीय ललनाओं की वीरता और सतीत्व की प्रखरता के बारे में बाबर ने सुन तो बहुत रखा था पर उसने यहाँ पर प्रत्यक्ष उसका दर्शन किया था।

शत्रुओं से अनवरत जूझते रहने से राजपूतों की संख्या क्षीण होने लगी थी। उनको लड़ते-लड़ते दो माह और बीत गये थे। किले पर अभी हिन्दू ध्वजा फहरा रही थी। मेदिनीराय को बाहर से कोई सहायता नहीं मिल पाई थी। अब अधिक समय मुगलों की बाढ़ को रोकना सम्भव न था। माताएं, बहनें जो युद्ध करने में समर्थ नहीं थीं उनको पहले ही संकेत दे दिया गया था कि जब किले पर भगवाध्वज फहराता हुआ न दिखे तो वे समझ लें कि किले का पतन सन्निकट है। अन्तिम क्षणों में वे जौहर का अपना धर्म निभायें।

ऐसी सभी ललनाएं एक सरोवर पर एकत्रित हो गईं थीं। हिन्दू वीरों के सामने अब दो ही अवलम्ब बचे थे। विदेशियों के सामने आत्मसमर्पण का. . या. . . . आत्मार्पण का . . .। पुरुषों ने केसरिया बाना धारण किया। माताओं, बहनों ने उनको अन्तिम विदाई दी। शत्रुओं को मरने मारने का बज्र संकल्प ले वे मैदान में उतर पड़े। शत्रु पर कहर बनकर टूट पड़े। यह उनका आखिरी प्रयास था।

उस समय एक क्षण ऐसा भी आया कि बाबर की कब्र वहीं पर बन जाती। राणा सांगा की पराजय का प्रतिशोध लेने का श्रेय मेदिनीराय को मिलता. . . किन्तु भाग्य ही टेढ़ा था. . . और क्या कहा जाये? विजय के अन्तिम क्षणों में एक तीर ऐसा आया जिसने चन्देरी के भाग्य का फैसला कर दिया। मेदिनीराय की छाती में वह जा घुसा था। निष्चेष्ट हो उनका शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा। कर्तव्य की बलिवेदी पर भारत माता का वह सपूत बलि चढ़ गया. . . फिर भी वीर राजपुत्र अपनी अन्तिम सांस तक लड़ते रहे। उनके हाथ से बाजी निकल चुकी थी। उनमें से एक भी जिन्दा न बचा था।

माताओं-बहनों की दृष्टि सहसा किले के बुर्ज पर जा पहुँची। उस पर लहराता भगवा आँखों से ओझल हो चुका था। जौहर की अब घड़ी आ चुकी है, उन्होंने समझ लिया। चिताएं सजाई गईं उनको अग्नि से प्रज्ज्वलित किया गया। धू. . .धू कर वे जल उठीं। बारह सौ रमणियों ने अग्नि के फेरे किये। चिताओं पर वे जीवित ही चढ़ गईं। शत्रुओं की अंक शायिनी बनकर

अपमानित और लांछित जीवन जीने के बजाय उन्होंने जिन्दा चिता में जल जाना पसन्द किया था। भारत माता की कलंकित पुत्रियाँ बनने से अधिक श्रेयस्कर अपने शरीर को भस्म करना सार्थक माना। भारत के भव्य भाल पर उनकी भस्मियाँ गौरव का टीका बन चमक उठीं।

वे अपने साथ अबोध शिशुओं को भी लेकर चिता पर चढ़ी थीं। उनको मोह विचलित न कर सका था। बालक मुसलमानों के हाथों में न पड़ें, धर्मान्तरण के शिकार न हों, भारतद्रोही न बनें, यही उनकी दृष्टि थी। उस समय बच्चों को सुरक्षित स्थान पर निकाल कर ले जाना संभव न था। एक विजयी की भांति गर्व से अपना सीना फुलाये बाबर ने किले में प्रवेश किया। वह एक क्षण तो हक्का-बक्का सा ही रह गया।

धन्य है भारत की माटी। उसको एक भी प्राणी वहाँ पर जीवित न मिला था। स्थान निर्जन और सुनसान था। भौं. . .भौं. . .भौं भौंकते कुत्ते इधर-उधर उसको स्वागत करते मिले थे। वे भी इतने उग्र थे कि कइयों को उन्होंने काट खाया था। वह दौड़ता हुआ तालाब पर जा पहुँचा। वहाँ पर उसको मिली थी बस सतियों की चिताओं की राख। आज उसी स्थान पर खड़ा है सतियों का स्मारक! भारत की इन श्रेष्ठ पुत्रियों की यशगाथा को वह गा रहा है, "जौहर का तालाब", इसी नाम से वह प्रसिद्ध है।

बाबर ने उसको देखा। उसकी अन्तरात्मा ने उसको धिक्कारा, "मूर्ख कहीं का ! तू हिन्दू को मिटाने चला है। जब तक हिन्दू नर-नारियों में अपने धर्म और देश के प्रति ऐसे उदात्त भाव रहेंगे, उसको कौन नष्ट कर सकता है? ऐसी अनेकों आंधियाँ आयेंगी और जायेंगी। भारत का वे कुछ न बिगाड़ सकेंगी। हिन्दू संस्कृति नष्ट न होगी।"

इतिहास कहता है कि भारत पर सात सौ वर्षों तक मुसलमानों और अंग्रेजों के निरन्तर बर्बर आक्रमण होते रहे थे।. . . वे भी चले गये. . किन्तु अभी हिन्दू संस्कृति गौरव से जीवित है। हिन्दू पुनः अंगड़ाई लेकर खड़ा हो गया है।

●●●

ध्येयवादी समर्पित जीवन

सन्. . . सन् . . . सनसनाता हुआ पुष्पक, ध्वनि की गति से, लंका से अयोध्या की ओर उड़ पड़ा था, श्रीराम, लक्ष्मण, सीता और हनुमान-सुग्रीव अपने कुछ अन्य सहयोगियों के साथ विमान पर सवार थे।

सुग्रीव ने सीता को बताया, "माँ! देखो, यही मेरी जन्मभूमि पम्पाकिष्किन्धा है। कृष्णा और तुंगभद्रा इठलाती बलखाती बहती कैसी सुन्दर दीख रही हैं? श्रीराम से मेरी यहीं पर पहली बार मुलाकात हुई थी। यहीं पर अंजनी माता का आश्रम है।

सहसा हनुमान की दृष्टि आश्रम पर जा पड़ी। अंजनी देवी वहीं पर तपस्यारत थीं। माँ से मिलने की उनकी इच्छा बलवती हो उठी। उन्होंने भगवान् श्रीराम से विमान को उतारने की विनती की। श्रीराम अपने अनन्य भक्त की इच्छा को कैसे टाल सकते थे। विमान आश्रम में उतरा। हनुमान के हृदय में बसा माँ का प्यार उमड़ पड़ा। उसने संयम के बांध को तोड़ दिया था। वे माँ अंजनी की ओर दौड़ पड़े। माँ ने पुत्र को अपने अंक में समेट लिया था। उस क्षण वे यह भी भूल गई थीं कि वे अब एक संन्यासिनी हैं। संन्यासी तो सभी माया-मोह के बंधनों को तोड़ डालता है। वह ऊपर उठ जाता है। उसके लिए तो सभी समान होते हैं।

उन्होंने वात्सल्य के आवेश में पुत्र से पूछा, "बेटे! तुम्हारी रामभक्ति के विषय में मैंने बहुत कुछ सुना है। तुझे जन्म देकर मैं तो धन्य हो गई। 'निशिचर हीन करौं महि-भुज उठाई प्रण कीन्ह' राम काज के लिये तूने क्या-क्या किया? माँ को कुछ तो बता मैं तेरे मुख से उसे सुनना चाहती हूँ।"

अपने सुकार्य को सुनाने के लिए बजरंगबली का मन पहले से ही कुलबुला रहा था। आत्मप्रशंसा को सुनना और सुनाना मानव की सहज दुर्बलता है। हनुमान भी उससे ग्रस्त हो गये। अपने शौर्य का बखान करने लगे।

वे बोले-"हे माँ! तेरे पुत्र ने राम सुग्रीव की मित्रता करवाई। व्यभिचारी बालि को राम के हाथों मरवाया? मैंने अत्यंत खतरा उठाकर

भी सीता माँ का पता लगाया। अकेले ही सारी लंका को जलाकर भस्म कर डाला था। वीरवर लक्ष्मण के प्राण की रक्षा के लिए संजीवनी पर्वत तक को उठा लाया था। मैंने बड़े-बड़े असुरों का कैसे संहार कर डाला। आदि-आदि और भी न मालूम कितने काम किये हैं? तेरे इस पुत्र ने। क्या-क्या बताऊँ अनगिनत असंभवों को संभव कर दिखाया है।"

पुत्र की सुकृति को सुन माँ का हृदय अवश्य ही प्रफुल्लित हुआ होगा। किन्तु उनको उसके वर्णन में अहंकार के पुट का अनुभव हुआ था। उन्होंने पुत्र की बात सुनकर अपने मुख पर न तो प्रसन्नता और न ही दुःख की झलक आने दी। वे राग-द्वेष, ईर्ष्या, मत्सर, सांसारिक प्रेम आदि सभी से ऊपर उठ चुकी थीं उनके मन की अवस्था स्थितप्रज्ञ की थी।

भगवान् श्रीराम, ने पुष्टि में अंजनी देवी से कहा कि "हे तपस्विनी! यदि हनुमान और सुग्रीव आदि मित्र न होते तो मैं राक्षसों का संहार न कर पाता। लंका जीतने की बात तो अलग रही सीता का भी उद्धार न हो पाता। मुझ पर तुम्हारे पुत्र का बड़ा उपकार है। मैं कदाचित् ही उऋण हो सकूँ। हनुमान पर मुझे गर्व है।" भगवान श्रीराम के एक-एक शब्द में विनम्रता का भाव अंजनी को झलका।

श्रीराम के मुख से अपनी प्रशंसा सुन हनुमान की छाती गर्व से और भी फूल उठी। अंजनी देवी वैसे ही धीर और मितभाषी स्वभाव वाली स्त्री थीं। राम की बात सुन वे और भी गंभीर हो गई थीं, उनके चेहरे पर से प्रसन्नता के भाव एकदम गायब से हो गये थे। हनुमान आश्चर्यचकित थे। उनकी खोजी आँखों से माँ के मन की अवस्था छिपी न रह सकी थी। ज्ञानी तो वे थे ही, बेचैन हो उठे।

बीच में ही माँ से बोल पड़े, "मातेश्वरी! तुमको अवश्य ही कोई दुःख हुआ है। निःसंकोच भाव से बता। क्या बात है? मुझसे कुछ न छिपा।" अंजनी देवी सोच ही रही थीं कि पुत्र से ऐसी कटु बात कहें या नहीं। अंत में उसको अच्छा लगे या बुरा उन्होंने उसकी चिन्ता छोड़ दी। वे अपने श्रेष्ठ स्रष्टा पुत्र को सही राह दिखाना चाहती थीं। यह उनका परामर्श था।

अचानक वे बोलीं, "पुत्र, तूने बहुत ही श्रेष्ठ कार्य किया है। इसमें सन्देह नहीं। किन्तु एक बात मेरे अन्तःकरण को बींधे जा रही है। तेरे ऐसे महाबली पुत्र के होते हुए भी प्रभु श्रीराम को लंका जाने का कष्ट उठाना पड़ा। राक्षसों के संहार के लिए उनको जंगल-जंगल की खाक छाननी पड़ी। तू तो अकेला ही इस पुनीत कार्य को संपादित कर सकता था। मुझे तो लगता है कि तूने मेरी कोख को लजा दिया है।"

माँ की बात सुन हनुमान जी अवाक रह गये। कुछ क्षणों के उपरान्त बुद्धि ठिकाने आयी। अपनी गलती पर माँ के सामने बिलख-बिलख कर रो पड़े। माँ के एक-एक शब्द उनके हृदय को मथे डाल रहे थे।

"माँ! तू ठीक कह रही है। मेरे समर्पण में कुछ खोट रह गई है।" उनके मस्तिष्क में अहंकार का पुट आ गया था। उनको इसका अहसास हुआ था। पुत्र की इस मानसिक अवस्था को पहले ही तपस्विनी भांप गई थी। उन्होंने बड़े स्नेह से पुत्र के सिर पर आशीष का हाथ फेरा। वे बोलीं–"हे महाबली तुमको इस तपस्विनी मां का यही दण्ड है कि तुम निःस्वार्थ भाव से प्रभु श्रीराम कार्य को जीवन पर्यन्त संपादित करते रहो। पुत्र! इसी में जीवन की सार्थकता है। मेरी कोख धन्य हो जायेगी।"

"मां! ऐसा ही होगा।" हनुमान के चेहरे पर प्रचण्ड आत्मविश्वास की आभा दिखाई दी।

हनुमान की बुद्धि निर्मल हो गई थी। मां ने पुत्र को अपने वक्षस्थल से चिपका लिया। सजल नेत्रों से मां और पुत्र एक दूसरे से विदाई ले रहे थे। उनका यही अंतिम मिलन था। इतिहास साक्षी है कि हनुमान ने शरीर, मन, बुद्धि से, मनसा, वाचा, कर्मणा, अपनी मां को दिये गये वचन को जीवन भर निभाया 'न भूतो न भविष्यति' राम भक्ति का एक अनुपम आदर्श उन्होंने प्रस्तुत किया था।

●●●

यक्ष के प्रश्नों का समाधान

धर्मराज युधिष्ठिर काम्यकवन छोड़कर द्वैतवन में आ गये हैं। वहाँ का प्राकृतिक दृश्य (पेड़, पौधे, फल-फूल) अत्यंत सुखदायी था। एक दिन वहां एक विलक्षण घटना घट गई।

एक ब्राह्मण ने पधारकर धर्मराज युधिष्ठिर के सामने अपनी व्यथा रखते हुए कहा, "मैंने अरणी सहित अपने मन्थन काष्ट को एक पेड़ की डाली पर टांग दिया था। एक हिरन आया तथा वहीं पर वह अपनी सींग खुजलाने लगा। मन्थन काष्ठ उसकी सींग में जाकर फंस गया। वह विशाल मृग चौकड़ी भरता हुआ उसे लेकर भाग गया। मन्थन काष्ठ के न होने पर मैं अग्नि होत्र न कर सकूँगा। अतः निवेदन है कि पदचिह्नों को देखकर इसका पीछा करिये व मेरी खोई वस्तु प्रदान करवा दीजिये।

ब्राह्मण की बात सुनकर भाइयों सहित युधिष्ठिर धनुष लेकर मृग के पीछे चल पड़े। अथक परिश्रम व प्रहार करते करते भी व उसे पा न सके। देखते देखते वह ओझल हो गया। वे एक गहन वन में पहुंच गये, थक कर चकनाचूर हो जाने के कारण व एक वट वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गये। घोर प्यास लग रही थी। युधिष्ठिर के निर्देश पर नकुल ने पेड़ पर चढ़कर पास में स्थित एक जलाशय का पता लगा लिया। युधिष्ठिर ने कहा, "तुम शीघ्र जाओ व पानी भरकर ले आओ।"

नकुल तत्काल जलाशय के पास पहुँचे। निर्मल जल देखकर वे पीने के लिए झुके। उसी समय आकाशवाणी हुई, "भाई नकुल! भूल मत करो। पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो तभी जल पी सकते हो व ले जा सकते हो" प्यास से पीड़ित होने के कारण नकुल ने बात न मानी। अतः जल पीते ही वे भूमि पर गिर गये। विलम्ब हो जाने पर सहदेव को भेजा गया। नकुल को देखकर वे व्यथित हुए परन्तु उनसे भी वही भूल हो गई। अतः वे भी धराशायी हो गये। फिर खोज करने अर्जुन आये। चेतावनी

सुनकर अर्जुन को क्रोध आया। युद्ध करने की चुनौती थी। यक्ष प्रगट न हुआ। बाणों से वातावरण को घेरकर वे जल पीने लगे। अतः वे भी अपने दोनों भाइयों की भांति मर कर गिर गये। विलम्ब हो जाने पर भीमसेन को भी भेजा गया। इन्होंने सोचा यह राक्षसों का काम है। अतः युद्ध करना ही पड़ेगा। इसलिये पानी पी लेना चाहिये। चुनौती पाने के बाद भी उन्होंने पानी पिया तथा वे भी धराशायी हो गये।

अत्यधिक विलम्ब हो जाने पर युधिष्ठिर भी चिन्तित हो गये अतः वे भी चल पड़े। जलाशय के पास अपने चारों भाइयों को मरा हुआ देखकर वे घबरा गये। उनके शरीर पर न घाव थे न विष का प्रभाव था। फिर यह कैसे हुआ? क्या यह यमराज के कारण है? यह सोचते-सोचते वे जल में प्रवेश करने लगे। इसी समय आकाशवाणी द्वारा वही निर्देश दिया गया। परिचय पूछने पर उन्हें बतलाया गया कि वह 'यक्ष' है। युधिष्ठिर ने उसकी भावना का आदर करते हुए कहा "आप प्रश्न पूछिये मैं उत्तर देने का प्रयास करुँगा।" प्रश्नोत्तर प्रारम्भ हो गये।

यक्ष ने पूछा, "पृथ्वी से भारी क्या है? आकाश से ऊँचा क्या है? वायु से तीव्र गति किसकी है तथा तिनकों से संख्या किसकी अधिक है।

युधिष्ठिर – माता भूमि से बढ़कर व पिता आकाश से ऊँचे होते हैं। मन की गति वायु से अधिक तथा चिन्ताओं की संख्या तिनकों से ज्यादा होती है।

यक्ष – ऐसा कौन व्यक्ति होता है जो बुद्धिमान है, सम्मानित है, सुख सम्पन्न है परन्तु वास्तव में जीवित नहीं होता है?

युधिष्ठिर – जो देवता, अतिथि, सेवक, माता-पिता व आत्मा इन पाँचों का पोषण नहीं करता है वह श्वास लेने पर भी मरणासन्न है।

यक्ष – ब्राह्मणों में श्रेष्ठता का आधार क्या है? उनका धर्म क्या है?

युधिष्ठिर – ब्राह्मणों की श्रेष्ठता वेद शास्त्रों का स्वाध्याय है। तपोसाधना उनका धर्म है।

यक्ष – क्षत्रियों का देवत्व क्या हैं? उनमें सत्पुरुषों का धर्म क्या हैं?

युधिष्ठिर – शस्त्र कौशल्य क्षत्रियों का देवत्व है। यज्ञ (समर्पण) व समाज की रक्षा करना उनका धर्म है।

यक्ष – धर्म का मुख्य स्थान क्या है? लोक में श्रेष्ठ धर्म क्या है? नित्यफल वाला धर्म क्या है?

युधिष्ठिर – धर्म का मुख्य स्थान दक्षता है। वेद के आधार पर आचरण नित्य फल देता है। लोक में दया श्रेष्ठ धर्म है।

यक्ष – तप व दम का आशय क्या है?

युधिष्ठिर – अपने धर्म में रहना तप है तथा मन का दमन दम है।

यक्ष – मनुष्यों का दुर्जेय शत्रु कौन है? अनन्त व्याधि क्या है? साधु कौन माना जाता है?

युधिष्ठिर – क्रोध दुर्जेय शत्रु है। लोभ अनन्त व्याधि है। जो समस्त प्राणियों का हित करने वाला, वह साधु है।

उत्तरों से प्रसन्न होकर यक्ष ने अन्त में कहा, "आपने मेरे प्रश्नों के सही उत्तर दे दिये अत: अपने भाइयों में जिस एक भाई को चाहो इसमें जीवित कर सकता हूँ। उसका नाम बतला दीजिये।"

युधिष्ठिर ने कहा, "चौड़ी छाती वाला, अत्यन्त कुशल व श्रेष्ठ भाई नकुल।"

उत्तर सुनकर यक्ष चकित रह गये व पूछने लगे, "नकुल का नाम आपने कैसे चुना? महाबली भीमसेन तथा शस्त्र व अस्त्र के महान कुशल अर्जुन यही तो परिवार के रक्षक हैं, अज्ञेय हैं, असीम हैं। उनके होते हुए यह नाम क्यों बतलाया?"

युधिष्ठिर–धर्म की उपेक्षा व उसका तिरस्कार करना अपने लिये विनाशकारी होता है। यदि धर्म की रक्षा की गई तो अपनी भी रक्षा होगी।

कुन्ती और माद्री हमारी दो माताएं हैं। मैं, भीम व अर्जुन कुन्ती की सन्तानें हैं तथा नकुल व सहदेव माद्री की। मेरे लिए दोनों ही माताएं हैं। अतः दोनों के प्रति समान भाव रखना मेरा धर्म है। इसलिये मैंने नकुल का नाम लिया।"

यक्ष ने तत्काल कहा–भरत श्रेष्ठ। आपने अर्थ व काम से भी अधिक महत्त्व समता व धर्म को दिया है। यह आपकी श्रेष्ठता का लक्षण है। अतः आपके सभी भाई जीवित हो जायेंगे। सभी पाण्डवगण उठ बैठे। उनकी भूख प्यास चली गई। अतः युधिष्ठिर ने पुनः निवेदन किया। भगवन्! आप सामान्य साधु सन्त व यक्ष मात्र नहीं हैं। क्या आप स्वयं देवराज इन्द्र हैं? मेरे महापराक्रमी भाईयों को सामान्य व्यक्ति तो धराशायी कर ही नहीं सकता था। अतः निवेदन है कि अपना परिचय देने की कृपा करें।" यक्ष ने कहा। भरत श्रेष्ठ! मैं तुम्हारा पिता धर्मराज हूँ। तुम्हारे आचरण, चिन्तन की शैली तथा जीवन की परीक्षा लेने के लिए ही यह योजना बनाई गई थी। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम वर माँग सकते हो।

युधिष्ठिर–भगवन्! विनम्र निवेदन है कि उस ब्राह्मण की अरणी सहित मन्थन काष्ठ को प्रदान करवाने की कृपा करें जिसे मृग लेकर भाग गया था। परकल्याण भाव से युक्त वरदान को सुनकर धर्मराज ने कहा, "तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए मृग का रूप धारण करके मैंने ही यह कार्य किया था। वह वस्तु उस ब्राह्मण को प्राप्त हो गई है। अपने अन्तःकरण की पवित्रता, शीलता तथा मानवीय हित को सर्वोच्च प्राथमिकता देकर तुमने जिस धर्म के स्वरूप का परिचय दिया है उसी आधार पर आशीर्वाद देता हूँ कि वनवास के तेरहवें वर्ष में तुम्हारा अज्ञातवास अवश्य सफल होगा।"

●●●

"साधु-संन्यासी को चाहिये ही क्या, वह संसार के सब सुख वैभव से दूर रहता है। इसीलिये उत्तंक मुनि ने, भगवान! आपके दर्शन हो गये। मुझे सब कुछ मिल गया। अब और क्या चाहिये? फिर भी देना है तो एक कृपा कर दीजिये। यह रेगिस्तान है। पानी का मुझे बड़ा कष्ट है। दूर-दूर तक कहीं पानी नहीं मिलता। जब मुझे आवश्यकता पड़े तब पानी मिल जाया करे। इतनी कृपा कर दीजिये।'

'अच्छा! ऐसा ही होगा। जब-जब आप मेरा स्मरण करेंगे, आपको पानी मिल जाया करेगा।' भगवान ऐसा कहकर चल दिये। उत्तंक मुनि उन्हें देर तक निहारते ही रहे। आज वे प्रसन्न थे। उनका एक बड़ा कष्ट दूर हो गया था। साधु-सन्त तो सदैव दूसरों के हित की बात सोचा करते हैं। अपने स्वार्थ का विचार तो उन्हें करना भी नहीं चाहिये। इसीलिये तो धार्मिक पुरुष सन्त कहलाते हैं। परन्तु! उत्तंक मुनि ने केवल अपनी प्यास बुझाने की चिन्ता की थी। ऐसा ही तो वरदान उन्हें मिला था।"